हिन्दी काव्य शास्त्र का विकासात्मक अध्ययन

लेखक : परिचय :—

जन्म-तिथि : सन् १९३२ ई० ।

जन्म-स्थान : जोधपुर (राज०)

शिक्षा :—

राजस्थान विश्व-विद्यालय, जयपुर		
	एल-एल० बी०	१९५५
	एम० ए० (अंग्रेजी)	१९५६
	एम० ए० (हिन्दी)	१९५७
	पी-एच० डी०	१९६२

सम्प्रति अध्यापन कार्य

रचनाएँ :—

- हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन
- अलंकार विवेचन
- संस्कृत अंग्रेजी नाटक (प्रकाशनाधीन)
- पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र (प्रकाशनाधीन)

साहित्यिक विषयों पर निबंध—विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित।

कतिपय पत्रिकाओं का सम्पादन।

●

हिन्दी काव्य-शास्त्र

का

विकासात्मक अध्ययन

(शोध कृति)

•

डा० शान्तिगोपाल पुरोहित,
एम० ए०, पी-एच० डी०
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गवर्नमेंट कालेज, भीलवाड़ा [राज०]

•

प्रगति प्रकाशन,
आगरा-३

सादर-समर्पित

कर्मठता, दृढता, सजीवता, पौरुष व हृदय की अत्यत पवित्रता एवं कोमलताके साकार
सचेष्ट स्वरूप और मेरे जीवन के निर्देशक तथा पथ-प्रदर्शक
परमादरणीय पूज्य पिताजी 'काकोसा'—
श्रीमान मेघराजजी साहब,
पुरोहित मारोठवाला

एवम्

दया, ममता, करुणा, वात्सल्य, सौहार्द्र, सहनशीलता और कर्त्तव्य परायणता
की सजग - साकार प्रतिमा, परमादरणीया माताजी 'बासा'—
श्रीमती उदयकौरजी साहिबा—

जिन्होंने अपनी तपश्चर्या, ममता अथक वात्सल्यमयी प्रेरणा और अनुभव
भरी शिक्षा-दीक्षा से मुझे सदैव सुखी और सम्पन्न बनाया तथा
जिनका आशीर्वाद मेरा सर्वस्व अथक जीवन-सम्बल
है, उन्ही दिव्य दम्पति को सादर
समर्पित !

लेखक—

लोढो की गली, वीर मौहल्ला

जोधपुर (राज०)

दो शब्द

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि साहित्य धर्मज्ञ डा० कुवर चन्द्रप्रकाशसिंहजी ने अपना अमूल्य समय देकर मेरी भ्रातियो का निराकरण किया और राह-निर्देशन किया।

ग्रन्थ का परिष्कार उनके कुशल निर्देशन से ही हो सका। उन्होने अपने स्नेह सौजन्य और अपनी विद्वता द्वारा मुझे जो सहायता प्रदान की है। उसके लिए मै आभार । प्रकट करता हूँ। साथ ही यह अकित करना भी मै अपना कर्त्तव्य मानता हूँ कि सघर्ष के क्षणो मे जब मैं निराश सा हो चुका था, डा० नित्यानन्दजी शर्मा, रीडर, हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर, ने कार्य को पूर्णता प्रदान करने का उत्साह बधाया।

"दैट विच वी काल एरोज
बाई एनी अदर नेम वुड स्पैल एज स्वीट"
(सेक्सपियर)

साहित्यिक सामग्री प्रदान की और शोध प्रबन्ध को पूर्ण बधाने मे अपूर्व सहायता प्रदान की। अतएव मै उनका हृदय से आभारी हूँ।

यह सकेत भी सामयिक ही होगा कि इस प्रबन्ध को प्रकाशित कर विद्वानो के सम्मुख रखने का श्रेय श्री रामगोपाल परदेसी, सचालक-प्रगति प्रकाशन, आगरा को है। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

पुस्तक को ऐसे रूप मे मुद्रित करने की अभिलाषा थी कि, उसमें एक भी मुद्रण की त्रुटि न रहे। किन्तु परिस्थितियो वश ऐसा नही हो सका। कई स्थानो पर मुद्रण की त्रुटियाँ रह गई है। जिनके लिए मै खेद प्रकट करता हूँ। विश्वास है कि आगामी सस्करण मे इन त्रुटियो का निराकरण हो सकेगा।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय
भीलवाडा (राज०)

—डा० शान्तिगोपाल

वक्तव्य

आधुनिक हिन्दी साहित्य का अध्ययन अ ग्रेजी और संस्कृत के विद्वानो को यह संकेत करता है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य ने सस्कृत और अ ग्रेजी साहित्य से बहुत सी बाते ग्रहण की हैं। प्रभाव को खोजने के लिये विद्वानो ने इस दिशा मे अनेक प्रयत्न किये हैं और लेखो और प्रबन्धो के रूप मे उनके प्रयास प्रकट हुए हैं। आज साहित्य की अनेक विधाये हमारे सामने प्रकट हो रही हैं। उनमे मौलिक प्रयत्नो के साथ-साथबहुत से प्राचीन या परम्परागत प्रभाव भी है। इनमे से नाटक,कथा, कविता और काव्य शास्त्र प्राचीन और अर्वाचीन दोनो कालो से प्रेरणा ग्रहण करते है। भारतीय काव्य शास्त्र ने अपने स्वरूप मे जिन-जिन परिवर्तनो को स्वीकार किया है, उनसे हिन्दी काव्य शास्त्र भी मुक्त नही हैं। हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि उसने जिस प्रकार सस्कृत से प्रेरणा ली उसी प्रकार अ ग्रेजी से भी। पूर्व भारतेन्दु कालीन हिन्दी काव्य शास्त्र कुछ अशो मे अपनी मौलिकता प्रकट करके भी भारतीय काव्य शास्त्र के अनुशासन का पूर्ण रूपेण उल्लघन नही कर सका। फिर भी उसी काल मे अपभ्रश शैली और लोक साहित्य परम्परा के कारण हिन्दी काव्य शास्त्र सस्कृत काव्य शास्त्र से दूर जाता हुआ भी दृष्टिगोचर होता है। अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन मे भारतीय साहित्यकार की प्रतिभा को आन्दोलित किया और सस्कृत साहित्य के मोह को छोड कर वह विदेशी साहित्य की ओर भी बढा। आधुनिक हिन्दी साहित्य विदेशी साहित्य के प्रति अपनी अभिरुचि को भली प्रकार व्यक्त कर रहा है। हिन्दी काव्य शास्त्र भी उस अभिरुचि की अभिव्यजना मे अपना योग दे रहा है। यहाँ यह कह देना सामयिक ही होगा कि हमारा काव्य शास्त्र अपनी मौलिकता को भी प्रकट कर रहा है।

इसके साथ ही एक तथ्य और उल्लेखनीय है। प्रस्तुत अभिनिबन्ध मे काव्य शास्त्र को परम्परागत अर्थ में ग्रहण करते हुए इसे साहित्य शास्त्र का पर्याय माना गया है। प्राचीन भारतीय विद्वानो ने काव्य शब्द को साहित्य के अर्थ में प्रयुक्त

किया था । उदाहरणार्थ "वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्" उक्ति लिखकर साहित्य दर्पण कारने काव्य मे साहित्य के सभी अङ्गो का समावेश किया है । काव्यप्रकाश, काव्यालकारसूत्र, काव्य मीमांशा, काव्यादर्श, काव्यकल्पलतावृत्ति, कविकठाभरण, काव्यविवेक और काव्य प्रकाश नामक ग्रन्थो मे शास्त्रीय तत्वो का सन्निवेश किया गया है । काव्य विभाजन प्रणाली से ज्ञात होना है कि काव्य को मुख्य रूप से तीन भागो मे मे बाँटा जाता है— गद्य, पद्य और चपू । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गद्यात्मक रचना भी काव्य के अन्तर्गत आती है ।

प्राचीन यूरोपीय बिबुध अरस्तू ने काव्य शास्त्र नामक पुस्तक मे साहित्य के अन्य अङ्गो का चलता सा विवेचन किया है और त्रास दी की मागो-पाग व्याख्या की है । इससे यहाँ यह उपयुक्त समझा गया कि काव्य शास्त्र को केवल कविता की आलोचना और उसके शास्त्रीय विवेचन तक ही सीमित न रख कर उसे समस्त साहित्य के गुण-दोष समीक्षा पद्धति के रूप मे गृहीत किया जाय । यहाँ यह इङ्गित किया जा सकता है कि साहित्य शास्त्र नाम रखने मे क्या असुविधा थी, इसके प्रति उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि— "ए नोन एनिमी इज बैटर दैन एन अन-नोन फ्रैंड' तथा —"बॉट इज देयर इन ए नेम ।"

'ए रोज वुड स्मेल एज स्वीट, हैड इट बीन कोल्ड बाई एनोदर नेम ।" अतएव रूढिगत अर्थो मे प्रयुक्त शब्द काव्यशास्त्र को नये शब्द साहित्य-शास्त्र से अधिक उपयुक्त समझा गया है । आज भी कहा जाता है कि साहित्य शब्द के साथ शास्त्र का प्रयोग विरल है ।[1] दूसरा कारण यह भी है कि कई विद्वानो के अनुसार विशेष कर पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार औषधि पत्र (प्रेस्कीप्शन) और छवि गृह चित्र (सिनेमा-पोस्टर्स) भी अन्तर्निहित रहते है । इसी हेतु डिकन्सी ने साहित्य को दो भागो मे विभाजित किया ज्ञान वर्धक साहित्य, जिसमे हर लिखित सामग्री सम्मिलित की जाती है । दूसरा शक्ति प्रदान साहित्य जिसमे काव्य को सम्मिलित किया गया है ।

अत: इस अधिनिबन्ध मे काव्य शास्त्र को साहित्य शास्त्र के पर्याय के रूप मे इस दृष्टि से ग्रहण किया गया है कि इसमे केवल कविता की शास्त्रीय या

१—डा० मनोहर काले–हिन्दी मराठी काव्य शास्त्र अध्ययन पृष्ठ ४ ।

भावात्मक समीक्षा ही सीमित न रह जाय।[1] आधुनिक विद्वानो ने यत्र-तत्र समालोचना के लिए काव्य शास्त्र का प्रयोग किया भी है।[2]

इस अभिनिबन्ध मे काव्य शास्त्र के विवेचन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हिन्दी काव्य शास्त्र ने सस्कृत और अ ग्रेजी काव्य शास्त्र से कालानुक्रम से बहुत कुछ लिया है। किन्तु क्या लिया है और क्या इसकी मौलिकता है इस पर विशेष अध्ययन किया गया है। प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे हिन्दी काव्य शास्त्र पर सस्कृत और अ ग्रेजो के काव्य शास्त्र के प्रभाव को अलग-अलग करके अनेक विवेचको ने देखने का प्रयास किया है। तुलनात्मक एव समन्वयात्मक रूप मे इसकी गवेषणा अभी तक नही हुई है। हिन्दी के काव्य विशेष पर और काव्य शास्त्र पर किस का क्या-क्या प्रभाव है, यह हमारे अध्ययन का विषय रहा है। यह अध्ययन काव्य शास्त्र के सम्बन्ध मे पाठक की जिज्ञासा का समाधान करता है कि आज का हिन्दी काव्य शास्त्र किन तत्वो, प्रभावो और प्रवृत्तियो को लेकर निर्मित हुआ है। ऐसे अध्ययन की विद्वानो ने आवश्यकता भी बताई है।[3]

१—साहित्य शास्त्र विशेषाँक–साहित्य सन्देश जुलाई, अगस्त १६६२ पृ. ३।

२—श्रीशिवदानसिंह चौहान–आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ ८७।

३—(क) आचार्य श्री नरेन्द्र देव–हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृष्ठ आ–लेखक डा० भागीरथ मिश्र।

(ख) डा० नगेन्द्र–भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका–वक्तव्य।

(ग) आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास–(डा० वेंकट शर्मा) पृष्ठ ठ।

(घ) डा० मनोहर काले–आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ १०, १७, ६८३।

(ङ) डा० गोविन्द त्रिगुणायत–शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त–प्रथम भाग पृष्ठ ख।

(च) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २५७।

(छ) डा० नगेन्द्र–हिन्दी काव्यालंकार सूत्र–भूमिका "हिन्दी काव्य शास्त्र की दूसरी प्रवृत्ति का सम्बन्ध आधुनिक आलोचना और पाश्चात्य काव्य शास्त्र तथा मनोविज्ञान से बताया गया है।" पृष्ठ १७१।

प्रस्तुत अधिनिबन्ध मे ऐसा प्रयत्न किया गया है कि हिन्दी काव्य शास्त्र पर एक साथ ही प्रभाव और उसकी मौलिकता प्रकट हो जाये। कही-कही पर परिस्थिति ऐसी भी आई है कि जिसमे यह निश्चिन करना दुष्कर हो गया है कि अमुक प्रभाव संस्कृत माध्यम से आया है अथवा अ ग्रेजी के माध्यम से। ऐसी समस्याओ को सुलझाते समय इस अधिनिबन्ध के लेखक ने यूनानी और इटालवी मान्यताओ को भी सामने रखा औरफिरअपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये है। इस अधिनिबन्ध मे अंग्रेजी काव्य शास्त्रकारो के साथ अन्य पाश्चात्य काव्य शास्त्रो के अ ग्रेजी मे अनूदित रूपो पर भी दृष्टिपात किया गया है, क्योकि अंग्रेजी काव्य शास्त्रकार स्वयं उनसे प्रभावित रहे है।

अध्ययन की सामग्री का सकलन अनेक श्रोतो से किया गया है, जिनमे हिन्दी, सस्कृत और अंग्रेजी काव्य शास्त्र तो प्रमुख है ही, परन्तु लक्ष्य ग्रन्थों को भी कुछ कम महत्व नही दिया गया है। इसके अतिरिक्त इतिहासो व सामाजिक और वैयक्तिक विवरिणीकाओ से भी सामग्री उपलब्ध हुई है। जीवन चरित और आत्म कथाये तक इस अधिनिबन्ध को तैयार करने मे सहायक हुई हैं। हिन्दी काव्य शास्त्र के इतिहास को विभिन्न युगो मे बाँट कर उन पर पहले सस्कृत और फिर अ ग्रेजी प्रभाव दिखाने की चेष्टा की गई है। प्रत्येक युग का सामान्य परिचय देने के पश्चात् उस युग के प्रमुख काव्य शास्त्रकारो–आलोचको, की रचनाओ मे और उनके सिद्धान्तो पर, संस्कृत और अंग्रेजी के प्रभाव को खोजने प्रयत्न हुआ है। इस प्रबन्ध मे काव्य शास्त्रीय विवेचन के विभिन्न सम्प्रदाय और आलोचना की भिन्न-भिन्न पद्धतियो तथा शैलियो पर भी प्रकाश डाला गया है। इस प्रभाव को आकने के लिए केवल प्रकाशित पुस्तको का ही अध्ययन नही किया गया है अपितु अप्रकाशित पान्डु लिपियो का भी यथा सम्भव उपयोग किया गया है।

सामग्री को अध्यायो मे बाँट कर उनमे एक तारतम्य को दिखा कर इस अध्ययन को जटिलता से मुक्त करने का एव इसे सुबोध बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। अत: निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अधिनिबन्ध सस्कृत और अ ग्रेजी काव्य शास्त्र के हिन्दी काव्य शास्त्र पर प्रभाव की वैज्ञानिक और गम्भीर विवेचना के प्रस्तुतीकरण का प्रयास है। यथास्थान अन्य भाषाओ का प्रभाव एवं हिन्दी काव्य शास्त्रकारो की मौलिकता को भी प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है। ध्यान यह भी रहा है कि काव्य शास्त्रकार विशेष कृति के साथ अपनी अन्य

कृतियो मे भी दृष्टिगोचर हो सके । इसमे इस ओर जागरुकता पूर्वक प्रयत्न किया गया है कि प्रबन्ध मे केवल प्राप्य मतो को उद्धृत करके ही सन्तोष न कर लिया जाय । इसमे अपनी आलोचना शक्ति का उपयोग करते हुए हर शास्त्रकार, हर युग और सम्पूर्ण काव्य शास्त्र के विवेचन का अपना निष्कर्ष दिया गया है । इसमे उपरिकथित सामग्री का उपयोग करने हुए व्याख्यात्मक, ऐतिहासिक, मनोविश्लेषणात्मक और निर्णयात्मक शैलियो के सुखद समन्वय का प्रयत्न किया गया है ।

इस अधिनिबन्ध के प्रणयन मे मै श्रद्धेय डा० राम शङ्करजी शुक्ल "रसाल" अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, जोधपुर विश्व विद्यालय का विशेष आभारी हूँ । उनके कुशल निर्देशन और परिष्कृत निरीक्षण से ही यह अधि निबन्ध पूर्ण हो सका है । जब भी समस्याये सामने आईं, और कठिनाइयो का अनुभव किया गया तब पंडिनवर परमादरणीय गुरुवर ने अपने सत् परामर्श से आगे बढने की प्रेरणा दी और मैं इसे पूर्ण कर सका ।

लेखक—

विषय-सूची

भाषा भूषण—गद्य मे व्याख्या । मतिराम, अलकारत्व-प्रभाव । भूषण—भाव क छवि—सस्कृत भाविक । देव-युग, और विशेषता । काव्य शास्त्र निरुपण—पद्यमय । संस्कृत आचार्यों की उद्धरणी । कुलपति मिश्र—टीकाए—बिहारी सतसई, कवि-प्रिया और रसिक प्रिया की टीकाए । रीति ग्र थ प्रणयन—श्रीपति वीर, कृष्ण कवि (बिहारी सतसई टीका), रसिक सुमति । भिखारीदास—स्वकीया लक्षण, हाव—भाव लक्षण—साहित्य दर्पण की छाया—अन्त्यानुप्रास—मौलिक विवेचन । दलपतिराय और बशीधर-अलकार रत्नाकर । दूलहनाथा । यशोदा नन्दन—सस्कृत हिन्दी मिश्रण—बर्वै नायिका भेद, रसिक गोविन्द । अन्य कवि और आचार्य । निष्कर्ष—नायक—नायिका भेद, अल कार वर्णन, रस विवेचन, गुण दोष विवेचन, प्रकृति चित्रण, सैद्धान्तिक व्याख्या । मौलिक उद्भावनाये व परम्परा निर्वाह । निष्कर्ष ।

(क) भाग—सामान्य परिचय.—

अ ग्रेजो का आगमन, शासन और भाषा सम्बन्धी नीति, स्वतन्त्रता संग्राम—अंग्रेजो की नीति, ईसाई धर्म प्रचारक और हिन्दी । तत्कालीन आलोचना—सस्कृत के परिपार्श्व मे—टीका साहित्य, शास्त्रीय तत्व । आधार । अ ग्रेजी के परि-पार्श्व मे—मौलिकता और नवीनता का आग्रह, आलोचको की प्रतिस्पर्धा, सिद्धान्त प्रतिपादन, शास्त्रीय तत्व—अ ग्रेजी सिद्धान्त । पत्र-पत्रिकायें, प्रयोगात्मक आलोच-नाये । । अ ग्रेजो का सहयोग । अनुसंधान और नागरी प्रचारिणी सभा । माप-दण्ड—अन्तर । कवियो की जीवनियाँ—ऐतिहासिक दृष्टिकोण—'लाइब्ज ओफ पोइट्ज । आलोचना और अ ग्रेजी । अ ग्रेजी के विराम चिन्ह । निबन्ध और आलोचना । निष्कर्ष ।

(ख) भाग—आलोचक : कृतियां.—

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र-संस्कृत के पारिपार्श्व मे, अंग्रेजी के परिपार्श्व मे, जीवनियाँ, "नाटक" निष्कर्ष—मौलिकता । बद्रीनारायण चौधरी—दोष दर्शन, संयोगिता स्वयवर, सस्कृत अ ग्रेजी परिपार्श्व—निष्कर्ष । पडित बाल कृष्ण भट्ट—बग विजेता, अनुवाद, आलोचना, आलोचनात्मक लेख, शास्त्रीय तत्व, निष्कर्ष । पडित गगाप्रसाद अग्निहोत्री—समालोचना, निष्कर्ष, शास्त्रीय तत्व, मौलिकता, अन्य

अँग्रेजी परिपार्श्व–मौलिकता का आग्रह, नवीनता की आकाँक्षा अन्य भाषा सम्पर्क, आलोचना ग्रन्थ–प्रभाव संस्कृत ग्रंथो का उद्धार, शब्दावली–भेद, भूमिकायें—अँग्रेजी मे । नवीन आलोचना शैलिया, सामुहिक, भाव और साधारणीकरण, मनोवैज्ञानिकता, पाठालोचन, अँग्रेजी के उद्धरण, शैली तत्व । तुलनात्मक आलोचना, देश काल सापेक्ष आलोचना, विषय विस्तार । नियमोलंघन की प्रवृत्ति—विवेचन । अँग्रेजो की प्रेरणा दृष्टिकोण और भावना—प्रभाव । अँग्रेजी की परिभाषाएँ । साहित्यिक विधाये । प्रेरक शक्तियाँ । काव्य–भेद, विषय, नाम । कला पक्ष और भाव पक्ष —विवेचन, निष्कर्ष । सौष्ठववादी आलोचना निगमात्मक शैली, नन्द दुलारे बाजपेयी गंगा प्रसाद पाडेय, भूमिकाएँ । प्रसादजो, पन्तजी, निरालाजी एवं सुश्री महादेवी वर्मा—अन्य आलोचक—समर्थक । अन्त. प्रवृत्तिया—छान-बीन, खोज साहित्य, पाश्चात्य आलोचक—भारतीय—सा० वर्णन । इतिहास ग्रंथ । अन्य शैलियाँ, चरित मूलक, ऐतिहासिक पद्धति—निष्कर्ष । मनोविश्लेषणवादी, मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ—सरस साहित्य । खोज साहित्य—विभिन्न सम्प्रदाय—निष्कर्ष । साहित्यिक विधाएँ—अँग्रेजी प्रभाव, निष्कर्ष । आलोचना, गद्यगीत, गीति काव्य, कविता और छद, प्रयोगवादी कविता । शास्त्रीय तत्व—नूतन व्याख्याएँ—भाव–विभाव आदि विवेचन—रस—करुण रस सुख कैसे ? साधारणीकरण–कैथार्सिस, व्यक्तिगत कटु प्रहार-अवाँचनीय, लोक नाटको का उदाहरण । भक्ति रस—अँग्रेजी परिपार्श्व मे । अलकार, रीति और गुण—अँग्रेजी परिपार्श्व मे । मार्क्सवादी आलोचना—हिन्दी के आलोचक, भूमिकाएँ—प्रयोगवाद, प्रयोगवादी आलोचक । अँग्रेजी परिभाषाएँ–शब्दावली । अनुवाद, भाषा वैज्ञानिक अध्ययन । आकाशवाणी, समाज शास्त्रीय आलोचना—निष्कर्ष ।

(ख) भाग–आलोचक कृतियां —

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, संस्कृत परिपार्श्व मे—रहस्यवाद, महाकाव्य और मुक्तक, रस और चमत्कार, काव्य, अलकार, शास्त्रीय तत्व—निष्कर्ष । अँग्रेजी परिपार्श्व—साहित्य, कला, अभिव्यजना वाद, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—अन्य तत्व । निष्कर्ष । इतिहास लेखन—ग्रिअर्सन—प्रभाव और मौलिकता, निष्कर्ष । बाबू गुलाबराय, डा० राम शकरजी शुक्ल 'रसाल'. डा० लक्ष्मीनारायण सुधाशु, पण्डित विश्वनाथ मिश्र, पण्डित रामकृष्ण शुक्ल, डा० सरनामसिहजी शर्मा 'अरुण', डा० नगेन्द्र, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० एस० पी० खत्री, डा०

प्रथम प्रकरण
हिन्दी काव्यशास्त्र—पूर्व भारतेन्दु युग तक
(प्रारम्भ से सम्वत् १९०० तक)

'क' भाग—आदिकाल

प्रारम्भिक स्वरूप, अपभ्रंश और देशज-भाषा विवेचन—

सस्कृत और अग्रेजी काव्यशास्त्र का अध्ययन अथच विवेचन हिन्दी काव्यशास्त्र की मौलिकता एव उस पर सस्कृत और अग्रेजी काव्यशास्त्र के प्रभाव की गवेषणा और हिन्दी काव्यशास्त्र के विकास के अध्ययन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। उक्त प्राचीन भारतीय साहित्य और आग्ल साहित्य ने हिन्दी साहित्य के विकास मे पूर्ण सहयोग दिया है—काव्यशास्त्र इसका अपवाद नही है।[1] अग्रेजो के आगमन से पूर्व तक, हिन्दी काव्यशास्त्र प्रमुख रूप से सस्कृत काव्यशास्त्र से सम्बद्ध था। यह तो सर्व विदित ही है कि प्राकृत, अपभ्रंश और देशज भाषाओ ने सस्कृत की साहित्यिकता और नियमबद्ध प्रणाली के प्रति विद्रोहात्मक रुख अपनाया था और उन्होने जन-जीवन के क्रिया-कलाप को भी महत्ता प्रदान की।[2] ये भाषाये धार्मिक बोझ से लदी हुई थी और उक्त धर्मावलम्बियो द्वारा मनोरजन को हेय माना गया था। इस निमित्त इनमे काव्यशास्त्र का अभाव-सा रहा। उनमे तो पूर्व प्रचलित काव्य सिद्धान्तो या सस्कृत के काव्यशास्त्र का उपयोग आवश्यकतानुसार कर लिया जाता था।[3] [4]

१—(क) आचार्य श्री नरेन्द्रदेव, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास (लेखक—डॉ० भागीरथ मिश्र वक्तव्य पृष्ठ आ।
(ख) डॉ० नगेन्द्र—भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका—वक्तव्य (द्वितीय सस्करण)।

२—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास=पृष्ठ ३३९।

३—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास=पृष्ठ १५५।

४—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी रीति साहित्य, पृष्ठ ६।

इस प्रकार उन भाषाओ मे काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो का अभाव स्वाभाविक था । अलबेरूनी ने लगभग १०२५ई०के भारत के बारे मे लिखा है कि भारतीय आर्य भाषा दो रूपो मे विभाजित थी, एक तो उपेक्षित कथ्य भाषा जिसका केवल साधारण जन मे प्रचार था और दूसरी शिष्ट भाषा, सुशिक्षित उच्च वर्ग मे प्रचलित साहित्यिक भाषा जिसे बहुत से लोग अध्ययन कर प्राप्त करते थे और जो व्याकरण-विभक्ति-योग, व्युत्पत्ति तथा व्याकरण के नियमो एव अलङ्कार, रसशास्त्र की बारीकियो से सम्बद्ध थी ।[1] इन देशी भाषाओ को भी सस्कृत का पृष्ठबल लेकर ही देश के भीतर की सस्कृति की रक्षा करनी थी ।[2] यद्यपि राजा-महाराजा मनोरजन इन भाषाओ से करते थे किन्तु इनमे कोई प्रौढ लक्षण ग्रन्थ नही थे । था भी यह स्वाभाविक ही, क्योकि लक्षण ग्रन्थो का निर्माण लक्ष्य ग्रन्थो के उपरान्त ही होता है और देशज भाषाये कथ्य भाषाये थी, जिनका उपयोग धर्म प्रचार के लिये भी किया जाता था ।

देशी भाषायें, लक्षण ग्रन्थ—

फिर भी जब ये भाषाये स्वय साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध होने लगी तो इनमे भी काव्यशास्त्रीय अध्ययन होने लगा । इस दृष्टि से निम्नाकित पुस्तके अवलोकनीय है ।[3] सिद्धशान्तिषा या रत्नाकर शान्तिकृत छन्दोरत्नाकर सन् १००० ई०, व आचार्य हेमचन्द्र सूरी (११७६ ई०) के प्राकृत व्याकरण, छन्दोनुशासन तथा देशी नाममाला कोश आदि । इन्होने अपने व्याकरण ग्रन्थ सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन मे अपभ्रश के उदाहरणो मे दोहे या पद्य उद्धृत किये है, जिनमे से अधिकाश इनके समय से पहले के है ।[4] इनमे शृङ्गारिकता और दूतीवर्णन इत्यादि प्राप्त होते है जिनका सागोपाग वर्णन रीतिकाल मे प्राप्त होता है । उदाहरणार्थ—

"जइ सोन आवइ दूइ घर काई अहो मुह तुज्झ ।
वयण ज खण्डइ तउ सहिए, सो पिउ होइन मुज्झ ॥"

एवम्—

"पिय संगमि कउ निद्दडी ? पिअ हो परोक्खंहो केम्व ।
मइ विन्नि वि विन्नासिआ निद्द न एम्वन तेम्व॥"

(प्राकृत व्याकरण ८-४-४८)

१—डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या—भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी पृष्ठ ११८
२—वही ।
३—(क) राहुल सांकृत्यायन. अवतरणिका पृष्ठ ४३ ।
(ख) डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४५ ।
४—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २० ।

यह बिहारी के इस दोहे से तुलनीय है—

'विधना इन अँखियान, सुख सर्ज्यो ही नाहिं ।
देखत बने न देखते, अनदेखे अकुलाहिं ।।"

और प्रथम पद्य भाग भिखारीदास के इस कथन का पूर्वाभास देता है—

सखी तू नैक न सकुच मन किये सबै मम काम ।
अब आने चित सुचितई सुख पैहै परिणाम ।[1]

नखशिखादि वर्णन—

इनके साथ ही कतिपय ऐसे ग्रन्थ भी प्राप्त होते है जिनमे शास्त्रीय दृष्टि से द्रष्टव्य नखशिख, ऋतु वर्णन व रतिचित्रण तक प्राप्त होते है । जैन मुनि नयनन्द कृत सुदर्शन चरित्र नामक अपभ्र श ग्रन्थ इसी श्रेणी मे रखा जा सकता है । अनुयोग दार सुत मे शान्तरस के स्थायी भाव का वर्णन मिलता है यहाँ एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का कथन सामयिक ही होगा कि प्रारम्भ मे तो जब लोगो मे धार्मिक उत्साह था वे मनोरजन की ओर आकृष्ट नही हुए किन्तु शनैः शनै जैसे वह उत्साह कम होता गया, समाज मनोरजन और तदनन्तर शास्त्रीय विवेचन की ओर बढने लगा । इङ्गलैण्ड मे भी नाटको के लिये यही बात हुई ।[2] अपभ्र श और देशज भाषाओ मे कालान्तर मे ऐसी परम्परा भी प्राप्त होने लगी जिसमे अलङ्कार, छद, व्याकरण आदि के ग्रन्थो मे उदाहरण स्वरूप ऐसे काव्य खड दिये गये जो शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकनीय है ।[3] [4] इन ग्रन्थो का काव्यादर्श अधिकाशतः सस्कृत काव्यशास्त्र से प्रभावित था और सस्कृत के लक्ष्य ग्रथ—महाभारत, रामायण आदि इनके साहित्यिक आदर्श थे ।[5] इनमे लोक भाषा को महत्त्व दिया जाता था ।[6] पालि भाषा मे सुबोधालकार, कविसार प्रकरण और कविसारतीकनिस्साय नामक पुस्तको का प्रणयन होने लगा ।

१—(क) देखिये भिखारीदास का विवेचन—प्रस्तुत प्रबन्ध ।
(ख) काव्य निर्णय पृष्ठ ५१ ।

२—इन पंक्तियों के लेखक का पी-एच० डी० का शोध प्रबन्ध—हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन, पृष्ठ १२५–१५० ।

३—डॉ० रामसिंह तोमर, आलोचना अङ्क ८, पृष्ठ ६१ ।

४—डॉ० रामबहोरी शुक्ल एवं डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृष्ठ ६७ ।

५—डॉ० भागीरथ मिश्र, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ ३३९ ।

६—डॉ० हरवंश कोछड अपभ्रंश साहित्य अध्याय १ ।

हिन्दी की शास्त्रीय परम्परा—

हिन्दी के सदिग्ध आदि कवि पुष्य विरचित छदशास्त्र का उल्लेख इतिहास ग्रथो मे किया जाता है ।[१] किन्तु तथ्य यह है कि वह ग्रन्थ अप्राप्य ही है । फिर भी अनुमान लगाया जाता हैं कि सप्तम शती मे भारतीय काव्यशास्त्र पर देश भाषा मे एक पुस्तक लिखी गई हो यह कोई अविश्वसनीय आश्चर्यात्मक तथ्य नही है ।[२] अतएव हिन्दी के प्रारम्भिक काल मे काव्यशास्त्र का उल्लघन नही हो सका था । काव्यशास्त्र की छाया तो लक्ष्य ग्रन्थो—काव्य ग्रन्थो के निर्माण मे स्पष्ट दिखायी देती है ।

काव्य शास्त्र और लक्ष्य ग्रन्थ—

आज हम कविता से भिन्न आलोचना सिद्धान्तो को प्राप्त करने के अभ्यस्त हो गये है[3] परन्तु हिन्दी के प्रारम्भिक काल मे सस्कृत समीक्षा के अनुरूल काव्यग्रन्थो मे ही काव्यादर्श सम्बन्धी नियम प्राप्त हो जाते है । स्वयभू की निम्नाकित पक्तियो मे उनके कला विधान पर प्रकाश डाला गया है—

"अक्खरवास जलोह मणोहर । सुयलाकर छद मच्छोहर ॥
दीह-समास-पवाह- बकिय । सक्कय पायय पुलिणालकिय ॥
देसी भाषा उभय तडुज्जल । कवि दुक्कर घण सद्दसिलायल ॥
अथ्थ बहल कल्लोलाणिट्ठिय । आसा-सय-सम ऊह परिट्ठय ॥"*

उपर्युक्त चौपाइयो मे वर्णविन्यास को वक्रता कहा गया है, सुन्दर अलकारो को वाक्य वक्रता की सज्ञा दी गई, सस्कृत प्राकृत के शब्दो तथा धन शब्दो मे पर्याय वक्रता की स्वीकृति दी गई ।[४] यहाँ उन उपकरणो का उल्लेख किया गया है जिन्हे सतकाव्य माना गया था । अक्षर गुम्फ, अलकार छद, दीर्घसमास अर्थबाहुल्य आदि मे रीति के तत्व दिखायी देते है ।[५] उनकी यह रूपक रचना भी शास्त्रीय सागरूपक का सुन्दर उदाहरण है ।

१—(क) शिवसिह सरोज पृष्ठ ६ (भूमिका) ।
(ख) डॉ० ग्रियर्सन—हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (अनुवादक—किशोरीलाल गुप्त) पृष्ठ ७० । द्वितीय सस्करण ।
(ग) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३ ।
२—डॉ० ओमप्रकाश, हिन्दी अलंकार साहित्य, पृष्ठ ४८ ।
३—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ ३३८ ।
४—डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी वक्रोक्ति काव्यजीवित भूमिका पृष्ठ २५२ ।
५—डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी काव्यालंकारसूत्र भूमिका पृष्ठ १४२ ।
* पउम चरि ३१/२१ डॉ० हरिवल्लभ भियाणी द्वारा सपादित ।

उसी युग मे कहा जाता था—

ण णिसुणिउ पंच महायकब्बु । णउ भरहुण लक्खणु छंदसुब्बु ॥
णउ बुज्झिउ पिंगल पत्थाह । णउ भामह दंडिउ लकारू ॥[1]

(रामायण १।३)

संस्कृत साहित्य मे लक्षण ग्रन्थ प्राप्त होते है और उदाहरण स्वरूप कवियो की आलोचना भी कर दी जाती है, अथवा अपना काव्यादर्श बना दिया जाता है, किन्तु कवियो और कृतियो से सम्बन्धित स्वतन्त्र आलोचनात्मक ग्रन्थ प्राप्त नही होते है अतएव हिन्दी मे प्रारम्भिक काल या आदिकाल मे प्राप्य यह प्रवृत्ति संस्कृत शास्त्रो के अनुकूल है ।[2]

लक्ष्य ग्रंथ निर्माण और काव्यशास्त्र--

इस युग मे संस्कृत काव्यशास्त्रीय नियमो ने लक्ष्य ग्रंथ निर्माण मे सहयोग दिया । अपभ्रंश काल तक-हिन्दी के आदिकाल तक संस्कृत के प्रबंध काव्य जो लक्षण ग्रंथो के अनुकूल थे, प्रभुता संपन्न हो चुके थे । इन काव्यो ने संस्कृत के नाटको का भी प्रभावित किया जिनके कारण संस्कृत मे ही भवभूति के उत्तर रामचरित जैसे पठनीय नाटको का निर्माण हुआ और हिन्दी मे भी समयसार, सभासार, हनुमन्नाटक और करुणाभरण जैसे नाटक सामने आने लगे । देशी भाषाओ के नाटको मे 'पढे गुणे जो साभने' के प्रयोग परिलक्षित होने लगे ।[3] अतएव उक्त संस्कृत प्रबंध काव्यो का हिन्दी काव्य धारा पर भी प्रभाव पडने लगा और हिन्दी के रासो ग्रंथ महाभारत के समान संकलन काव्य से दृष्टिगोचर होने लगे । पृथ्वी राज रासो का व्यूह वर्णन महाभारत से प्रभावित प्रतीत होता है ।[4] इसमे छः ऋतुओ का वर्णन है जो उद्दीपन विभाव के अनुकूल है । उदाहरणार्थ वसंत वर्णन नीचे दिया जाता है—

पक्षारी अब फुल्लिग, कदंब रमणी बिन दीस ।
भंवर भाव भुल्ले, भ्रंमत, मकरन्द बरीस ॥
बहत बात उज्जलति, मोर अति विरह अगनी पिय ।
कुह कुहंत कलकण्ठ, पत्ररासत रति अग्गिय ॥

१—डॉ० नगेन्द्र हिन्दी वक्रोक्ति जीवित भूमिका पृष्ठ २५२ ।
२—डॉ० गुलाबराय—अध्ययन और आस्वाद पृष्ठ ३०
३—विस्तृत विवेचन के लिये देखिये—हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन—अध्याय, पूर्व भारतेन्दु नाटक ।
४—डॉ० गोविन्दराम शर्मा—हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृष्ठ ६१ ।

पयलग्गि पान पति बी जवो, नाह ने ह मुझ चित धरहु ।
दिन दिन अवद्धि जुब्बन घटे, कन्त बसन्त न गयन करहु ॥[१]

इच्छिनी, पद्मावती और सयोगिता के रूप सौदर्य वर्णन मे नखशिख वर्णन भी प्राप्त हो जाता है ।[२] सयोगिता का रूप वर्णन देखिये—

सिरमद्धि सीस फूलह सुभास, किय जमन अद्ध सुन गिरी प्रकास
कुंडली मंध बदन सुचन्द कस्तूर ढिगहै घनसार बिंद । आदि

आलोच्य काल मे छप्पय पद्धति का अनुसरण किया गया था[३] और काव्य पद्धति पर प्रबध काव्यो के साथ काव्यशास्त्र और कवि शिक्षा ग्र थो का प्रभाव पाया जाता है ।[४]

रासो ग्रथो के श्रृ गार के वर्णन एव रानियो के विरह निवेदन इसके उदाहरण है—

पीव चित्तौड न आविउ सावण पैली तीज,
ऊभी जौवे बाट रति विरहिणी, खिण खिण खावै खीज ।[५]

एव नरपति नाल्ह ने वीसल देव रासो मे रानी की व्यथा प्रकट करते हुए लिखा है—

"अस्त्रिय जनम काई दीधउ महेश, अवर जनम थारे घणारे नरेश,
रानी न सिरजाय, रोझडी घणट्ट न सिरजीय धोली गाय ।"

विद्यापति की रचनाओ मे तो ऐसे वर्णनो के साथ काव्यशास्त्रीय पदावली भी प्राप्त होती है ।

विद्यापति.—विद्यापति ने अपनी भाषा शैली को बालचन्द्र के समान चारु कहा है जिसके मूल मे नागर मनमोहिनी शक्ति है ।[६]

१—पृथ्वी राज रासु समय ६१ छंद १० एव नयन सुकज्जल रेख तपि निच्छल छवि कारिय आदि ।

२—डॉ० भागीरथ मिश्र एवं डॉ० रामबहोरी शुक्ल—हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास पृष्ठ ७६ ।

३—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—इतिहास पृष्ठ १२३ ।

४—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृष्ठ ३३८।

५—खुमाण रासौ

६—डॉ० नगेन्द्र—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित पृष्ठ २५२

"बालचन्द विज्जवई भाषा। दुहुं नहि लागई दुज्जन आसा।
ओ परमेसर हर सिर सोहाई। ई निच्चय नायर मन मोहई।"

और उनके काव्यो मे विदग्ध जनो के रस ग्रहण करने का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[1]

विद्यापति के ग्रंथ और शास्त्रीय लक्षण –

विद्यापति ने श्रृंगार के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है।[2] इनके वर्णनो मे रीति कालीन चित्र का (पूर्व) रूप अवश्य ही विद्यमान है। यथा—

कुच जुग चारु चकेवा,
निअ कुल आनि मिसा ओल कोने देवा।
तें सकाञें भुज पासे,
बांधि धएल उडि जात अकासे।[3]

इन वर्णनो से डॉ० नगेन्द्र का कथन सत्य प्रतीत होता है कि चद और विद्यापति आदि को रीति शास्त्र का पूरा पूरा ज्ञान था और उस समय तक रीति ग्रथो का बहुत कुछ प्रचार हिन्दी मे निश्चित रूप से हो चुका था।[4]

अन्य देशज भाषाओ मे भी ऐसे ही वर्णन और शास्त्रीयतत्त्व प्राप्त होते है।

डिंगल वयण सगाई—डिगल मे भी काव्यशास्त्रीय तत्त्वो के विकास के चिन्ह मिलते है। वयण सगाई जैसे अलकार और बेलिये गीत का होना हमारे कथन की पुष्टि करता है। यहा तो मौखिक रूप से आलोचनात्मक और प्रशसात्मक उक्तियाँ भी प्राप्त होती है—

सोरठियो दूहो भलो, भली मरवण रीवात।
जोवण छाई धण भली, तारों छाई रात।

और वयणसगाई की तो बहु चर्चित परिभाषा है ही—

१—डॉ० नगेन्द्र—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित पृष्ठ २५२
२—डॉ० भागीरथ मिश्र एवं डॉ० रामबहोरी शुक्ल—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृष्ठ ८३।
३—विद्यापति पदावली पृष्ठ ३३ (गगानन्द सिह द्वारा संम्पादित। ऐसे ही उदाहरणो के लिये देखिये डा० उमेश मिश्र द्वारा सम्पादित विद्यापति की पदावली पृष्ठ १००, ११२,४८ और १२१)
४—डॉ० नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ १७२।

वयणसगाई बालियो पेखीजे रस पोख ।
होम हुतासन बोल्न मे, दीखे हेकन दोष ॥[१]

निष्कर्ष—

फिर भी यह मान लेने मे आपत्ति नही है कि साधारणत देशज विभाषाये सस्कृत के काव्य सिद्धान्तो और पूर्व प्रचलित आलोचना के मानदण्डो का समयानुसार उपयोग कर लेती थी और राजस्थानी को उसका अपवाद नही माना जा सकता है ।[२] प्रारम्भ मे जब देशी भाषाये सस्कृत से अलग हुई थी तब उनका उद्देश्य जनता और साधारण लोगो के भावो को अभिव्यक्त करना ही था । उसमे धार्मिक भावनाओ ने भी अभिव्यक्ति प्राप्त की । शनै शनै ये भाषाये भी साहित्यिकता की ओर बढी, इनका भी अपना साहित्य हुआ । इसमे इन्होने पूर्व प्रचलित काव्य सिद्धान्तो को अपनाया । तदनन्तर ये भाषाये अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो का भी निर्माण करने लगी । इन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे अधिकाशत सस्कृत की भावनाओ और शैली का उपयोग कर लिया जाता था । हिन्दी के प्रारम्भिक काल मे सस्कृत और इन भाषाओ के ग्रन्थ विद्यमान थे । इसलिये रासो, ग्रथो, मे काव्यशास्त्रीय परम्पराएँ और उनसे सम्बन्धित उक्तियाँ हिन्दी मे भी स्थान प्राप्त करने लगी । हाल की सतसई के यौन सम्बन्धो और प्राकृत चित्रो ने हिन्दी मे भी स्थान प्राप्त किया । ऐसे वर्णन आगे चल कर रीतिकाल मे साहित्याकाश को आच्छादित करने लगे ।[३]

साहित्य जगत का यह सबसे बडा सत्य है कि इसमे परम्पराये विकसित होती है । इसमे एकाएक कोई वाद या नवीन घटना उपस्थित नही हो पाती । इसलिये हिन्दी मे भी पूर्व प्रचलित शास्त्रीय धारणाये और विकासमान तत्त्व समय के साथ विकसित होते है ।

इस युग मे ऐसे फुटकर पद भी प्राप्त होते है जो मनोरजनार्थ लिखे गये थे और उन्हे हमे नखशिख वर्णन, प्रकृति चित्रण भावो के दिग्दर्शन और अलकारो के उदाहरण की सज्ञा दे देनी चाहिये ।

"गोरी सोये सेज पर मुख पर डारे केश ।
चल खुसरो उस देश मे रैन भई सब देश ॥"

१—विस्तृत विवेचन के लिये देखिये—वीरसतसई—सूरजमल मिश्रण कृत, भूमिका ।

२—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास ।

३—डॉ० नगेन्द्र—रीति काव्य की भूमिका, पृष्ठ १६६ ।

अमीर खुसरो का जन्म हिजरी सन् ६५१, तदनुमार सम्वत् १३१० वि० मे हुआ और उनकी मृत्यु वि० स० १३८१ मे हुई। वे हिन्दी के प्रारम्भिक कवियो मे से है और उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण अनुभव अग्रेजी के प्रारम्भिक कवि चॉसर के अनुभवो से निकट साम्य रखते है। यथा, अमीर खुसरो, बल्बन के पुत्र मुहम्मद के दरबारी शायर थे। जब मुगलो ने पजाब पर आक्रमण किया तो खुसरो बन्दी बना लिये गये और वे बडी कठिनाई से मुक्त हो सके। वे कहते है :—

मुसलमानो के खून ने बहकर रेगिस्तान को रँगा।

× × ×

मै भी पकड़ा गया और भय से मेरी नसो में खून बहने को एक रक्त बिन्दु भी नही रह गया।

× × ×

मुझे पकड़ने वाला मगोल घोड़े पर बैठा था, जैसे पहाड़ के सानु पर सिंह टहल रहा हो।

× × ×

लेकिन अल्ला की महरबानी से मुझे छुट्टी मिल गई।

(मध्य एशिया का इतिहास पृष्ठ ४८३-८४, कसीदे का अनु०)

इसी भाँति चॉसर भी इङ्गलैण्ड के राज्य कवि थे और फ्रास वालो द्वारा बदी बना लिये गये थे तथा वे भी कठिनाई से मुक्ति प्राप्त कर सके थे। इगलैण्ड के राजा का घोडा भी उसी युद्ध मे फ्रास वालो ने छीन लिया था और इगलैण्ड के राजा को अपना घोडा छुडाने के लिये चॉसर को मुक्त कराने अधिक धन फ्रास वालो को देना पडा था। फ्रास की दृष्टि मे इगलैण्ड के राजकवि से अधिक महत्त्वपूर्ण था इगलैण्ड के राजा का घोडा।

इसमे रहस्यवादी ढग से नायक की नायिका से मिलने की तीव्र उत्कठा प्रतीत होती है। इसी भाँति काव्य निर्माण सम्बन्धी उक्तियाँ भी प्राप्त होती है—

उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवंरस।
षट् भाषा पुराणंच, कुराणच कथित मया॥

अतएव डॉ० भागीरथ मिश्र के साथ यह निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि रसनायिका भेद आदि के भी कुछ न कुछ वर्णन प्राचीन हिन्दी ग्रन्थो मे भी प्राप्त हो

जातेहै।[1]साथ ही यह भी तथ्य है कि, इस काल मे लक्ष्य ग्रन्थो के निर्माण मे जो शास्त्रीय पद्धति निर्वाह की भावना दिखाई देती है वह इस काल के साहित्यकारो पर सस्कृत काव्य-शास्त्र के प्रभाव को सिद्ध करती है। यह युग काव्यशास्त्र के प्रति उदासीन नही था और काव्य निर्माण की पद्धति पर यदा-कदा रचयिताओ ने अपने-अपने शास्त्रीय सिद्धान्त प्रतिपादित किये है।

जिस प्रकार से पाश्चात्य साहित्यालोचना मे होमर की निम्नाकित उक्ति—"कलाकार ने सोने की ढाल द्वारा मिट्टी का विभ्रम उत्पन्न किया", आलोचना की प्रथम उक्ति मानी जाती है [2]—उसी प्रकार से वीरगाथाकाल की उपर्युक्त पद्धतियो से काव्यशास्त्र का प्रारम्भ अवश्य ही माना जाना चाहिये। ये पद्धतियाँ आगामी युगो मे विकसित होने लगी।

१—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४५।

२—स्कॉट जेम्स, मेकिंग ऑफ लिट्रेचर, होमर का विवेचन एव भूमिका ।

'ख' भाग—भक्तिकाल

भक्तिकाल के उदय के बारे मे कुछ विद्वानो ने बताया कि वह पराजित जाति के मानस का स्वाभाविक चित्रण था[1] और कतिपय विबुधो ने इसे साहित्यिक परपरा का क्रमिक विकास माना है।[2] प्रथम वर्ग के आलोचको ने इतिहास को सामयिक खड मे ही देखा और दूसरे खेमे के भावक, साहित्य और सस्कृति के क्रमबद्ध विकास को प्रस्तुत करते है। हमारे दृष्टिकोण से सत्य यह है कि भक्ति काल मे शास्त्रीय परम्परा का उल्लघन नही हो सका। आज तो आलोचक भक्तिकालीन आधार भूत सिद्धान्तो के अध्ययन की आवश्यकता पर बल देते हैं।[3] इस युग के काव्य को रसध्वनिवाद के अन्तर्गत भी माना जाता है।[4] इस काल मे शास्त्रीय सिद्धान्तो ने विकास किया।

भक्तिकालीन कवि—

आलोच्य काल मे भक्ति रस और वात्सल्य रस को भी काव्य मे स्थान दिया गया। माधुर्य भक्ति को रूप गोस्वामी से बल मिला। इसमे सहयोग दिया सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी और मधुसूदन सरस्वती ने। जायसी, सूर और तुलसी आदि ने काव्य मे इन सिद्धान्तो के व्यवहारिक पक्ष को प्रस्तुत किया। नन्ददास ने सस्कृत की रसमजरी के आधार पर हिन्दी रसमजरी की रचना की, मोहनलाल मिश्र का शृङ्गार सागर और श्रुति भूषण का भूप भूषण शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकनीय है।

मलिक मोहम्मद जायसी ने पद्मावत को एक रूपक के रूप मे चित्रित किया। यथा—

"तन चितवर मन राजा किन्हा" आदि।

१—(क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, १२वाँ सस्करण, पृष्ठ ५६।

(ख) डॉ० रामबहोरी शुक्ल और डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृष्ठ १४३।

२—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका।

३—डॉ० हरबंशलाल शर्मा की ऐसी मान्यता है।

४—डॉ० मनोहर काले—हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ ६११

इसमे प्रबन्ध परम्परा निर्वाह और रूपक प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि से उल्लेखनीय है। सिहल द्वीप, जल क्रीडा[1] समुद्र, विवाह, युद्ध और नख-शिख वर्णन शास्त्रीय दृष्टि से द्रष्टव्य है। इसमे शृङ्गार रस को प्रमुख स्थान मिला है और करुण, वीर, शान्त और वीभत्स रसो का समावेश भी इसमे किया गया है—पद्मावती के दाँतो की शोभा भी इस दृष्टि से दर्शनीय है—

"शशी मुख जबहिं कुछु बाता। उठत ओठ सूरज जस राता॥
दसन चसन सौं किरण जो फूटहिं। सब जग जनहुँ फुलझरी छूटहिं॥
जानहुँ ससि मह बीजु दिखावा। चौंधि परै किछु कहै न आवा॥"[2]

जायसी की काव्य द्वारा अमर हो जाने की भावना भी सस्कृत काव्यशास्त्रो से तुलनीय है। ये कहते है—

"कहँ सुरूप पद्मावती रानी। कोई न रहा जग रही कहानी॥
× × ×
जो यह पढै कहानी,हम्ह सगरे दुउ बोल॥"[3]

यह 'काव्य यशसेर्थकृते' के अनुकूल है। जायसी ने यह आकाक्षा प्रकट की कि उनकी कविता की सरसता को आकने वाले सामाजिक भी सहृदय हो। यह सस्कृत काव्यशास्त्रो मे रसिक सामाजिक की आवश्यकता बतलाने वाले ग्रन्थो के अनुकूल है। उदाहरणार्थ जायसी कहते है—

"कवि विलास रस कमला पूरी। दूरी सो नियर-नियर सो दूरी॥
नियरे दूर, फूल जस काँटा। दूरी सो नियरे जस गुड चाँटा॥
भँवर आई बन खण्ड सन, लेह कमल की बास।
दादुर बास न पावई, भलेहि जो आछे पास॥"[4]

एव सस्कृत मे प्राप्त होता है—

"तत्व किमपि काव्यांनाम् जानाति विरलो भुवि।
मार्मिक को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम्॥"

अतएव यह सस्कृत का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

जायसी निष्कर्ष—

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि रूपक रचना, सौन्दर्य विवेचन, रसिक सामाजिक की आकाक्षा और काव्य द्वारा अमर हो जाने की भावना उन पर सस्कृत

१—पद्मावत—मानसरोवर खण्ड २।४
२—पद्मावती रूपचर्चा खड।
३—वासुदेव शरण अग्रवाल—पद्मावत ५८।१
४—वही पृ० २७

काव्यशास्त्र की छाया प्रदर्शित करती है। उक्ति की वक्रता की दृष्टि से कबीरदास जी का काव्य भी वक्रोक्ति के निकट ही दिखाई देता है।[1]

कबीरदास—

कबीरदाम ने पुस्नक ज्ञान को हेय बताया किन्तु शास्त्रीय पक्ष का उल्लघन वे भी नही कर सके है। दोहो के शैलीगत निर्वाह मे और कतिपय स्वाभाविक अलकारो के उपयाग मे उन्होने शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह किया है। उनका काव्यादर्श स्वानुभूति प्रकाशन था,[2] जो बाल्मीकि के 'मानिषाद्' के अनुकूल है। तुलमीदासजी तो शास्त्र और काव्य के पण्डित माने जाते है।

तुलसीदास—

तुलमीदासजी के मानस रूपक अलंकारों के उपयोग और बरवै रामायण का प्रणयन उनके काव्य मे रीति धारा और काव्यशास्त्रीय अशो के उदाहरण है। यही क्यो यह तथ्य इम ओर भी सकेन करता है कि अब शास्त्रीय विवेचन विकाम की ओर उन्मुख होगा क्योकि तुलसी जैसे भक्त कवि भी अलकार वर्णन की ओर आकृष्ट हुए है। इनके अलकारो पर तो आगामी रचयिताओ ने लक्षण ग्रन्थ निर्माण किये।[3] उन्होने कहा है—"रामायण मे जो धरे अलकार के भेद और औरन के लच्छन लिये रामायण के लच्छ" तुलसीदासजी ने—"गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियतु भिन्न न भिन्न।" कह कर वाणी और अर्थ को एक करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार लक्षण ग्रन्थो के अनुमार शास्त्रीय उक्ति कह सुनाई है। ऐसी उक्तियाँ इनके प्रौढ सैद्धान्तिक ज्ञान की परिचायक है।[4] इन्होने "गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी" कह कर स्वानुभूति पर बल दिया है जो सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है। इन्होने परमात्मा का गुणगान करना ही श्रेष्ठ कविता का सदुपयोग माना है।[5] उनका मत है कि परिष्कृत

१—डॉ० सरनामसिंहजी—कबीर एक विवेचन—भूमिका।
२—डॉ० रामरतन भटनागर—सूरसाहित्य की भूमिका, पृष्ठ १३०।
३—डॉ० ओमप्रकाश—हिन्दी में अलकार साहित्य पृष्ठ १७६।
४—डॉ० भगवत स्वरूप—हिन्दी आलोचना उद्‌भव और विकास पृष्ठ १६२।
५—(क) डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ३४७।
(ख) कीन्हे प्राकृत जन गुणगाना। सिर धुन गिरा लगी पछताना॥
बालकांड दोहा, १०।

हृदय मे सरस्वती की कृपा से काव्य के मुक्ता फल उत्पन्न होते है।[1] यहाँ एक तथ्य उल्लेखनीय और अवलोकनीय है कि सस्कृत के पण्डित जहाँ अपने ग्रथो और काव्यो की उत्पत्ति ब्रह्मा मे या अन्य किसी देवता अथवा उसके वाहन से वताते है।[2] [3] वही प्राकृत-अपभ्र श वाले अपने को और अपने काव्य को हीन ही बताते है। सन्देश रासककार ने कहा कि उसका काव्य उन लोगो को तव ही आनन्द देगा जब कि सस्कृत के उत्तम काव्य उपलब्ध न हो। इसी भाँति निम्नाकित पक्तियाँ भी पठनीय हैं —

बुहयण सयभु पइ विण्णवइ मइ सरिसउ अण्णा हि कुकई।
बायरणु कयाई ण जाणियउ। णउ वित्ति सुत्त बक्खाणियउ॥ आदि
(रामायण १।३)

अर्थात् कवि कहते है कि वे व्याकरण, वृत्ति, सूत्र, महाकाव्य, शास्त्र, छद और पिंगल से अनभिज्ञ है। तुलसीदास ने इसी प्रकार का वर्णन किया है —

कवि न होऊँ नही चतुर प्रबीनु। सकल कला सब विद्याहीनु॥
किवत्त विवेक एक नही मोरे। सत्य कहऊँ लिखि कागद कोरे॥[4] [5]

इससे प्रतीत होता है कि सस्कृत के साहित्य का अपनी आलोचना करते हुए अपने को पडित, शास्त्रज्ञ और दिव्य आत्माओ से सम्बन्धित वनाते थे वही तुलसीदासजी ने देशज भाषा के अनुकूल रहकर सस्कृत के साहित्यकारो के प्रतिकूल कार्य किया है। आत्मालोचन मे हिन्दी काव्य शास्त्रकार और हिन्दी के कवि अधिकाशत सस्कृत के पण्डितो के अनुकूल न होकर देशज कवियो के अनुकूल रहे है। उनमे पण्डितराज जगन्नाथ जैसा अहभाव साधारणतया देखने को नही मिलता है। महाकाव्य के पहले तुलसी की रूपक बाँधने की प्रवृत्ति भी स्वयभू के अनुकूल है इन्होने जहाँ यह कहा है—

१—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास एवं मानस बालकाड ११—
हृदय सिन्धु मति सीप समाना,······ होंई कविता मुक्ता मनि चारू॥
२—भरत कृत नाट्य शास्त्र—नाटको की उत्पत्ति की कथा।
३—राज शेखर द्वारा प्रस्तुत की गई काव्य और साहित्य की उत्पत्ति की कथाएँ।
४—जानकी मगल में भी कहा है- कवित रीति नहिं जानी, कवि न कहाऔं।
५—इन प क्तियों के लेखक का पी-एच. डी.के शोध प्रबन्धका—"पूर्व भारतेन्दु नाटकों का विवेचन"।

आखर अरथ अलकृत नाना । छद प्रबध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा । कविता राष गुन बिबिध प्रकारा ॥

वहाँ हमे ज्ञात होता है कि यह वर्ण, अर्थ, अलकार, छद, वस्तु विधान, रति-भाव और दोष आदि से परिचित थे । इस प्रकार इन्होने रीति तत्वो की ओर सकेत भी किया है ।[1]

उत्तम काव्य मे तुलसीदासजी ने निम्नाकित गुणो को अनिवार्य पाया है । वे कहते है—

"जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहिं । सो श्रम बादि बाल कवि करहिं ॥
कीरति, भनिति, भूति भलि सोइ । सुरसरि सम सब कहँ हित होइ ॥[2]

अर्थात् भावक समाज मे उस काव्य का आदर होना चाहिये एव वह लोक कल्याणकारी भी होना चाहिये । यह "कवि करोति काव्यानि स्वाद जानन्ति पडित." के स्वर मे सुनाई देता है । इसके लिये 'सहज बैर बिसराई' को आवश्यक समझा गया है । कवि को निश्छल हृदय वाला भी होना चाहिये ।

तुलसीदासजी ने कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा को भिन्न माना है और उसे सुन्दर रूप से अभिव्यक्त किया है, जिसकी डॉ० भगवत स्वरूप ने मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है ।[3] तुलसी कहते है—

मणि माणक मुक्ता छवि जैसी । अहि गिरि गज सिर सोहिं न तैसी ।
वय किशोर तरुणी तन पाई । लहई सकल सोभा अधिकाई ॥
तैसेहिं सुकवि कवित बुध कहहिं । उपजत अनत अनत छवि लहहिं ॥
(बालकाण्ड मू० गु० पृष्ठ १०)

इन्होने कविता की परिभाषा दी है—

"भाव भेद रस भेद अपारा । कवित दोष गुण विविध प्रकारा ॥
गुणन अलकारनि सहित, दूषण रहित जो होय ।
शब्द अर्थ जुत है जहाँ, कबित कहावत सोय ॥"

इससे मम्मट की धारणा की पुष्टि होती है । इन्होने सस्कृत काव्य शास्त्रकारो के समान ही काव्य पुरुष की कल्पना करते हुए कहा है—

१—डॉ० नगेन्द्र–हिन्दी वक्रोक्ति काव्य जीवित पृष्ठ १४४ ।
'डॉ० नगेन्द्र ने भक्ति काव्य में रीति और वक्रोक्ति तत्त्वों को पाया है ।"
२—मानस बालकाड १३–८, ६ ।
३—हिन्दी आलोचना उद्भव और बिकास पृष्ठ १६३ ।

"छद चरण भूषण हृदय, कर मुख भाव अनुभाब ।
चख थाई श्रुति सचारि, काव्य सु अंग सुभाब ॥"

इन्होने कविर्मनिषी परिभू, स्वयभू का भी स्मरण दिलाया है ।[1] वे जिन गुणो की ओर सचेष्ट रहे है उनने वक्रता की प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो ही रूपो से सम्भावना मानी जाती है ।

निष्कर्ष—

इससे ज्ञात होता है कि तुलसीदासजी ने देशज भाषा के ग्रन्थो से, सस्कृत के काव्यो से और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो से सामग्री ग्रहण कर अपने ग्रन्थो का निर्माण किया । उनकी मधुप वृत्ति तो प्रसिद्ध ही है । उनमे भक्ति का आधिक्य है—भाव पक्ष को कला पक्ष से अधिक महत्ता दी गई है । अत हम उनकी भाव सबलता की प्रशसा किये बिना नही रह सकते, किन्तु उनका काव्यशास्त्रीय ज्ञान भी स्तुत्य है और हम उसे दृष्टि से ओझल नही कर सकते ।

सूरदास—

भक्त कवि सूरदासजी भी काव्यशास्त्र के लक्षणो से परिचित अवश्य थे, वे तुलसी के समान ही उनसे दूर नही रह सके । इनके काव्य मे भी अलकारो, सयोग-वियोग और प्रकृति चित्रण के उदाहरण प्राप्त होते है । इनके निम्नाकित पद तो रीतिकालीन काव्य से भी लोहा ले सकते है—

धेनु दुहात अति ही रति बाढी ।
एक धार दोहनि पहुँचाबत, एक धार जहँ प्यारी ठाढी ।
मोहन कर तें धार चलति पय मोहनि मुख अति ही छबि बाढी ॥

साहित्य लहरी—

यदि साहित्य लहरी को इनकी ही रचना मानी जाय तब तो इनकी काव्य-शास्त्रीय रचना और भी प्रौढ रूप मे दिखाई देती है । आलोचको ने इनके काव्य मे प्राप्त रीति, रस और अलकार निरूपण को युग प्रभाव माना है ।[2] अर्थात् भक्तिकाल मे सूर के रचना काल तक शास्त्रीय पक्ष प्रबल हो चुका था ।[3] सूर के कूट पद इसके

---

१ हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ १६४–पाद टिप्पणी सख्या २

२—सूर साहित्य की भूमिका में डा० रामरतन भटनागर ने (पृष्ठ १३०) तत्कालीन प्रवृत्तियो का विवेचन करते हुए अलङ्कारो के निरूपण को युग प्रभाव माना है ।

३—डॉ. हरबशलाल शर्मा–सूर और उनका साहित्य पृ० ३३०।२५

प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन्होने वात्सल्य रस का सागोपाग वर्णन किया है। यह वर्णन इतनी तल्लीनता से किया गया है कि इसके आधार पर वात्सल्य को एक भिन्न रस माना जा सकता है।

साथ ही सूर के काव्य मे अलकारो को भी स्थान दिया गया है जो काव्य शास्त्र के अनुकूल है यथा—

"नील स्वेत पर पीत लाल मिनी लटकन भाल रुराई।
सनि, गुरु, असुर, देवगुरु मिलि मनो भौम सहित समुदाई॥"[१]

अग शोभा और वेश–भूषा आदि के वर्णन मे सूर को उपमा देने की तीव्र इच्छा रहती है। साहित्य के प्रसिद्ध उपमानो को लेकर सूर ने बडी क्रीडाएं की है। गोपियो के कथन हमारे वाक्यो की पुष्टि करते है। [२]इसी प्रकार से अप्रस्तुत प्रशसा द्वारा राधा के अगो का वर्णन दर्शनीय है।[३] उनके अलकारो के उदाहरण भी यह स्पष्ट करते है कि वे अलकार तत्वो को सुन्दर रूप से ग्रहण कर सकते थे।[४]

निष्कर्ष—

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूर साहित्य मे भी काव्य शास्त्रीय तत्वो के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते है। उनका स्वाभाविक चित्रण जहाँ पाठको को मन्त्र मुग्ध कर लेता है वहाँ उनके अलकार भी आकर्षण से परिपूर्ण है। दृष्टि कूट पदो के अर्थ तो समझाते समय सामान्यत. अधिकाश विद्वान टालने की सोचते है।

मीराँ बाई—

मीरा बाई जो कि कृष्ण की अनन्य भक्त थी वे भी अलकारो उपयोग और विषादमय एव अनुरागमय चित्त वृत्ति के चित्रण मे काव्यशास्त्रीय के प्रभाव

१—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ३७।
२—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ४०
३—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ३५–४०
४—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ३५–४०

से अछूती नही रह सकी है।[1] उनकी रचनाओ मे भक्ति रस का निरन्तर प्रवाह प्राप्त होता है।[2]

इनके मधुर रस के भी भाव-विभाव, अनुभावादि प्रायः उसी प्रकार प्राप्त होते हैं जैसे शृ गार रस के, केवल भेद यही है कि इसमे भगवान की भक्ति होने के कारण यह इन्द्रियातीत है और इसमे रहस्यवाद को भी स्थान मिल जाता है।[3] शरीर और आभूषणो के वर्णनो को इनके काव्यो मे स्थान मिला है जो प्रकारान्तर से नख-शिख वर्णन का निर्वाह कर देता है।[4] इसी प्रकार वर्षा ऋतु का वर्णन भी साँगोपाग बन पडा है। इनकी पदावली मे पन्द्रह प्रकार के छन्द प्रयोग प्राप्त होते हैं।[5] अतएव यह सहज ही कहा जा सकता है कि मीरा वाई के काव्य मे भाव पक्षकी सबलता होते हुए भी वे काव्यशास्त्रीय पक्ष से प्रभावित अवश्य हुई है।[6]

टीकायें—

भक्ति काल मे कतिपय टीकाये लिखी गई जो सस्कृत की तिलक या आलोचना पद्धति के निकट और अनुकूल है। इनके द्वारा कवियो की जीवनी और रचनाओ पर प्रकाश डाला गया है। टीका पद्धति मे सस्कृत शैली का अनुसरण किया गया है। भक्तमाल हमारे कथन की पुष्टि करती है। इस ग्रन्थ मे कवियो की निर्णयात्मक आलोचना की गई है जो सस्कृत के ग्रन्थो के अनुकूल है। इसमे उनके ही समान

१—परशुराम चतुर्वेदी—मीरा बाई की पदावली पृष्ठ २८।

ख—भव सागर अति जोर अनत डंडो धार।
राम नाम का वांध बेड़ा उतर परले पार—रूपक अलंकार।

ग—कुण्डली की अलक झलक, कपोलन पर छायी।
मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई॥ उत्प्रेक्षालंकार।

२—मीरा बाई की पदावली पृष्ठ ३६।

३—परशुराम चतुर्वेदी—मीराबाई की पदावली भूमिका पृष्ठ ४०-४५।

४—परशुराम चतुर्वेदी—मीराबाई की पदावली भूमिका पृष्ठ १५३।

५—परशुराम चतुर्वेदी—मीराबाई की पदावली भूमिका पृष्ठ ५२-५५

६—विभावना (पद १५१), विभावोक्ति (पद ३), वीप्सा (पद ११९), अर्थान्तरन्यास (पद ७२) आदि प्राप्त होते है और श्लेष, उपमा, अनुप्रास आदि तो बहुतायत से अधिकांश पदों में प्राप्त होते है।

गुण-दोष कथन और सार रूप मे प्रशसा अथवा निदा करने की प्रणाली को अपनाया गया है। उदाहरणार्थ भक्तमाल मे प्राप्य सूरदास से सम्बन्धित निम्नाकित पद ५खा जा सकता है —

"उक्ति चोज अनुप्रास बरन अस्थित अति भारी।
वचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुछयारी॥
प्रतिबिंबित दिविदिष्ट हृदय हरि लीला भाषी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी।
विमल बुद्धि गुण और की जोयह गुण श्रवणनि धरै।
सूर कवित्त सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै।"

इसी प्रकार से (नाभादास की भक्तमाल मे) पृथ्वीराज की आलोचना करते हुए लिखा गया है :—

"सवैया गीत श्लोक, बेलि दोहा गुण नवरस।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विध गायौ हरि जस॥"

इस प्रकार से हिन्दी मे परिचयात्मक समालोचना का सूत्रपात हुआ।[1] यह सूत्रपात सस्कृत काव्यशास्त्रीय पृष्ठ भूमि पर आद्धृत था।

अन्य कवि—

भक्ति युग मे कावयशस्त्र का एक और प्रभाव परिलक्षित होता है। वह यह है कि इस काव्य मे शृ गार, षट्ऋतु, नख-शिख आदि का वर्णन सस्कृत काव्य ग्रन्थो के अनुकूल प्राप्त होता है। यह वर्णन बहुत सीमा तक इस बात का सकेत करता है कि अब रीति काल अधिक दूर नही है। उपर्युक्त तत्त्वो की उन्नति आगामी काल (रीति काल) मे हुई। अग्रदास का अलकार पूर्ण वर्णन देखिये—

"कुंडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेशा।
तिनको निरखि प्रकाश लजत राकेश दिनेसा।
मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सुहाये।
मुख पंकज के निकट मनौ अलि छौना आये॥"[2]

१—डॉ० उदय भानुसिंह—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ २१।

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १३५, १२ वॉ संस्करण।

मनोहर कवि जो अकबर के दरबार से सम्बन्धित थे उनकी उक्तियाँ भी पठनीय है—

"बिथुरे सुथरे चीकने घने घने घुघुवार।
रसिकन को जंजीर से बाला तेरे बाल॥"[1]

रसखान का निम्नांकित छन्द भी अलंकारो और रूप वर्णन से परिपूर्ण है—

"रूप जल उठत तरंग है कटाछन के,
अंग–अंग भौरन की अति गहराई है।
नैनन को प्रतिबिम्ब पर्यौ है कपोलनि पे,
तेई भये मीन तहां, ऐसी उर आई है॥
अरुन कमल मुसकान मानौ फबि रही,
थिरकन बेसरी के मोती की सुहाई है।
भयौ है मुदित सखि लाल को मराल मन,
जीवन जुगल ध्रुव एक ठॉव पाई है॥[2]

परमानन्द दास—

परमानन्द दास के निम्नांकित पद मे भी नख–शिख वर्णन प्राप्त होता है—

"राधेजू हारावलि टूटी।
उरज कमल दल माल मरगजी; बाम कपोल अलक लट छूटी॥
वर उर उरज करज बिच अंकित, बाहु जुगल बलयावलि फूटी।
कञ्चुकी चीर विविध रंग रंजित, गिरधर अधर माधुरी घूटी।
आलस बलित नैन अनियारे, अरुण उनींदे रजनी खूटी।
परमानन्द प्रभु सुरति समय रस मदन नृपति की सेना लूटी॥[3]

उसमान ने चित्रावली मे विरह वर्णन के अन्तर्गत षट्ऋतु वर्णन सरस और मनोरम रूप मे प्राप्त होता है —

ऋतु बसन्त नौतन बन फूला। जहँ तहँ भौर कुसुम रंग भूला॥
अहू कहो सो भँवर हमारा जेहि बिनु बसन्त उजारा।

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १७९।
२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १७९।
३—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १६४।

रात बरन पुनि देखि न जाई, मानुहु दवा दहुँ दिशि लाई ॥
रति पति दुरद ऋतुपति बली । कानन देह आई दन मलि ॥[1]

कवि गंग ने भी अतिशयोक्तिपूर्ण वियोग–शृंगार का वर्णन किया है, जो बिहारी से तुलनीय है :—

"बैठी थी सखिन संग पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोग आग भरकी ।
गंग कहै त्रिविध सुगंध कै पवन बह्यौ,
लागत ही ताके तन भई विथा जरकी ॥[2]

भक्ति काल, अन्य रीति कवि—

भक्तिकाल मे कवियो ने रीति तत्त्वो पर प्रकाश डाला है । इसी वर्ग के अन्य कवियो मे निम्नांकित कवि उल्लेखनीय है । बीरबल (ब्रह्म) ने अलंकार और नायिका भेद को दृष्टि पथ पर रख कर काव्य रचना की । इनकी कविता मे संयोग–वियोग और समस्या पूर्त्ति को स्थान दिया गया है । इन्होने नवीन उत्प्रेक्षाएँ प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया । कवि गंग भी रस और अलंकार चित्रण को स्थान देते है । रहीम के बरवै तो इस सम्बन्ध मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है । बरवै नायिका भेद मे रीति काव्य का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है । इसकी विशेषता यह है कि बिना लक्षणो के बरवै छन्दो मे कवि ने नायिका भेद वर्णन किया है—

"बाहर लेके दियवा बार न जाय ।
सासु ननद ढिग पहुँचत, देती बुझाय ॥ (३)
× × ×
मोहि हत बिधु बदनी, पिय मति हीन ।
खीन मलीन बिख भयउ, औगुन तीन ॥ (६)
× × ×
टूटी खाट घर टपकत, टटियाँ टूटि ।
पिय के बाह उसिसवा, सुख कै लूटि ॥" (१४)

१—रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १०२ ।
२— रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १८६ ।

बलभद्र मिश्र ने भी नख–शिख और कई अलकारो का सुन्दर चित्रण किया है। मुबारक ने तिलकशतक और अलकशतक नामक रचनाए की है। इनमे नख–शिख वर्णन और अलकार वर्णन प्राप्त होते है। अलकशतक पोप के 'रेप ओफ दी लॉक' के समकक्ष नाम की दृष्टि से रखा जा सकता है। दोनो ही कवियो का नायिका के बालो की ओर ध्यान जाना उन पर शास्त्रीय युग के प्रभाव का परिचायक है।

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल इस युग तक निम्नॉकित प्रकार की रचनाएं प्राप्त होती है।

[क] लक्ष्य ग्रन्थ जिनमे सस्कृत शास्त्रीय नियमो के पालन का प्रयास किया गया। इनमे यत्र–तत्र शृगार रस और नायिकाभेदादि पर प्रकाश डाला गया। लक्षण ग्रन्थो के अनुकूल लक्ष्यग्रन्थो की आकाक्षा भी दिखाई देती है। तात्पर्य यह कि भाषा और भाषा ग्रन्थो को भी दृष्टि पथ से ओझल नही होने दिया।

[ख] काव्य मे अन्य कवियो से सम्बन्धित कतिपय उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। कही–कही भाषा और अलकारो पर भी इनमे प्रासगिक रूप से प्रकाश डाला जाता है। यही क्यो सामाजिको को कैसा होना चाहिये इस पर भी दृष्टि पात किया जाता है।

[ग] मुक्तको के रूप मे स्वतन्त्र आलोचनाए भी मिलती है। कही–कही स्वतन्त्र रूप से अलकारो का वर्णन भी मिल जाता है।

[घ] नख–शिख वर्णन, षट्ऋतु वर्णन और आलम्बन व उद्दीपन से सम्बन्धित प्रासगिक और कही–कही स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण भी प्राप्त होता है।

[च] कवियों के आत्मालोचन मे देशज कवियो के समान दैन्य प्रकट किया गया है। वहाँ सस्कृत रचयिताओ का अहकार प्राप्त नही होता है— वहॉ तो सन्देश रासक की शैली पर अपना ही हीन भाव प्रकट किया जाता है।

[छ] काव्य द्वारा अमर होने की भावना पर सस्कृत के अनुकूल दृष्टिपात किया गया। कवि अपनी रचना के द्वारा अमर होने की आकाक्षा रखते थे।

[ज] इन रचनाओ और साहित्यक विधाओ ने हिन्दी काव्यशास्त्र के विकास मे सहयोग दिया। इससे यह हुआ कि हिन्दी काव्यशास्त्रकारो के सम्मुख ऐसी रचनाएँ रही—लक्ष्य ग्रन्थ रहे, जिससे लक्षण ग्र थो के निर्माण करते समय रचयिताओ की दृष्टि के सामने सस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल ग्रन्थ रहे और उनके लक्षण भी (जो लक्ष्य ग्रथो पर आधारित होते है) सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल रहे। उन ग्रथो मे शृ गार, प्रकृति चित्रण और अलकार आदि की अधिकता प्राप्त होने लगी, जो विकसित होकर आगामी युग मे साहित्याकाश को आच्छादित करने लगी। यहाँ डॉ० रामकुमार वर्मा का मत उल्लेखनीय है। उनकी मान्यता है कि भक्तिकालीन विवेचन मे भावना का प्राचुर्य रहा है। इसी हेतु शृ गारिक अभिव्यक्ति के होते हुए भी भक्ति काल अपनी शुद्धता की रक्षा कर सका। वे कहते है, "हिन्दी मे रीति काल की परम्परा जयदेव के गीत गोविन्द से होकर विद्यापति की कविता मे आई थी। विद्यापति की पदावली मे नायिका भेद नख-शिख, ऋतु वर्णन, अभिसार आदि बडे आकर्षक ढग से वर्णित है। × × × पर भक्ति काल मे भावना की अनुभूति इतनी तीव्र थी कि सूर और मीरा ने राधा कृष्ण के शृ गार मय गीत गाकर भी उन्हे मर्यादा विहीन नही किया।"[१]

इससे भी हमारी इस मान्यता की पुष्टि होती है कि भक्तिकाल मे काव्य शास्त्रीय तत्त्व अवश्य ही विद्यमान थे। तत्कालीन काव्य मे भावना के आधिक्य को देख कर हम उसकी प्रशसा किये बिना नही रह सकते, फिर भी यह भी सत्य ही है कि उक्त युग मे कला पक्ष भी प्रधानता प्राप्त करने के लिये आगे बढ रहा था। यह स्वाभाविक भी था। एक तो हिन्दी कवियो के सामने कतिपय शास्त्रीय तत्त्व अवश्य ही थे। दूसरा जब तुलसीदास मानस लिख चुके तो उस ओर आगे बढना भी कठिन ही था। साहित्य जगत का यह बडा सत्य है कि जब एक कलाकार कला की सीमा पर पहुँच जाता है तो अन्य कलाकार उस ओर आकर्षित अवश्य होते है, किन्तु महानता के उस छोर तक न पहुँच कर स्वतः दिशा परिवर्त्तित कर लेते है—

---

१ – डॉ० राम कुमार बर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ८८८।

सामाजिक उन्हे नवीन दिशा की ओर बढने की प्रेरणा देते है, आलोचक भी इसमे सहयोग देते है। अंग्रेजी साहित्य मे जब शेक्सपीयर नाटक लिख चुके तब बाद मे आने वाले श्रेष्ठ नाटककार बैनजानसन को शास्त्रीय पक्ष का ही सहारा लेना पडा। यही क्यो चासर जैसे कवि के बाद भी इसी प्रकार का गतिरोध और इसी प्रकार की दिशा परिवर्तन की आकांक्षा दिखाई देती है। अतएव हिन्दी साहित्य मे आगामी युग का रीति काल होना साहित्यिक, सास्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से स्वाभाविक उपयुक्त और वाँछनीय-सा प्रतीत होता है।

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ और उनके निर्माता—

जैसा कि अब तक के विवेचन से ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य मे सस्कृत साहित्य के अनुकूल नख–शिख वर्णन प्रकृति चित्रण, लक्ष्य ग्रंथ-निर्माण, टीकाएँ प्रासगिक–सैद्धान्तिक विवेचन प्राप्त हो रहे थे, किन्तु रस-रीति पर ही दृष्टि रख कर किसी ग्रथ का निर्माण नही हो सका था। यह कार्य कृपाराम त्रिपाठी ने किया। उन्होने अपने ग्रंथ से साहित्य की इस विधा के अभाव की क्षति–पूर्ति की।

कृपाराम त्रिपाठी—

कृपा राम ने दोहो मे हिततरगिणी की रचना करते हुए लिखा है—

> **"बरनत कवि शृंगार रस, छन्द बडे विस्तार।**
> **मै बरन्यौ दोहानि बिच याते सुगर विचारि॥"[1]**

इससे यह ज्ञात होता है कि इससे पूर्व अन्य बडे छन्दो मे शृंगार रस का वर्णन हो चुका था किन्तु आज वे ग्रथ अप्राप्य है।[2] इनके इस कथन का अर्थ यह भी हो सकता है। कि कवि–सस्कृत के साहित्यकार अत्यन्त विस्तार पूर्वक शृंगार रस का वर्णन करते है। चाहे जो कुछ हो इतना तो स्पष्ट है कि कृपाराम को अन्य कवियो के शृंगार रस के ग्रंथो का ज्ञान था।

इन्होने कहा है—

> **"कृपाराम यो कहत है, भरत ग्रन्थ अनुमानि।"**

१—हित तरगिणी २।

२—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४७।

इससे ज्ञात होता है कि इन्होने भरत ग्रथ के अनुसार, नाट्यशास्त्र का सहारा लेकर अपना विवेचन प्रस्तुत किया है। फिर भी नायिका भेदादि मे स्वाधीन-पतिका इत्यादि का भेद करने से जैसा कि डॉ० भागीरथ मिश्र ने कहा है, इन्होने भानुदत्त का भी सहारा लिया है।[1,2]

निष्कर्ष—

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य के प्रथम प्राप्य रीति ग्रथ पर सस्कृत काव्यशास्त्रो का प्रभाव है। साथ ही यह भी स्पष्टत परिलक्षित होता है कि लेखक किसी एक शास्त्रीय ग्र थ का सहारा न लेकर एकाधिक ग्र थो का और शास्त्रकारो का सहारा लेते है, यह प्रवृत्ति कालातर मे विकसित होती जायेगी।

तदनतर कतिपय ऐसे ग्र थो का उल्लेख प्राप्त होता है जिनका अस्तित्व केवल साहित्य ग्र थो पर ही आधारित है।[3] ऐसे ग्रथ वास्तव मे प्राप्य न होकर केवल सदर्भ सूची की ही शोभा बढाते है। गोप विरचित राम भूषण अलकार चन्द्रिका एव मोहनलाल का शृ गार सागर ऐसे ही ग्र थ है। कवि करनेश कृत करुणा भरण, श्रुतिभूषण और भूपभूषण ऐसे ही ग्र थ है।[4] इसमे करुणाभरण नामक कृष्णजीवन लच्छीराम कृत नाट्य ग्र थ तो देखने को मिलता है, किन्तु करुणा भरण नामक शास्त्रीय ग्र थ का अभाव खटकता ही रहता है।[4] यहाँ यह कहना उपयुक्त ही होगा कि ग्र थो के नामो से तो यही ज्ञात होता है कि अलकार चद्रिका, अलकार ग्र थ और शृ गारसागर, शृ गार रस से सम्बन्धित होगे। यदि ऐसा ही हो तो यह ग्र थ भी सस्कृत काव्यशास्त्र पर आधारित प्रतीत होते है। नन्द दास विरचित रस मजरी भी शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकनीय है।[6] इन्होने हाव-भाव, हेला और रति का वर्णन किया है।

१—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४७।
२—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी रीति साहित्य पृष्ठ ३४।
३—मिश्र बन्धु विनोद भाग १ पृष्ठ ३०१ द्वितीय सस्करण।
४—क–मिश्र बन्धु विनोद भाग १ पृष्ठ ३०१ द्वितीय संस्करण पृष्ठ ३४७।
ख–डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४८।
५—हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन—पूर्व भारतेन्दु कालीन नाटक।
६—नन्द दास ग्रंथावली—भूमिका, बाबू ब्रज रत्न दास लिखित।

नन्ददास—

नन्द दास विरचित रसमजरी एक नायक-नायिका भेद सम्बन्धित ग्रथ है।[१] नाट्य शास्त्र दश रूपक और भानुदत्त की रस मजरी मे स्त्रियो के सात्विको के वर्णन प्राप्त होते है। भानुदत्त ने इन्हे 'हाव' नाम दिया था। नन्ददास ने 'हाव' वर्णन किया है। 'हाव, भाव' हेला और रति का उन्होने वर्णन किया है। इसके उदाहरणो मे भानुदत्त की रस मजरी से अनुवाद कर लिया गया है। अतएव यह कहा जा सकता है कि इसका प्रणयन सस्कृत काव्यशास्त्रो से प्रभावित है।

नन्ददास एक ऐसे भक्त कवि है जिन्होने, तुलसी का सन्देश रत्नावली तक को पहुँचाया।[२] जिन पर कृपा करके भगवान श्री कृष्ण ने 'राम' का रूप धारण कर तुलसी को दर्शन दिये।[३] ये भक्त होने से पूर्व रसिक भी रह चुके थे।[४] अतएव इनके काव्य मे रसिकता का होना स्वाभाविक ही है। इन्होने अपने मित्र के कहने पर "रस मजरी" नाम के काव्यशास्त्रीय ग्र थ का प्रणयन किया जिसमे नायिका भेद का वर्णन मिलता है। इस दृष्टि से इसे रीति ग्र थो मे स्थान दिया जा सकता हैं और आलोचको के इसे रीति ग्र थो मे स्थान न देने पर बाबू ब्रज रत्न दास ने कहा है—"ऐसा केवल इस ग्र थ के अप्राप्य होने के कारण ही हुआ है।[५]

रसमंजरी—

इस ग्रथ की रचना की प्रेरणा इन्हे एक मित्र से मिली जिससे ज्ञात होता है कि नायिका वर्णन युग की माग बनता जा रहा था। कवि यदि स्वत. नही लिखते तो उनके मित्र उन्हे कह देते अथवा मित्र के कहने की बात कल्पना ही मान ली जाय तो यह तो मानना ही होगा कि कवि स्वय इस ओर आकृष्ट हुए थे। काव्यशास्त्र के अभाव की पूर्त्ति के लिये नन्ददास ने अनेकार्थमजरी तथा मजरी दोहाकोष भी इन्होने प्रस्तुत किये। इनकी रस मजरी और बिरह मजरी मे नायिका भेद को स्थान

१—नन्द दास ग्र'थावलि, प्रथम भाग पृष्ठ ३९ (सम्पादक—उमाशंकर शुक्ल)
२—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १४।
३—नन्द दास ग्रथावली पृष्ठ २१।
४—नन्द दास ग्र'थावली पृष्ठ २१।
५—नन्द दास ग्रथावली (लेखक ब्रज रत्न दास)

दिया गया हैं। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि सस्कृत साहित्य के अनुकूल ये "भाषा" को समृद्ध बनाने के पक्षपाती थे जिसमे युग माग और इनके स्वभाव ने सहयोग दिया।

रसमजरी मे परिभाषा तथा उदाहरण दोनों ही एक ही पद मे दिये गये हैं, इसकी आलोचको ने प्रशसा की है।[१] इसके आरम्भ मे प्रभु को ही रस का आधार कहा गया है। उदाहरणार्थ—

"है जो कुछु रस इही ससारु। ताकहुँ प्रभु तुम ही आधारु॥
ज्यो अनेक सरिता जल बहै। आनि सबै सागर में रहै॥

× × × ×

अगनि तै अनगन दीपक बरै। बुहरि आनि सब मैं ररै॥
ऐसे हि रूप प्रेम रस जो है। तुम तै है तुम हि करि सो है॥"[२]

जैसा कि पहले कहा गया है, इन्होने लिखा है कि एक मित्र के कहने पर इन्होने इसकी रचना की, उन्होने कहा—

इक मित्त हम सौ अस गुन्यौ, मै नाईका भेद नहीं सुन्यौ।
अरु जु भेंद नायिक के गुनै, ते हुँ मै नीके नहीं सुने॥[३]

तदनन्तर उन्होने कहा कि —

हाव भाव हेला दिक जिते, रति समेत समझाबहु तितै।
जब लग इनके भेद न जाने, तब लग प्रेम तत्त्व न पिछानै ,।[४]

इससे ज्ञात होता है कि "प्रेम तत्त्व" को पहिचानने के लिये इन्होने इसकी रचना की। इससे प्रतीत होता है कि शृगार को इन्होने महत्त्व दिया है, जो कि अग्नि पुराणादि के अनुकूल है।

१—नन्द दास ग्रथावली पृष्ठ ६४।
२—नन्द दास ग्रथावली पृष्ठ १२६
३—नन्द दास ग्रथावली पृष्ठ १२६।
४—नन्द दास ग्रथावली पृष्ठ १२७।

सहृदय सामाजिक—

इन्होने सहृदय सामाजिको की आवश्यकता पर बल दिया है—

"जाको जहँ अधिकार न होई। निकट हि वस्तु दूरि है सोइ ॥"
मीन कमल के ढिग हि रही। रूप रंग रस मधू नहि लहि।
निकट हि निरमोहिक नग जैसे। नैनहीन तिहि पावै कैसे ॥
तासौ 'नन्द' कहत तब उत्तर। मूरेहत जन मो मोहित दूतर ॥[1]

यह आवश्यकता शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकनीय है और जायसी के भी ऐसे ही कथन से तुलनीय है। उन्होने भी कहा कि—'दादुर' कमल के पास होते हुए भी कमल की सुगन्ध नही ग्रहण कर सकता है, वैसे ही जड व्यक्ति काव्य सौन्दर्य-परीक्षण मे असमर्थ ही होता है।

नायिका भेद—

तदनन्तर नायिका भेद प्रारम्भ होता है। वे कहते है—

"जग में जुवती त्रय परकार। कवि कहता निज रस विस्तार।
प्रथम स्वकीया पुनि परिकीया। इस समान बखानिय तिय ॥[2]

स्वकीया, परकीया और सामान्या के भेद के पश्चात् वे मुग्धा, मध्या और प्रौढा के विवेचन करते है। उनके भेदो प्रभेदों का भी वर्णन किया गया है।[3] उन्होने लक्षण और उदाहरण एक ही पद मे दे दिये है और उदाहरण सरस भी है। यथा-ज्ञात यौवना के सम्बन्ध मे ये लिखते है :—

"सहचरि के उरजन-तन चहै। अपने चहै मुसकि छवि लहै ॥
सखि कहै बाल तुब कुच नये। इकठे उभय सभु से भये ॥
सो सुकृति वह निज नख धरि है। इन कहुँ चन्द चूड जस करि है।
मुसकि सखी कौ मारे जोई। ज्ञात जोवना कहिये सोई ॥[4]

१—नन्द दास ग्रथावली—पृष्ठ १२६।
२—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १२७।
३—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १२७–१४०।
४—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १२८

इसी भाँति मुग्धा–अभिसारिका प्रभृति के लक्षण–उदाहरण पठनीय है ।[1] तदनन्तर नायक एव भाव-हाव-हेला और रति का भो सक्षेप मे वर्णन किया गया है ।[2]

विरहमंजरी—

विरहमजरी का उद्देश्य कवि ने यो बताया है—

"परम प्रेम उच्छ्रल इक, बढ्यौ जु तन–मन मैन ।
व्रज बाला बिरहिन भइ, कहति चन्द सो बैन ॥
अहो, चन्द रस कन्द हो, जात आहि–उहि देस ।
द्वारावति नन्द-नन्द सौं, कहियो बाल सन्देश ॥[3]

इन्होने इसमे विरह वर्णन को मुखरित किया है। इसे बारह भागो मे विभाजित किया है । प्रत्यक्ष विरह वर्णन, वहाँ होता है जहाँ नायक के होते हुए भी नायिका को भ्रम वश विरह हो जाता है, यथा—

"ज्यों नवकुंज सदन श्री राधा । विहरति पिय सग रूप अगाधा ॥
पौढी प्रीतम अक सुहाई । कछु इक प्रेम लहरि सी आई ॥
सभ्रम भई कहत रस बनिता । मेरे लाल कहाँ री ललिता ॥'[4]

तत्पश्चात् पलकातर विरह को स्थान दिया गया है। उदाहरण के लिये—

'सुनि पलकान्तर विरह की बातें । परम प्रेम पहिचानत तातें ॥
सोभा–सदन बदन अस लोनौं । कोटि मदन छबि करि नेंहि होनौं ॥
सौं मुख जब अवलोकन करै । तव जु आइ बिचि पलकै परै ॥
व्याकुल ह्वै धाई ब्रज नारी । तिहि दुख देत विधातहि गारी ॥
बडौ मद अरविन्द सुत, जिहि न प्रेम पहिचानि ।
पिय मुख देखत दृगन कै, पलक रची बिचि आनि ॥"[5]

१—नन्द दास ग्रन्थावली—पृष्ठ १३७
२—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १३९ से १४१ ।
३—नन्द दास ग्रथावली पृष्ठ १४२ ।
४—नन्द दास ग्रथावली पृष्ठ १४२ ।
५—नन्द दास ग्रथावली पृष्ठ १४२ ।

ये भक्ति कालीन परम्परा के अनुकूल है। रीतिकाल मे भी आँखो को लेकर कई ऐसी उक्तियाँ कही गई है—

"देखत बनै न देखते, बिनु देखे अकुलाहि"

एव इसी तरह केशव ने भी कहा कि राम सीता के मिलन के समय सीता की पलके बन्द होगई थी। इस प्रकार इन पर युग का प्रभाव है और उसका उन्होंने विस्तृत वर्णन किया है। इससे ज्ञात होता है कि रीतिकालीन तत्त्व प्रगति की ओर बढ रहे है। तत्पश्चात् वनातर विरह और देशान्तर विरह का वर्णन है। इसके वाद इन्होने बारहमासा को स्थान दिया है। यह हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल था। रासो ग्र थो से इसकी परम्परा चल रही थी। अन्त मे इन्होने ब्रह्म को "पूर्ण परमानन्द" कहा है। इस पर रस को ब्रह्मानन्द सहोदर आदि कहने की भावना की छाया का अनुमान लगाया जा सकता है—सक्षेप मे यह शब्दावली साम्य कहा जा सकता है।[1]

इन्होने पदावली मे भी "पूर्वानुराग" आदि को स्थान दिया है जिससे इनकी नायिका भेद सम्बन्धी ग्र ंथ प्रणयन की रुचि का आभास मिलता है।

अनेकार्थ ध्वनिमंजरी—

अनेकार्थ ध्वनिमजरी मे पर्यायवाची शब्द दिये गये है। जहाँ खुसरो ने खालक बारी मे शब्द और अर्थ दिये थे, वहाँ इन्होने पर्यायवाची शब्द दिये है। यथा —

"जलज मीन, मोती जलज, जलज शख अरु चन्द।
जलज जु कमल फिरावते, ब्रज आवत नन्द चन्द॥"[2]

इसी प्रकार फूलो पर कवि ने सुन्दर शब्दावली मे अपनी भाव व्यञ्जना व्यक्त की है —

"फूलन सौं बेनी गुही, फूलन की अगिया,
फूलन की सारी मानो, फूली फुलवारी है।

१—नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ ३१०।
२—नन्द दास ग्र ंथावली पृष्ठ ४७।

फूलन की दूलरी, हुमेल हार फूलन के,
फूलन की चम्प माल, फूलन गजरारी ॥"[1]

निष्कर्ष—

अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि युग मे रीति तत्वो की माग बढ रही थी। कवि सस्कृत के अनुसार कही शृ गार रस को महत्ता देता, नायिका भेद वर्णन करता तो कही सहृदय सामाजिक की आवश्यकता अपने से पहले के कवियो के अनुकूल प्रकट करता। भाषा को समृद्ध करने की लालसा से वह पर्याय-वाची शब्द भी प्रदान करता। विरह और नायिकाओ ने प्रमुखता प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था।

आचार्य केशव दास—

केशवदास कवि और आचार्य, दोनो ही रूपो मे हिन्दी की विभूति है।[2] आलोचकों का मत है कि केशव का उपदेश सस्कृत के शास्त्रीय भडार को भाषा वालो के सामने रखना ही था और वे काव्यागो का विवेचन कर कोई नया सिद्धान्त खडा करना नही चाहते थे।[3] विद्वान आलोचक और साहित्य मर्मज्ञ डॉ० रामशकरजी शुक्ल की स्तुत्य मान्यता है कि—

"केशव ए ग्रेट मास्टर एण्ड राइटर औफ पोइटिक्स विद सफिसियेण्ट औरिजिनेलिटि, कुड नोट एट्रेक्ट पीपल टू फोलो हिम"[4]

यह कथन सत्य ही है,—
केशव ने भामह, दण्डी, उद्भट्ट और रुद्रट को अपने विवेचन का आधार बनाया, जो आगामी युग मे सामान्यत अधिकाश रूप से रीति ग्र थकारो के आधार नही रहे। रीति काल मे प्रमुख रूप से कुवलयानन्द और चन्द्रलोक, साहित्य दर्पण एव काव्य प्रकाश को आधार माना जाने लगा, किन्तु केशव का महत्त्व इस लिये

१—नन्द दास ग्र थावली पृष्ठ ३२८।
२—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—केशव ग्रथावली (सम्पादक—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)
३—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४६।
४—इवोल्युशन ओफ हिन्दी पोइटिक्स—डॉ.आर०एस० शुक्ला 'रसाल'

माना जाता है कि उन्होने यह जागरुकता–पूर्वक प्रतिपादित किया कि सस्कृत के ग्रन्थो का आधार मान कर हिन्दी वालो को रचना करनी चाहिये । साथ ही आश्रय-दाताओ की प्रशसा किये विना भी उनका मनोरजन किया जा सकता है और राज्याश्रय मे रहा जा सकता है । आचार्य के रूप मे केशव ने काव्य के सभी अ गो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया और कही–कही नवीन वर्गीकरण को भी स्थान दिया जो उनकी प्रतिभा और महत्ता का दर्शन कराता है ।[१] केशव ही एक ऐसे आचार्य है जिन्होने सस्कृत साहित्य मे प्राप्य हाव भाव का वर्णन केवल विस्तार पूर्वक ही नही अपितु प्रश्नात्मक रूप से भी किया है । इस प्रकार केशव अपने आप मे असामान्य मौलिकता से सम्पन्न महत् काव्यकार थे, जिनकी महत्ता के अनुकरण की कल्पना का पीछे के लोग विचार भी नही कर सके ।

केशव का पूर्ववर्त्ती काव्यशास्त्रकारो को अपनाने का एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी हो सकता है कि सस्कृत की शास्त्रीय धारा उस समय तक भी चल रही थी–रस गगाधर के प्रणेता पण्डित राज जगन्नाथ तो शाहजहा के समय तक विद्यमान थे । वे अपने अह मे डूबे जा रहे थे । उनका तो कहना था कि जो उनकी रचनाओ मे रस ग्रहण नही कर सकते वे निरे जड है । उधर केशव मे भी अहम् तो था ही । उन्हे भी खेद था कि—

भाषा बोलि न जानही जिनके कुल के दास ।
भाषा कवि भी मद मति, तेहि कुल केशवदास ।।

अतएव उन्होने पूर्ववर्त्ती काव्यशास्त्रकारो भामह दण्डी और उद्भट को अपनाया जिससे उनके अहम् की तुष्टि हो और वह पुरातन होने के कारण वहुत सीमा तक अज्ञात भी हो एवम् अधिकाशत' नवीन दिखाई दे । यह शास्त्रज्ञान पण्डित राज की शास्त्रीय धारणा से भिन्न था । इसलिये वे कह सकते थे कि वे सस्कृत का सहारा लेते है तो क्या, परवर्ती काव्यशास्त्रकार जिनकी अन्तिम सीमा पर पण्डित राज भी आ जाते थे उन्हे केशव ने छोड दिया । एक तथ्य यह भी है कि उत्तरकालीन भारतीय आचार्य स्वयम् पिष्टपेक्षण कर रहे थे ।[२] तब भला केशव

१—डॉ० भागीरथ मिश्र–हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृष्ठ ५१ ।
२—डॉ० नगेन्द्र–हिन्दी रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ १५३ ।

इन्हे क्यो अपनाते। साथ ही उनकी धारणा थी कि अर्वाचीन से प्राचीन अच्छा है तो यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि, उन्होने प्राचीनतर से प्राचीनतम को श्रेष्ठतर माना हो। अतएव केशव ने रीति ग्रन्थ प्रण्यन कार्य प्रारम्भ तो कर दिया किन्तु परवर्त्ती कलाकारो को नही अपना कर उन्होने पूर्ववर्ती शास्त्रकारो को महत्ता प्रदान की। उनकी रसिक प्रिया इस बात का भी प्रमाण है कि उन्होने रस और नायिका भेद के विवेचन मे उत्तर ध्वनि काव्य के ज्ञान का भी उपयोग किया था।[१]

केशव के सामान्य अलकार वर्णन और विशेषालंकार वर्णन शैली से सम्बन्धित है। यह भी पूर्व ध्वनि कालीन विचार धारा पर आश्रित है। सामान्य अलकारो का वर्णन अमर की काव्य कल्पलतावृत्ति पर निर्भर करता है तथा केशव के मिश्र–अलकार, अलकार शेखर से अनूदित है।[२] इनके विशेष अलकार दण्डी के काव्यादर्श से प्रभावित हैं। सस्कृत के काव्यशास्त्रों के प्रभाव की दृष्टि से इनकी कविप्रिया और रसिकप्रिया महत्त्व पूर्ण हैं।

कविप्रिया और रसिकप्रिया—

कविप्रिया के प्रणयन का उद्देश्य कवि के ही शब्दो मे स्पष्ट था :—

"समुझै बाला बालक हुँ, वर्णन पन्थ अगाध"[३]

किन्तु रसिकप्रिया का उद्देश्य इससे भिन्न था—ये रसिको के लिये थी। कवि ने स्वय स्पष्ट किया है —

"अति रति गति मति एक करि, विविध विवेक विलास।
रसिकन को रसिक प्रिया, किन्हीं केशव दास॥"[४]

केशव ने कवियो को तीन भागो मे बाँटा है —

"केशव तीन हुँ लोक में, त्रिविध कविन के राय।
मति पुनि तीन प्रकार की, वर्णत सब सुख पाय॥
उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरि रस लीन।
मध्यम मानत मानुषनि, दोषि अधम प्रवीन॥"[५]

१—डॉ० भागीरथ मिश्र हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १५०–५६
२—डॉ० भागीरथ मिश्रहिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १७५
३—कवि प्रिया–पृष्ठ ६
४—केशव ग्रंथावली–सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृष्ठ २
५—चतुर्थ प्रभाव कवि प्रिया छन्द १, २

इन्होने यह भी सुन्दर रूप से प्रतिपादित किया कि—

"केशव दास प्रकाश बहु, चन्दन के फल फूल।
कृष्ण पक्ष की जोन्ह ज्यों, शुक्ल पक्ष तम मूल ॥"

एव—

"जहँ जहँ वरणत सिन्धु सब, तँहै तँह रतननि खिले।
सूक्ष्म सरोवर कहैं, केशव हंस बिशेष ॥"

उन्होने कहा कि कवि रूढ़ियो का वर्णन भी करते है, यद्यपि वैसा किसी ने देखा नही।[1]

रसिकप्रिया—

रसिकप्रिया के प्रारम्भ में केशव ने गजानन्द की स्तुति की और शास्त्र सम्मत ढग से नव रसो को स्वीकार किया, शृंगार को रस राज के रूप मे माना।

अति अद्भुत रचि विरंचि—नव रस मय ब्रजराज नित।

एव, सबको केशवदास हरि नायक है शृंगार।[2]

इन्होंने रस की महत्ता भी प्रतिपादित की है—

"ज्यों बिनु डीठि न सौभिजै लोचन लौल विसाल,
त्यौंही केशव सकल कवि बिनु बानी न रसाल।[3]

राधिकाजू का वीर रस का वर्णन भी इनकी शृंगार प्रियता को प्रकट करता है। यथा—

गति गजराज साजि देह कीं दिपति बाजि,
हाव रथ भाव प्रतिराजि चली चाल सों।
केसोदास मंदहास असि कुच भट भिरे,
भेंट भर प्रतिभट भाले नख जाल सौं।

१—कविप्रिय चतुर्थ प्रभाव ४ व ११ वे दोहे के आगे।
२—केशव-ग्रंथावली (खण्ड १) पृष्ठ २–१४
३—केशव ग्रंथावली (खण्ड १)–पृष्ठ ८५

लाज साजि कुलकानि सोच पोच भय मानि,
भौंहैं धनु तानि बान लोचन बिसाल सो।
प्रेम कौ कवच कसि साहस सहायक लै,
जीत्यौं रति-रन आजु मदन गुपाल सो ॥[1]

श्रृंगार को भी प्रकाश और प्रछन भेदो मे बाँटा गया है। श्री राधिका जू के प्रच्छन और प्रकाश श्रृंगार के उदाहरण भी दिये गये है। इन्होने काव्य-शास्त्र के ही समान नही अपितु काम शास्त्र के समान भी नायिकाओ के वर्णन किये है। ऐसा वर्णन सस्कृत काव्यशास्त्रकारों मे विश्वनाथ ने ऐसे जाति भेदो का सकेत मात्र दिया था किन्तु केशव ने उनका विस्तृत विवेचन किया है।[2] यही नहीं मुग्धा के सुरत लक्षण भी दिये है।[3] उन्होने दर्शन-लक्षण बताते हुए प्रकट किया है —

ये दोऊ दरसै, दरस होंहि, सकाम सरीर।[3]

इसी भाँति दम्पत्ति चेष्टा, मिलन स्थान (जनी के घर, सहेली के घर, सूने घर, अतिमय मिलन) श्रीमती राधा की पत्री, मालीन को वचन, राधा की सखि का वर्णन आदि को भी इन्होंने विस्तृत रूप दिया है जैसा कि संस्कृत के काव्य-शास्त्र मे नही प्राप्त होता है। इन वर्णनो से रसिक जनो को ग्रन्थ प्रदान करने के उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।

साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि इनका नायिका वर्णन काव्यशास्त्र के अनुकूल भी है। उदाहरण के लिये अष्ट नायिका वर्णन देखा जा सकता है।

ये सब जितनी नायिका, बरनी मति-अनुसार।
केशवदास बखानिये, ते सब आठ प्रकार ॥
स्वाधिनपतिका, उत्कहौं, बासकसज्जा नाम।
अभिसधिता बखानिये और खडिता बाम ॥

१—केशव-ग्रंथावली पृष्ठ ८५
२—वही पृष्ठ ८
३—वही-पृष्ठ १२

केशव प्रोषित प्रेयसी लब्धा बिप्र सु आनि।
अष्ट नाइका ये सकल अभिसारिका सुजानि ॥[१]

इनमे इन्होने उदाहरण भी दिये हैं जो पठनीय है यथा प्रच्छन्न कामाभिसारिका नायिका को देखा जा सकता है।[२] यहाँ नायिका के चरणो मे सर्प आ जाते हैं। वर्षा हो रही है, उसे गहनो के गिरने का ज्ञान नही है और वह अभिसार योग मग्न है। वास्तव मे प्रिय मिलन वेला का यह चित्रण मनोवैज्ञानिक ही है जिसमे अतिशयोक्ति की छटा भी देखने योग्य है।

केशव ने इसमे वृत्तियो को भी स्थान दिया है जो भरत के नाट्य शास्त्र का स्मरण दिलाती है।[३] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आरभटी के लक्षण तो भरत के अनुकूल है ही किन्तु इसके अतिरिक्त केशव ने भरत भिन्न मत प्रतिपादित किया है। यथा—केशकी मे भरत केवल शृंगार और हास्य का विधान ही मानते है, भरत ने उसमे करुण को स्थान नही दिया। परन्तु केशवदास ने करुण का भी समावेश कर दिया है। भारती मे केशव ने भरत के करुण के स्थान पर वीर और हास्य को स्थान दिया है। केशव ने सात्वती में रौद्र के स्थान पर शृंगार का विधान किया है।[४] इस प्रकार इन्होने परिवर्त्तन किये हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केशव के परिवर्तन कर देने पर भी टीकाकार सरदार कवि ने टीका मे भरत के मत को ग्रहण किया है।[५] इससे ज्ञात होता है कि यदा कदा कतिपय आचार्य जब सस्कृत काव्य शास्त्रकारो से दूर हट जाते तो अन्य कवि या टीकाकार पुनः सस्कृत के आचार्यों की ओर आकृष्ट हो जाते।

कविप्रिया—

केशव को कविप्रिया नाम की प्रेरणा सभवत: आचार्य वामन के निम्नाकित कथन से मिली हो—

१—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—केशव—ग्रथावली (खण्ड १) पृष्ठ ३९

२—वही – पृष्ठ ४४

३—वही—पृष्ठ ८९

४—डॉ० नगेन्द्र—हिन्दी काव्यालंकार सूत्र भूमिका पृष्ठ १४६

५—वही—पृष्ठ १४६

प्रणम्य परम् ज्योति र्वामनेन कवि प्रिया ।[१]

उन्होने भामह [२] दण्डी[३] रुद्रट[४] और नमि साधु[५] आदि के अनुकूल कहा है—

विप्रन नैगी किजिये मूढ़ न कीजै मित्त ।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषण सहित कवित्त ।।[६]

ये सस्कृत के उपरिकथित पुराने आचार्यो के समान अलकार के समर्थक थे और कहते भी थे कि—

भूषण बिनु व विराजहीं, कविता बनिता मित्त ।

और इन्होने अलकारो के साधारण और विशिष्ट दो भेद किये । फिर भी ये कभी–कभी अनुभव करते थे कि—

तेरौ अंग बिनाही सिंगार के सिंगारे है ।[७]

(कहीं–कही) इन्होने अलकारो से तात्पर्य सामन्यतः अर्थालकारो से लिया अन्यथा अलकार तो नग्न वर्णन के दोष मे (अनुप्रास तो) प्राप्त होते हैं ।[८] अलकार विवेचन मे दण्डि से सहमत होते हुए भी उन्होने वहाँ अलंकार दोष चर्चा नही की है । अर्थात् भूषण हीन काव्य को वे नग्न मानते थे । इससे इन पर अग्नि पुराण का प्रभाव माना जा सकता है । इनकी कवि शिक्षा वाग भट्ट के अनुकूल है । नवम् प्रभाव मे स्वभावोक्त अलकार दण्डी के अनुकूल है, किन्तु केशव ने दण्डी के रूप मे गुण का भी समावेश कर दिया है । यथा—

१—वामन—काव्यालकार सूत्र—प्रयोजन स्थापना ।
२—१– ११ भामह काव्यालकार
३—काव्यादर्श १–१७
४—नमि साधु की टीका
५—डॉ० ओमप्रकाश–हिन्दी अलंकार साहित्य पृष्ठ ६३
६—कविप्रिया ३–६
७—कविप्रिया ९–१२
८—केशव ग्रन्थावली–पृष्ठ १०२ (सम्पादक विश्वनाथ प्रशाद मिश्र)

जाकौ जासौं रूप गुण, कहिये ताहि साज ।[१]

जैसा कि डॉ० ओमप्रकाश कहते हैं[२] यदि इसका पाठ तासो जाति स्वभाव है तो इस पर काव्यादर्श के "स्वभाव वौवि तश्च जातिश्च"[३] का प्रभाव भी स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार इनके विभावना के दो भेद—प्रसिद्ध कारण के बिना अन्य कारण से कार्य होना एवम् बिना कारण कार्य होना, इन पर दण्डी के प्रभाव को प्रदर्शित करते है। दण्डी कहता है:—प्रसिद्ध हेतु व्यक्त्या यत्किंचित कारणात्रम। (३–१९)

इस भाँति इनके हेतु के निम्नाकित उदाहरण—

पीछे आकाश प्रकाशै शशी, बढो प्रेम समुद्र रहे पहिले ही।[४] पर दण्डी की छाया है।[५] इनके ही प्रभाव से विरोध और बिरोधाभास एक कर दिये गये है और इसका उदाहरण[६] दण्डि के उदाहरण से प्रभावित है।[७] इनका विशेष अलकार नव्य आचार्यो की विभावना के अनुकूल है और मम्मट के विशेष के तीसरे भेद मे उसे खोजा जा सकता है।[८]

इसी भाँति ग्यारहवे प्रभाव मे केशव के उदाहरण मम्मट के एकावली से प्रभावित दिखाई देते है।[९] इस प्रभाव मे केशव ने प्राचीन आचार्यो के भेदो को कम कर दिया है।[१०] इनके अमित अलकार पर प्रारम्भिक कविता की छाप दिखाई देती है और वह हेमचन्द्र की कविता से तुलनीय है।[११] सामाहित के केशव और

१—कविप्रिया २–८

२—डॉ० ओमप्रकाश–हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ ६७

३—काव्यादर्श २–८

४—कविप्रिया ९–१८

५—काव्य प्रकाश २–२५७

६—कविप्रिया ९–२०

७—काव्यादर्श २–२३९

८—साहित्य दर्पण १०–१३६

९—डॉ० अ मप्रकाश–हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ ६९

१०—वही पृष्ठ ७०–७१

११—वही पृष्ठ ७२

दण्डी के उदाहरण एक ही है। यही व्यवस्था रूपक की है। चौदहवे प्रभाव मे उपमा के बाईस भेद है। जिनमे से पन्द्रह दण्डी से ज्यो के त्यो ले लिये गये है। केशव के हेतु अलंकार के भेद–सभाव और अभाव भी दण्डी पर आधारित दिखाई देते है। यही अवस्था इनके उपमा और के भेदो की है।

कविप्रिया मे केशव की अपनी प्रतिमा के भी दर्शन होते है, यथा—

सहज सिंगारत सुन्दरी, जदपि सिंगार अपार।
तदपि बखानत सकल कवि, सौरही सिंगार ॥[1]

इसी भाँति कवि नियम वर्णन मे इनके जीवन का अनुभव और शास्त्र ज्ञान प्रत्यक्षत प्रकट हो जाता है। यह कथन राजशेखर के कथन के अनुकूल है। इन्होने यह भी बता दिया है कि कौन–कौन सी वस्तुएँ कठोरता के वर्णन करते समय उपमा स्वरूप रखी जा सकती है और कौन–कौन सी निश्चल वर्णन मे उपयोगी सिद्ध होती है।[2] इसके बारहवे प्रभाव मे वक्रोक्ति को अर्थालकार माना है। उनके दिये गये भेदो को और उदाहरणो को डॉ० नगेन्द्र ने कुन्तुक के वक्रता के भेदो के अनुकूल माना है। कविप्रिया के कतिपय छन्द रामचन्द्रिका मे भी प्राप्त होते है।[3] इन्होने बारह मासें को भी स्थान दिया है और नखशिख चित्रण भी किया है। इन्होने चित्रालकारो को अन्त मे स्थान दिया है जिनके आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने चित्र भी दिये है।[4]

नायक नायिका और अलकारो के वर्णन के साथ केशव ने रस विवेचन को भी स्थान दिया है।

रस–विवेचन–

इन्होने 'नब रस' माने है और जैसा कि पहले कहा जा चुका है शृंगार को प्रमुखता प्रदान की है। साथ ही इसे सयोग और वियोग एवम् प्रच्छन्न और प्रकाश नामक भेदो मे विभजित किया है। इसका अनुसरण रीतिकाल मे कतिपय

१—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र–केशव ग्रन्थावली–पृष्ठ १०९

२—वही पृष्ठ १२१, १९७ से २१४

३—वही पृष्ठ १२८

४—केशव ग्रन्थावली के अन्तिम ६ पृष्ठ

कवियो द्वारा किया गया। केशव का नायिकाओ के मान का वर्णन शृ गार तिलक पर आधारित दृष्टिगोचर होता है। भावो और विभावो की परिभाषाएँ केशव की अपनी है।[1]

केशव का दोष वर्णन—

अधिकाशत. केशव का दोष वर्णन दण्डी के अनुकूल हैं। दण्डी ने लिखा है—

अपार्थं व्यर्थं मेकार्थं ससशयम् प्रक्रमम्।
शब्दहीनं मति भ्रष्ट मिन वृत्तं विसंधिकम्।
देशकाल कला लोक न्यायागम विरोधिच।
इति दोषा दशै वेते वर्ज्यां काव्येषुसूरिभि।[2]

केशव ने अधिकाशत: इनके ही आधार पर लिखा है—

अंध वधिर अरु पंगु तजि नग्न मृतक मति सुद्ध।
अंध विरोधी पंथ को, वधिरासु शब्द विरुद्ध।
छंद विरोधी पंगु गनि, नग्न जु भूषण हीन।
मृतक कहावे अर्थ बिनु, केशव सुनहुँ प्रवीन॥
अगनन की जौ हीन रस, अरु केशव यति भंग।
व्यर्थ अपारथ हीन क्रम, कवि कुल तजौ प्रसग॥
देश विरोध न बरनिये, काल विरोध निहारि।
लोक न्याय आगमन कै, तजौ विरोध विचारि॥[3]

इसी भाँति व्यर्थ दोष का उदाहरण दण्डी के आधार पर देखिये—

दण्डी—

एके वाक्ये प्रबन्धेवा पूर्वा पर पराहृतम्।
विरुद्धार्थतया व्यर्थं मिति दोषेसु पठ्यते॥[4]

१—रसिक प्रिया ६–१,२
२—काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद १२५,२६
३—कविप्रिया तीसरा प्रभाव।
४—काव्यादर्श–तृतीय परिच्छेद

केशव—

एक कवित्त प्रबन्ध में अर्थ विरोध जु होय।
परब पर अनमिल सदा व्यर्थ कहें सब कोय॥

रसिक प्रिया मे प्रत्यनीक नीरस, वीरस, दुःसधान और पात्रदुष्ट नामक दोषो का उल्लेख किया गया है।[1] यह रस दोष शृ गार तिलक पर आधारित प्रतीत होता है।[2] केशव ने औचित्य की अवहेलना को ही दोषो का मूल माना है जो सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है।[3] जहाँ अग्रेज कवि कह सकता है—हूम सोरो हैड मेड मोर व्युटिफुल।[4] वही केशवदास औचित्य रक्षा करते हुए कहते हैं—

जहीं सोक महिं भोग को बरनतु है कवि कोइ।
केशवदास हुलास सौं, तहीं बिरस रस होय॥[5]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इनके अलकारों पर सस्कृत के काव्य ग्रन्थो का प्रभाव है। इनके सामान्य अलकार काव्य कल्पलता वृत्ति और अलकार शेखर के १६ और १७ वें प्रभाव पर आधारित है। इनका "यद्यपि सुजाति" वाला दोहा इन पर आनन्द वर्धन और मम्मट की छाया प्रतिपादित करता है। साधारणतया काव्य कल्पलतावृत्ति अलकार शेखर का भी आधार है। इस प्रकार हम कह सकते है कि केशव मुख्यतया अलकारशेखर के साथ काव्य कल्पलता वृत्ति पर आधारित है। निम्नाकित उदाहरण इसे स्पष्ट कर देते हैं।

अलंकार शेखर—

शैले महौषधी धातु वश किन्नर निर्झराः।
शृ गपादक्षुहारत्न वनजी वाद्यु पत्यांका॥[6] [2]

१—रसिक प्रिया प्रकाश—१६।१ पृष्ठ ६१
२—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्शास्त्र का इतिहास पृष्ठ ५७
३—लाला भगवानदीन—प्रिया प्रकाश पृष्ठ ४१,३६
४—कीट्स—हाईपेरियन
५—केशव ग्रन्थावली—पृष्ठ ६२
६—डॉ० भगवत स्वरूप—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—पृष्ठ १७२

कविप्रिया—

तुग श्रग वीरघदरी सिद्ध सुन्दरी धातु।
सुर नरयुत गिरि दरनिये औषध निर्झर पातु॥

निष्कर्ष—

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि केशवदास ने सस्कृतशास्त्र को भाषा मे सुलभ बनाने का सराहनीय प्रयाश किया है। उसमे उन्होने आश्रय दाता की प्रशसा करते हुए नायक नायिका और श्रृगारिक चित्रो को प्रस्तुत किया है। हम यह कह सकते है कि उनके लक्षरण ग्रन्थो द्वारा वे कई ग्रन्थो मे आश्रय दाता की अतियुक्ति पूर्ण प्रशसा से बच गये है। वे अधिकाशत: पूर्व ध्वनि काल के आचार्यों के अनुकूल रहे है फिर भी यत्र–तत्र उन्होने उत्तर ध्वनि कालीन आचार्यों के ज्ञान का परिचय भी दिया है। ऐसा करने से सम्भवतः उनके अह को तुष्टि मिली है। इनके ग्रन्थ इनके पाण्डित्य को प्रदर्शित करते हैं और बहुधा इनकी श्रृगार प्रियता ओर रसिकता को भी प्रकट करते हैं। निम्नाकित उदाहरण इसे स्पष्ट कर देता है :—

आलिगन अग अग पीड़ियत पद्मिनी के
सौतिन के अग अग पीड़नीं पिराती है।[1]

भाव-विभाव आदि की परिभाषा देते समय इन्होने यत्र–तत्र मौलिकता का भी परिचय दिया है। इनके द्वारा हिन्दी को संस्कृत के ग्रन्थो से सस्कृत के ज्ञान प्राप्त करने की दिशा मिली। इन्होंने यह बतला दिया कि लक्षरण ग्रन्थो के आधार पर राज्याश्रय भी प्राप्त किया जा सकता है और अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशसा से भी बचा जा सकता है।

सुन्दर कवि—

इसी काल के अन्य कवि हैं। इन्होने श्रृंगार रस का विवेचन और नायिका भेद का चित्रण सुन्दर श्रृंगार मे किया है। इसमे अनुराग को दृष्टानुराग और श्रुतानुराग नामक भेदो मे बाँट गया है। भावो की परिभाषा देते हुए कहा गया है :—

१—कवि प्रिया–१२।६

सुन्दर मूरति देख, सुन चित में उपजावै चाव।
प्रगट होय द्रग भौंव ते, ते कहियत हैं भाव ॥[1]

दशाओ के वर्णन मे मरण को छोड कर अन्य ६ दशाओ का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इनकी रचना भी संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है।

इसी प्रकार सेनापति बिहारी, मतिराम, भूषण और देव आदि ने हिन्दी साहित्य के शृ गार मे अभिवृद्धि करने का प्रयत्न किया।

१—सुन्दर शृ गार–छन्द ६३४

'ग' भाग—रीतिकाल

सम्वत् १७०० से १६०० तक

रीतिकाल मे साहित्यकार सस्कृत के ग्रन्थो की छाया लेकर हिन्दी मे रोति ग्रन्थ प्रणयन का प्रयास करते थे। वे स्थान-स्थान पर इस ओर सकेत भी कर देते थे।[1] साथ ही उनमे से कई एक किसी एक ही ग्रन्थ पर आधारित न होकर विभिन्न ग्रन्थो और लक्षण ग्रन्थकारो का सहारा लेते थे।[2] यद्यपि सकेत किसी एक ही साहित्यकार की ओर कर दिया जाता था।[3] इससे ज्ञात यह होता है कि जैसे आज का साहित्यकार किसी एक अग्रेज लेखक का नाम लेता है किन्तु युग प्रभाव स्वरूप उस पर अन्य पाश्चात्य लेखको का भी प्रभाव होता है और उसे यह ज्ञात भी नही हो ऐसा भी हो सकता है।[4] इसी प्रकार उस युग मे साहित्यकारो के सामने सस्कृत से लक्षण लेने का द्वारा उन्मुक्त था और परवर्ती रीति ग्रन्थकारो के सामने कई सस्कृत शास्त्रो की छाया से प्रणीत हिन्दी के ग्रन्थ भी थे। अत. रचयिता उनकी भी छाया ले लेते थे, जिनका नाम नही देते थे और अपने प्रिय सस्कृत साहित्यकार के प्रति ही श्रद्धाञ्जली समर्पित कर कृत कृत्य हो जाते थे—अथवा बहुत सौ ने काव्य प्रकाश और साहित्य दर्पण का अनुसरण किया।[5] तो दूसरों ने अन्य साहित्यकारो का। कतिपय ग्रन्थकार "शकल प्रबीण ग्रन्थ विचारि" कह देते थे।[6] अतएव यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस युग के शास्त्राकारो के सामने सस्कृत लक्ष्य ग्रन्थ थे और उनका अनुकरण वे मूल से अथवा कभी-कभी हिन्दी ग्रन्थकारो से कर लिया कर लेते थे। इस प्रकार हिन्दी के

१—आचार्य कुलपति मिश्र, चिन्तामणि त्रिपाठी

२—चिन्तामणि त्रिपाठी

३—वही

४—इन पंक्तियों के लेखक का पी-एच० डी० का शोध्र प्रबन्ध-हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन-एकांकी का विवेचन।

५—डॉ० भागीरथ मिश्र-हिन्दी रीति साहित्य पृष्ठ ३५

६—चिन्तामणि के शृंगार मञ्जरी का प्रारम्भ एवम् डॉ० भागीरथ मिश्र—रीति साहित्य पृष्ठ ८१

साहित्यकार सस्कृत काव्यशास्त्रकारो के सहारे आगे बढ रहे थे। कभी–कभी वे मौलिकता प्रतिपादन का भी प्रयास करते थे जिनमे अधिकाशत वे मौलिकता प्रतिपादन का प्रयत्न सस्कृत काव्य–ग्रन्थो के लक्षणो को मिला जुला कर या भुला कर एक कर देते थे।

आगे चलकर रीतिकाल मे सस्कृत ग्रन्थो का सहारा इतना नही लिया गया जितना कि भाषा कवियो का, किन्तु भाषा कवि स्वयम् सस्कृत से प्रभावित थे। अतएव इन पर प्रकारान्तर से सस्कृत का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इस युग मे सामन्ती जीवन अत्यन्त वैभव सम्पन्न था और साधारण जीवन था दरिद्रता ग्रस्त।[1] इस हेतु राजाओ को प्रसन्न कर उनसे प्रशसा व धन प्राप्त कर जीवन यापन करना कवियों का ध्येय था क्योकि अब तक राज्याश्रय की परम्परा दृढ हो चुकी थी। इस कार्य मे वे जहाँ सस्कृत लक्षणो ग्रन्थो से सहारा लेकर शास्त्रोक्त ग्रन्थ निर्माण करते थे वही उन्होने शृ गारिक चित्रण, अष्टयाम, नायिकाओ के वर्णन और अन्य विलासिता पूर्ण वस्तुओ के दिग्दर्शन मे सामयिक जीवन ने प्रेरणा दी। इसलिये कभी–कभी तत्कालीन काव्य मे दरिद्रता, नीति और अन्य विषयो के चित्रण भी प्राप्त होते है। इसलिये उन्होने यथार्थवादी चित्रण भी उपर्युक्त ढग से प्रस्तुत किया गया। अतएव यह कहा जा सकता है कि हमारे रीति साहित्य मे जीवन के यथार्थ चित्रण विद्यमान है और अग्रेजी साहित्य से सम्पर्क न भी होता तो भी ये विकसित होते। हाँ यह तथ्य अवश्य ही उल्लेखनीय है कि अग्रेजो के आगमन से आलोचना मे यथार्थ चित्रण–अधिकाशत· जीवन के निम्नस्तर के चित्रण का प्रयास बन गया है जो उस समय तक नही था। देव ने व्यभिचारी को शारीर और आन्तर भागो मे विभाजित किया है। यह विभाजन भोज के अनुकूल है। वितर्क के भेद करने मे उन्होने सस्कृत का अनुसरण किया है। इसी भाँति सस्कृत की टीका पद्धति का इस युग मे प्रयोग किया गया। बिहारी पर सरदार कवि की टीका और रसिक प्रिया पर सूरति मिश्र की जोरावर प्रकाश, टीका, इसके उदाहरण है। इस काल की भक्तमाल की टीका प्रियादास विरचित टीका

१—डॉ० भागीरथ मिश्र एवम् राम बहोरी शुक्ल—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृष्ठ ४,५

२—वही– पृष्ठ ८४

पद्धति पर लिखी गई है। इसी युग मे मल्लीनाथ की प्रणाली पर तुलसी के ग्रन्थो की टीकाओ का प्रणयन किया गया।

इस प्रकार हम कह सकते है कि रीतिकाल मे हिन्दी साहित्य के लक्ष्य–लक्षण ग्रन्थो के रूप मे सस्कृत के काव्यशास्त्र की पुनरुद्धारणी प्रस्तुत की गई।[१] इस युग मे काव्यप्रकाश की निरूपणशैली शृ गारतिलक और रसमञ्जरी की शृ गार रसमयी नायिकाभेद वाली शैली तथा चन्द्रालोक की सक्षिप्त अलकार निरूपण शैली प्राप्त होती है।[२] इस युग मे सस्कृत के आचार्यों के अनुकूल केशव द्वारा अपनाई गई चित्रकाव्य शैली को भी स्थान दिया गया। सेनापति के चित्र काव्य इसके उदाहरण है।

आलोच्य काल मे अलकारग्रन्थ, रसग्रन्थ नायिका भेद आदि ग्रन्थ और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जिन पर सस्कृत काव्यशास्त्र का प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है। इनमे इन आचार्यो से सस्कृत काव्यशैली और उनके तत्त्वो को ग्रहण किया गया। इस काल के आचार्यो का आगामी विवेचन इस कथन की पुष्टि करता है।

चिन्तामणि त्रिपाठी :—

चिन्तामणि त्रिपाठी के कविकुल कल्पतरु का आधार काव्य प्रकाश (मम्मट विरचित) और विश्वनाथ विरचित साहित्य दर्पण है। इन्होने काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है—

"बात कहाऊ रस मै जु है कवित कहा वै सोय"

यह साहित्य दर्पण के वाक्य रसात्मक काव्य से स्पष्ट रूप से प्रभावित प्रतीत होती है। उनका निम्नाकित कथन—

सगुण अलंकारण सहित, दोष रहित जो होय,
शब्द अर्थ वारौ कवित विबुध कहत सब कोइ।

१—देखिये डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पहला भाग, प्राक्कथन।

२—डॉ० नगेन्द्र–रीति काव्य की भूमिका।

मम्मट की उक्ति "तद् दोषौ शब्दार्थौ सगुणाकलंकृति पुन· क्वापि"[1] का स्मरण दिलाता है। यहाँ यह कथनीय है कि चिन्तामणि ने युग के अनुकूल अलंकार सहित रचना को काव्य कहा है। उन्होने कवित पुरुष की कल्पना की है। ये कहते हैं—

जे रस आगे के धरम ते गुन बरने जात,
आतप के ज्यों सूरतादिक निहचल अवदात।
सबै अर्थ लघु बरणीय जीवन रस जिव जानी,
अलकाराहारादि ते उपमाधिक गन आनि॥
श्लेषादिक गन सूरतादिक से माने चित।
बरणौ रीति सुभाव जो वृत्ति—वृत्ति सी मित॥

यहाँ इन्होने रीति को स्वभाव कहा है जो सस्कृत के आचार्यों के अनुकूल है यथा—विश्वनाथ और अर्कसूरी ने रीति को काव्य स्वभाव कहा है। इन्होने रुद्रट के आधार पर वक्रोक्ति को काकु और श्लेष भेदो मे बाँटा है—

और भाँति को वचन जो और लगावें कोई,
कै श्लेष के काकु सो वक्रोक्ति है सोय।[2]

इन्होने सस्कृत के आचार्यो की छाया लेते समय उनकी ओर संकेत भी किया है—

पद आरोहारोह सो, जोग समाधि प्रकार।
ऐसे ओजहि बनत है मम्मट बुद्धि विचार॥

मम्मट के समान इन्होने वृत्तियो का विवेचन वृत्यानुप्रास के भेदो के रूप मे ही किया है। इसी भाँति इन्होने मम्मट के समान तीन गुणो की ही सत्ता मानी है।

प्रथम कहत माधुर्य, पुनि ओज प्रसाद बखानि,
त्रिविधै गुण तिन में सबै सुकवि लेत मन मानि।

१—काव्य प्रकाश प्रथम उल्लास सूत्र २
२—कविकुल कल्पतरु २–५
३—डॉ० नगेन्द्र–हिन्दी काव्यालंकार सूत्र पृष्ठ १४६

इन्होने वामन और मम्मट दोनो के अनुकूल विवेचन किया है। शृंगार मजरी इसका उदाहरण है। यह नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसके बारे मे लिखा है—रसमजरी आमोद परिमल, शृ गारतिलक रसिक प्रिया रसारणौ प्रताप रुद्री व सुन्दर सरस काव्य दशरूपक विलास रत्नाकर काव्य परीक्षा, काव्यप्रकाश, प्रमुख ग्रथ विचारि प्राचीन ग्रन्थ मे जो विचार लक्षण जुवत जुक्ति तिन को सग्रहकारी और छोडि प्राचीनोदाहारणानुसार नायक भेद कल्पित करी—[1]

इससे प्रतीत होता है कि लेखक ने सस्कृत काव्यशास्त्र का समुचित सहारा लिया है। इस ग्रन्थ मे गद्यात्मक चर्चा भी हैं जो कवि की अपनी मौलिकता है। इन्होने ग्रन्थ मे रस नायिका भेद आदि के सम्पूर्ण अंगो को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। यह काव्यप्रकाश के अनुकूल है। इस प्रकार ये शैली और भाव की दृष्टि से सस्कृत काव्यशास्त्रो पर अवलम्बित है।

तोष कृत सुधानिधि—

सुधानिधि मे कवि तोष ने रस, रसाभास, हाव–भाव, दोष, वृत्ति और नायिका भेद का वर्णन किया है। अतएव यह सस्कृत काव्यशास्त्र पर आधारित प्रतीत होता है। इसी भाँति कवि बेनी ने भी नखशिख, षट् ऋतु वर्णन और तत् सम्बन्धित विषयो पर पुस्तके लिखी होगी। ऐसे प्रमाण प्राप्त होते है।[2] नवतरग मे अज्ञात यौवना का चित्र सुन्दर बन पडा है। वहाँ उसकी चेष्टाओ का वर्णन किया गया है। यथा-कालि ही गूथि बबा किसौ मै गजमोतिन की पहिरी अति माला।

आयी कहाँ ते इहाँ पुखराज की संग गई जमुना तट बाला।
न्हात उतारी हो न बैनी प्रवीण हसे सुनी बैनन नैन रसाला।
जानति ना अग की बदली सबसों बदली–बदली कहे माला।

इनसे प्रौढ लेखक है जोधपुर नरेश जसवतसिह जी।

जसवन्तसिंहजी. भाषाभूषण—

हिन्दी साहित्य के प्रमुख आचार्यो मे जसवतसिहजी का नाम उल्लेखनीय है।[3] एक ही दोहे मे लक्षण और उदाहरण देकर जसवन्तसिहजी ने जयदेव के चन्द्रलोक

१—देखिये चिन्तामणि त्रिपाठी कृत शृ गार मजरी।

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २२५।

३—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २२६।

की शैली का अनुसरण किया है। इन्होने इस अलकार ग्रंथ का प्रणयन विषय की दृष्टि से कुवलिया नन्द को आधार बना कर किया है। परन्तु कई स्थानो पर चन्द्रलोक की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। उदाहरणार्थ इनके अत्युक्ति और पर्यस्तापनहुति के उदाहरणो पर चन्द्रलोक की स्पष्ट छाया है।[१] ये साहित्य जगत के सजग पुजारी थे और इनमे प्रतिभा भी थी। साहित्य मे इनकी प्रगाढ रुचि दिखाई देती है। वह व्यक्ति जिनके बारे में इतिहास कार कहते है कि—

महाराजा लक्षमणसिह ने अपने आप को इतना शक्तिशाली बना लिया था कि औरगजेब उनसे बराबर डरता रहता था और उन्हे हिन्दू धर्म का शक्तिशाली समर्थक मानता था। इनकी मृत्यु पर उसने बहुत प्रसन्नता प्रकट की।[२] उनका हिन्दी साहित्य को कविता नाटक और शास्त्रीय ग्रन्थ प्रदान करना निश्चित रूपेण उनकी महान् प्रतिभा का परिचायक है। इनके भाषाभूषण मे सस्कृत की सूत्रात्मक पद्धति का अनुकरण किया गया है और प्रतीत होता है कि यह एक प्राढ ग्रन्थ है। इसमे भाषा और भूषण का सयोग है और सस्कृत के विभिन्न शास्त्र इसके आधार है।[3] इन्होने रुद्रक के समान वक्रोक्ति के लिये कहा है —

वक्रोक्ति स्वर श्लेषसो अर्थ फेर जो होय।
रसिक अपूरब हौ पिया बुरौ कहत नही कोई।[४]

आपने चन्द्रलोक और कुवलियानन्द की शैली को लोकप्रिय बना दिया। इसका प्रारम्भ तो करणेश के सुलती भूषण से हो चुका था पर इसे प्रतिष्ठा जमवन्तसिंहजी ने प्रदान की।[५] इन्होने चन्द्रालोक की शैली तो ग्रहण की किन्तु विष

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २२७

२—डॉ० एम० एल० शर्मा–जर्नल आफ दी राजस्थान इंस्टिट्यूट आफ हिस्टोरिकल रिसर्च, दिसम्बर ६३ पेज २,३।

३—रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २२६ एव
भाषा भूषण २१०, २११ और,
अलकार शब्दार्थ के कहे एक से आठ
किये प्रकट भाषा विषय देखि सस्कृत पाठ (२०८)

४—भाषा भूषण, अलंकार संख्या १८९

५—डॉ० नगेन्द्र–हिन्दी रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ १४०।

विवेचन मे कुवलियाननद के समान शब्दालकारो को महत्व नही दिया । अन्त मे केवल समान्य रूप से उन्हे स्थान दे दिया है । इनके यमक के लक्षण—

जमक शब्द के फेरी श्रवण, अर्थ जुदा सो जानि ।[१]

पर काव्य प्रकाश के वर्णनाग सा पुन श्रुति की छाया दिखाई देती है ।

इन्होने कुवलियानन्द और चन्द्रालोक के समान अलकार लक्षणो, अर्थालकारो और शब्दालकारो के सम्बन्ध अथवा दोषो आदि के विवेचन की अवहेलना की है । इन्होने प्रथम सौ अलकार कुवलियानन्द के ही समान रखे है ।—नाम भी वही है । इसके कथन के निम्नाकित अपवाद है ।—कारणमाला को इन्होने गुम्फ और उत्तर को गुणोत्तर कहा है । गुम्फ नाम चन्द्रोलोक से लिया गया है ।[२] इनके उपमा के उदाहरण—ससी सो उज्वल तिय बदन, पल्लव से मृदु पान ।[3] पर मधुर सुधावदधर पल्लव तुल्योक्ति पलेव पाणि का प्रभाव है ।[४] इसी भाँति प्रतीप के उदाहरणो और लक्षणो पर कुवलियानन्द का स्पष्ट प्रभाव है ।

जयदेव ने स्मृति भ्राति और सदेश के लक्षण नामो से ही मान लिये है । महाराजा जसवन्तसिहजी ने भी लक्षण नाम प्रकाश कहा है । इनके दीपक तथा अवृति दीपक पर भी कुवलियानन्द की छाप है । शब्दालकारो पर मम्मट और विश्वनाथ का प्रभाव है । अनुप्रास पर दण्डी का । अलकारो के उदाहरण कही-कही अनुवाद है और कही छायानुवाद ।

निष्कर्ष—

इस प्रकार हम देखते है कि जसवन्तसिहजी ने चन्द्रालोक की शैली का अनुसरण किया हे । विषय को कुवलियानन्द, चन्द्रालोक और साहित्य दर्पण एव काव्य प्रकाश प्रवृति ग्रथो से ग्रहण किया है । कही–कही इन्होने नामो में परिवर्तन भी कर दिया है । कही एक अलकार के कुछ भेद कम कर दिये है तो कही कुछ

१—डॉ० नगेन्द्र–हिन्दी रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ २०२

२—गुंफ कारण माला स्याद यथा प्राक् प्राप्त कारणै ५।८७

३—भाषा भूषण ४३

४—साहित्य दर्पण ४३

बढा दिया है इनके उदाहरण बहुधा बडे सुन्दर बन पडे है जो इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि के कारण है और लेखक की मौलिक कवित्व शक्ति के परिचायक भी। युद्ध भूमि मे शत्रु को कपा देने वाले व्यक्ति का ऐसे ग्रथ प्रदान करना वास्तव मे सराहनीय है।

इनके ग्रन्थो की टीकाएँ और तिलक भी लिखे गये यथा वन्शीधर, प्रतापसिंह और श्री गुलाबराय ने टीकाये लिखी। यह टीका लिखने की शैली सस्कृत काव्य-शास्त्र के अनुकूल है। इनके साथ ही नायिका भेद सम्बन्धी फतेप्रकाश (छेमाराम विरचित), शभूनाथ का नायिका भेद और मडन का रस रत्नावली तथा रस विलास इत्यादि सस्कृत काव्य शास्त्र का अनुकरण करते है। इनमे मतिराम विशेष उल्लेखनीय है।

मतिराम—

मतिराम ने अलकार पचाशिखा मे सस्कृत के चन्द्रालोक के आधार पर लक्षण दोहो मे और उदाहरण कवित्तो मे दिये हैं। इसके नाम पर ही सस्कृत के चोर पचाशिखा का प्रभाव दिखाई देता है। इसके उदाहरण मौलिक प्रतीत होते है। कवि का अपना मत है—

सस्कृत कौ अर्थ ले, भाषा शुद्ध विचारि,

उदाहरण क्रम से किये लीजै कवि सुधारी मतिराम के ग्रंथ इतने प्रसिद्ध हुए कि इन पर टीकाये लिखी गई—प्रतापसिह ने सभवत इस पर तिलक लिखा।[1] हरिदानजी सिडायच ने भी मनोहर प्रकाश नाम से टीका बनाई। ललित ललाम पर गुलाबराज ने ललितकौमुदी नाम की टीका का प्रणयन किया। इनके निम्नाकित काव्यशास्त्र और नायिका भेद सम्बन्धी ग्रथ उल्लेखनीय है। रसराज मे इन्होने सन्देशरासक और रामचरित मानस आदि के समान अपने को अज्ञय कहा है और कहा है—

बरनि नायक नायकनि रचियौ ग्रन्थ मतिराम।[2]

अतएव इसमे नायक नायिका का वर्णन प्राप्त होता है यथा कही नायिका तीन विधि प्रथम स्वकीयामान, परकिया पुनीः दूसरा गणिका तीजी जान।[3]

१—मतिराम ग्रंथावली पृष्ठ २२६
२—वही पृष्ठ २५४
३—वही पृष्ठ २५४

तदनन्तर इनके भेद प्रभेद किये गये है। यहा यह कहना ही होगा कि ये भेद केशव और काम शास्त्रो के अनुकूल न होकर काव्यशास्त्रो के समान है। नायिका वर्णन के पश्चात् नायक वर्णन ने भी स्थान प्राप्त किया है। इसमे उपपति का वर्णन भी है। सखी के काम निम्नलिखित बताये गये हैं—

मंडल अरु सिच्छाकरण, उपालंप परिहास।
काज सखी के जानिये, औरो बुद्धि विलास।[1]

मतिराम सतसै मे दोहो मे सरस वर्णन प्राप्त होता है यथा—

वरष रितु बीतन लगी, प्रतिदिन सार उदौति।
लहलह ज्योति ज्वार की अरु गवाँरी की होती।(११)

× × × ×

पगी प्रेम नन्दलाल के अरुण आप जल जाय।
घरी घरी धरके तरें धरणी देत ढरकाय।(२०)

× × × ×

उजियारि मुख हनु की परि कुचनि उर आनि।
कहा निहारती मुगध तिय पुनि पुनि छन्द न जानी।(१०७)

रसराज मे श्रृंगार और नायिका भेद का सफल चित्रण हुआ है। इन्होने भी आधार सस्कृत ग्रन्थो को ही रखा है।[2] इनके ललित ललाम की निम्नांकित उक्ति—

कवितार्थ जाने नही, कछुक भयौ सभोग।

मैं भाषा कवियो का दैन्य है सस्कृत पण्डितो की गरवोक्ति नहीं। ललित ललाम मे इन्होने रस और अलकारो पर दृष्टिवाद किया है।

ललितललाम मे ४०१ छन्द है जिनमे तीनसौ साठ छन्दो मे अलकारो का वर्णन है। इन अलकारो की सख्या तथा इनका क्रम कुवलिया नन्द के अनुकूल है।

१—मतिराम ग्रंथावली पृष्ठ २५४

२—मतिराम ग्रन्थावली, कृष्ण बिहारी मिश्र द्वारा भूमिका एवं नायिका वर्णन।

किन्तु भेदो मे अन्य पुस्तको का सहारा लिया गया है। अलकारो के लक्षणो पर चन्द्रालोक, कुवलियानन्द काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण के प्रभाव परिलक्षित होते है। निम्नाकित उद्धरण इसे स्पष्ट कर देगे—

पूरब-पूरब हेतु जहां उत्तर-उत्तर काज।[1]

यह साहित्य दर्पण और काव्य प्रकाश से तुलनीय है। इसी भाँति समासोक्ति के लक्षण—जहाँ प्रस्तुत मे हौत है अप्रस्तुत का ज्ञान" पर समासोक्ति परिस्पूर्ती—चन्द्रालोक की स्पष्ट छाया है। इनके उपमालकार पर भी सस्कृत का प्रभाव है। यथा —

क-यथोतरं चेत्वापूर्वश्य पूर्वश्यार्थं श्य हेतुत। (काव्यप्रकाश)
ख-परं परं प्रति यदा पूर्व पूर्वश्या हेतुत। (साहित्यदर्पण)
ग-पूरब पूरब हेतुत. जह उत्तर-उत्तर काज। (ललित ललाम)

यही अवस्था उत्प्रेक्षा तथा अतिश्योक्ति की है।

क-जहाँ बरनिय दोहिनि की छबी को उल्लास। (ललितललाम)
ख-उपमा यत्र साद्रश्य लक्ष्मीरुल्ल सति वयोद्ध। (जयदेव)

और

परिवृति विनिर्मयौ योर्थाना श्यात समासमय (काव्यप्रकाश)
घाटि बाढ़ि द्वै वात को, जहाँ पलटिबो होय। (ललितललाम)

मतिराम ने सस्कृत ग्र थो का सहारा लिया है और उन पर सस्कृत सिद्धातो की छाया युग प्रभाव और अन्य कवियो के माध्यम से भी गिरी है। इनके उदाहरण कही-कही बडे ही ललाम है, यथा—

तेरे अग-अंग में मिठाई और लुभाई भरी।
मतिराम कहत प्रकट यह पायिये।
नायक के नैननि में नैन सदासौ सब-
सौतनि के लोचननी लोन सो लगाईउ।[2]

१—यह ललितललाम में कारणमाला का उदाहरण है। ऐसा ही साहित्य दर्पण में ही है। और काव्यप्रकाश में भी यही प्राप्त होता है।
२—मतिराम ग्रथावली में नायिका वर्णन

इनके विवेचन के निष्कर्ष मे हम डॉ० ओमप्रकाश के साथ कह सकते हैं कि कवि का उद्देश्य अपने आश्रयदाता को रिझाना प्रतीत होता है।

भूषण—

वीर काव्य के लिये प्रख्यात कवि भूषण भी युग प्रभाव से नही बच सके हैं। इन्होने ३८२ छन्दो में शिवराज भूषण की रचना की, जिसमे ३५२ छन्दो मे अलकारो के लक्षण देकर उदाहरण शिवाजी से सम्बन्धित लिख दिये है। इस पर भट्टी काव्य की छाया का अनुमान लगाया जा सकता है। इनके अन्य ग्रन्थ भूषण उल्लास और दूषण उल्लास अप्राप्य ही है। इन्होने नवीन—सामान्य विशेष और भाविक छवि अलकारो की उद्भावना का प्रयन्त किया। किन्तु ये प्राचीन के नवीन नाम मात्र ही है।[1]

जयदेव कृत चन्द्रालोक मे भाविक छबी प्राप्त हो जाती है।[2] भूषण ने शिवराज भूषण की रचना का उद्देश्य यह बताया है कि—

शिव चरित्र लिखियो भयो कवि भूषण के चित।
भांति-भांति भूषणनिसौ भूषितकरो कवित।[3]

इसमे अर्थालकारो के अन्दर श्रृद्धालकार जिसमे, चित्रालकार भी हैं और सब सगर का विवेचन किया है। रुद्रट के समान वक्रोक्ति को काकू व श्लेष दो भेदो मे बाटा है—

जहाँ श्लेषसो काकूसो अर्थ लगावें और।
वक्र उक्ति वाको कहत, भूषण कवि सिर मौर।[4]

यहाँ यह ध्यान योग्य है कि काकू और श्लेष दोष भेद तो रुद्रट के समान है। किन्तु इसे अर्थालकार मानना रुयैक और अपय दीक्षित का प्रभाव है। इन्होने उत्तम ग्र थो का अध्ययन किया और अपना मत भी प्रतिपादित करने की अकाक्षा प्रकट की।

१—डॉ० भागीरथ मिश्र हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ८६

२—चन्द्रालोक ५वां मयूख

३—भाषाभूषण २६

४—शिवराज भूषण-पृष्ठ १२७

युत चित्र सगर एक सत, भूषण कहे अरु पाच ।
लखी चारु ग्रंथनि निजि मतौ युत सुकवि मानव सांच ।[1]

इनके ग्र थो पर चन्द्रालोक का प्रभाव परिलक्षित होता है ओर प्रतिपोपमा, ललितापमा और भावक छबी का उल्लेख इसका साक्षी है। भाविक छबी का लक्षण जयदेव के अनुकूल है पर उदाहरण मे मौलिकता है। जहा जयदेव शृ गारिकता के पुजारी है वही भूषण वीरता के समर्थक है—

जहाँ दूरस्थित्त वस्तु को देखत बरनत कोय।

× × × ×

रातहु द्यास दिलीस तकै तुव सैनिक सूरती सूरती घेरी।

जयदेव के ही अनुसार कारणमाला को गुम्फ कहा गया है। जयदेव के कई अन्य लक्षण भी भूषण द्वारा अनूदित किये गये है।[2] साथ ही इनके निम्नाकित कथन मनसलि है पुनरुक्तिसी पर पौनरू वत्यात्र भाषण—साहित्य दर्पण के पुनरुक्त वदाभास की छाया है। प्रतिपोपमा का उदाहरण जयदेव पर आश्रित है।[3] इन्होने हिन्दी कविता से भी सस्कृत के ज्ञान को प्राप्त किया था।[4] चाहे जो कुछ हो इनके वर्णन सस्कृत काव्यशास्त्रकारो मे प्रभावित है और वीरता के उदाहरण इनके अपने है। वीर रस पर इनका अपना अधिकार है।

आचार्य कुलपति मिश्र इनके समान सस्कृत ग्रन्थो से तो प्रभावित है परन्तु वे वीर रस के कवि नहीं है।

कुलपति मिश्र—

कुलपति मिश्र ने काव्यप्रकाश के आधार पर २० गुणो मे से ३ की ही सत्ता मानी है।

१—भाषाभूषण ३७९
२—विरोध और विरोधाभास
३—जहां प्रसिद्ध उपमान को करी बरनित उपमेय। विख्यातश्यों प मानश्य यत्र श्बाप मेयता।
४—डॉ० ओमप्रकाश—हिन्दी अलंकार साहित्य पृष्ठ १७६

जस सम्पति आनन्द अति, दुरितन डारे खोय ।
होत कवित ते चातुरी, जगत राग बस होय ।[1]

इस पर काव्य यशसेर्थ कृते, व्यवहार विदे की शैली का प्रभाव है। यह रस ध्वनि को प्रधान मानते है और साथ ही काव्यप्रकाश के अनुदित अंगो से रम विभावादि के उदाहरण भी देते है।

इससे इनके ग्रन्थ पर काव्यप्रकाश का प्रभाव परिलक्षित होता है। दोषो के वर्णन और परिहार मे भी काव्यप्रकाश का सहारा लिया गया है। इन्होने दोषो की परिभाषा निम्नाकित ढग से दी है—

शब्द अर्थ में प्रकट है, रस समुझन नहिं देय ।
सो दूषण तन मन बिथा, ज्यौ जिय की हरि लेय ।
जाहि रहित ही जो रहे, जिहि केरे फिरि जाय ।
शब्द अर्थ रस छन्द कौ सोई दोष कहाय ।

इन्होने काव्यप्रकाश का सहारा लेते हुए भी सुन्दर रूप से व्यक्त किया है कि काव्य मे रम और ध्वनि महत्वपूर्ण है। ये रस ध्वनि वाद की प्रधानता मानते है और काव्य लक्षण के बहुत से लक्षणो के इन्होने अनुवाद कर दिये है।[2]

सुखदेव मिश्र—

कुलपति मिश्र के समान इनका रसारणॉ, भी रस से सम्बन्धित पुस्तक है। यह मतिराम के समान रसो का उल्लेख करते है। यह रसमजरी की सी पुस्तक है। इन्होने नायक नायिका श्रृगार रस और विभावादी पर यथेष्ठ प्रकाश डाला है। इनके उद्दीपन वर्णन और शुक्ता भी सारिका नायिका के चित्रण की डॉ० भागीरथ मिश्र ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है।[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके श्रृंगार वर्णन को बहुत ही सुन्दर घोषित किया है।[4]

१—रसरहस्य १-१८
२—डॉ० भागीरथ मिश्र-हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ९१
३—वही।
४—हिन्दी साहित्य का इतिहास २४१

ये छन्दशास्त्र के भी पण्डित माने जाते है ।[१] इनके अतिरिक्त रानजी कृत नायिका भेद, गोपालराय कृत रससागर, भूषणविलास, बलिराम विरचित रस विवेक' बलवीर कृत उपमालकार आदि सस्कृत काव्यशास्त्रो के आधार पर लिखे गये है । आचार्य देव ने अपनी प्रतिमा से रीति काल मे प्रमुख स्थान प्राप्त किया है ।

आचार्य देव—

इनके रस विलास, भवानी–विलास, शब्द रसायन या काव्य रसायन आदि पर सस्कृत काव्यशास्त्रो का प्रभाव दिखाई देता है । काव्य पुरुष के रूपक मे इन्होने—रीति को अ म सस्थान कहा है जो शास्त्रानुकूल है । देव ने शब्द रसायन मे रसवादी शास्त्रकरो के समान सहृदय समाजिको को ही काव्य को समझने वाला माना है । रुद्रट के समान वे वक्रोक्ति को काकु और श्लेष नामक भेदो मे बाँटते है—

काकु वचन अश्लेष करी और अर्थ वे जाय ।
सो वक्रोक्ति सुबरनिय उत्तम काव्य सुबायी ।[२]

रस विलास मे उन्होने स्त्रियो के भेदो पर प्रकाश डाला है । भाव विलास मे ये सचारी के ही अन्तर्गत सात्विक को भी रखते है । वे कहते है ते सारीर अरु आतर विविध कहत भरतादि—

स्तभादिक सारीर अरु आंतर निर वेदादि ।[3]

इनके काव्य रसायन का आधार ध्वन्या लोक है । फिर भी यह कहना उचित ही होगा कि इन्होने अ धानुकरण नही किया है । उदाहरणार्थ भवानी विलास देखा जा सकता है ।

भवानी विलास मे रस को राधा और कृष्ण से उद्भूत आनन्द के रूप मे स्वीकार किया है । वे श्रृ गार को ही काव्य का मूल मानते है ।

१—रामबहोरी शुक्ल और डॉ० भागीरथ मिश्र–हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास–पृष्ठ ६०

२—भावविलास पृष्ठ १४८

३—माव विलास पृष्ठ २

भूलि कहत नव रस सुखवि सकल मूल शृंगार ।
तेहि उछाह निरखेहु ले वीर सात सचार ।[1]

इन्होने सात्विक भावो को संचारी से भिन्न अनुभावो के अन्तर्गत रखा है ।

केशव के अनुसार ये रस को प्रकाश और प्रछन्न भेदो मे बॉटते है । इन्होने शृगार को वियोग के बीच मे आने वाला माना है । वास्तव मे मनोविज्ञान के अनुकूल है । ये कहते है—

तीन मुख्य नव रसनि, द्वै द्वै प्रथम निलीन ।
प्रथम मुख्य तिन हुन पे, दोऊ तेहि आधीन ।
हास, भाव, शृंगाररस, रुद्र, करुण रस वीर ।
अद्भुत बीभत्स सता, साता बरनत धीर ।[2]

इन्होने रस निष्पती के सम्बन्ध मे शास्त्रकारो की व्याख्या तो नहीं की है किन्तु रूपक बाधकर उसे समझाया है ।

रस अंगुर थाई विभाव रस के उपजवन,

× × × ×

रस अनुभव अनुमान सात्वि की रस झलकवनि,
छिन छिन नाना रूप रसननि सचारी उजकै ।
पुरु रस सयोग विशद रस रग समुछके ।
ये हौत नायिका दीन में प्रत्यधिक रस भाव घट ।
उपजावत शृगारादि गावत नाचत सुकवि नट ।[3]

ये भट्ट लोलट के उत्पती वाद के समर्थक थे क्योकि इन्होने रस को उद्भावक विभाव को कहा है । रस की स्थिति भी इन्होने नायिकादि मे समझी है और नट के कौशल से उसकी उत्पत्ति मानी है । इन्होने नाट्य शास्त्रो के समान भी नाटको मे आठ रस और काव्य मे काव्यशास्त्रो के अनुसार नव रस माने है ।

१— १।११०

२—शब्द रसायन तृतीय प्रकाश पृष्ठ ३१

३—शब्द रसायन पृष्ठ २६

रति चण्डी होत शृंगार रस हासि चडी के हास।
करुण सोख चडी एवं रसा रस, रिस चडी करत प्रकाश।[१]

इन्होने रसो के कई भेद किये है यथा केशव के अनुसार प्रच्छन्न और प्रकाश भेदो को भी इन्होने स्थान दिया है—

चित थापित फिर बीजविधि होत अंकुरित भावादि।

इन्होने करुणा के भी पॉच भेद माने है और विभत्स के दो भेद। तर्क प्रधान विधि को अपना कर इन्होने कहा है कि नायिका का आकर्षण ही उन्हे नायिका वर्णन पहले करने को बाध्य करता है।

इन्होने दया वीर, दानवीर और युद्धवीर भी स्वीकार किये है। भाव विलास मे ये भरत का नाम अत्यन्त श्रद्धा से लेते है। नायक नायिका और अलकारो का वर्णन केशव के अनुसार करते है। इन्होने भाव विलास मे उद्दीपन का सुन्दर वर्णन किया है। ये छ-ल नामक चौंतीसवा सचारी मानते है। डॉ० भागीरथ मिश्र ने इसे तरगिणी के अनुकूल कहा है।[२] और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भी यही मान्यता थी।[३]

इसी भाति इन्होने जो वितरक के अवान्तर, विप्रपती विचार, सशय और अध्यवशाय भेद किये है वे भी रस तरगिनी के अनुवाद ही है।[४] ये भेद प्रभेद तो बढाये जा सकने है। क्योकि इनके लिये विश्वनाथ ने कह दिया था कि ये तो लक्षणमात्र है जिनकी वृद्धि सम्भव है। इन्होने अलकारो के निम्नाकित ३९ भेद मान्य है। ये कहते है—

अलंकार मुख्य ३९ है देव कहे ये ही पुरानी मुनि मतनि मे पायिये।
आद्यिमक कवित के सगत अनेक और इन्ही के भेद और विवद बताइये।[५]

१—शब्द रसायन पृष्ठ २०
२—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ९७
३—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३२०,३२१
४—डॉ० नगेन्द्र रीति काव्य की भूमि पृष्ठ १४६
५—भाव विलास ५।२

काव्य रसायन मे इन्होने काव्य का स्वरूप निर्माण किया है । ये कहते है—

शब्द जीव तिहि अर्थ मन रसमय सुजस शरीर ।
चलत वहै जुग छन्द गति अलकार गभीर ।

इन्होंने तीन रसो को मुख्य माना है । इनकी मान्यता थी—

तीन मुख्य नव रसनि में द्वय द्वय प्रथम विलीन ।
प्रथम मुख्य तिन तिहुन मे दोऊ तिहि आधीन ।

इस प्रकार का वर्णन भावना की दृष्टि से भरत के नाट्यशास्त्र पर आधारित दिखाई देता है । आचार्य ने साहित्य दर्पण निम्नाकित कथन—

वाक्य रसात्मकं काव्य दोशा स्तश्यपक शका ।
उत्कर्ष हेत वह प्रोक्ता गुणालकार रीतय ।

की छाया मे कहा है—

मानुष भाषा मुख्य रस भावनायिका छन्द ।
अलंकार प`चांग ये कहत सुनत आनन्द ।

इसमे इन्होने उल्लेख, समाधि, दृष्टान्द, विरोधाभास, असभव, असगति परिकर तथा तद्गुण अलकारो को अपने आव्य विलास मे वर्णित अलकारो मे जोड दिया है । ये नवीन अलकार चन्द्रालोक मे वर्णित है ।[१] इनके द्वारा वर्णित गौण अलकार कुवलियानन्द मे पाये जाते है । उपमालकार मे इन पर केशव का प्रभाव दिखाई देता है । जो स्वय दण्डी से प्रभावित है । इसीलिए ये अ त तो गतवा दण्डी से प्रभावित है ।

निष्कर्ष—

अतएव इन पर नाट्य शास्त्र, भोज के ग्रन्थ और रसरगिणी का अधिक प्रभाव दिखाई देता है और चन्द्रालोक व काव्यप्रकाश का कम ।[२] इन्होने कान्तिगुण

१—दे० उपमा का विवेचन ।

२—रामबहोरी शुक्ल और डॉ० भागीरथ मिश्र–हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास पृष्ठ ९०–९१

मे दण्डी के प्रतिकूल लोक मर्याद के उल्लघन की भी सम्मति दी है ।[१] इसी भाति इन्होने रीति के भेदोपभेद कर दिये है—नागर और ग्राम्य जो सस्कृत ग्रन्थो मे नही मिलते है । रसो को एक दूसरे के आधीन रखना भरत की शैली के अनुकूल है । इनके उदाहरणो मे स्पष्टता और मौलिकता है । इसी भाति कालिदास त्रिवेदी ने भी नायिका भेद सम्बन्धी वधु विनोद नायिका भेद ग्रन्थ की रचना की है । इसमे इन्होने शृ गार रस और स्वकीय परकीया के भेद किये है ।

सूरति मिश्र—

सूरति मित्र का अलकार माला चन्द्रालोक की शैली का अनुसरण करता है । एक दोहे मे लक्षण और उदाहरण से देने की उसकी शैलिका इसमे निर्वाह किया गया है । यथा—

यथासौ असंगति, कारण अबर कारज औरेगण ।
चली अही शुति आ नहि डसत, नसुत और के ।

इनके काव्य सिद्धान्त मे काव्यादर्श के समान सभी अगो का विवेचन किया गया है । इनके द्वारा बताये गये काव्य प्रयोजन और शब्द शक्ति, वर्णन आदि काव्यप्रकाश के अनुकूल है । इनके नखशिख रस रत्नामाला, सरस रस, रस ग्राहक चन्द्रिका, काव्य सिद्धान्त और रस रत्नाकर, रस और काव्य से सम्बन्धित ग्र थो की उल्लेख मिलते है ।[२] कृष्ण भट की शृ गार रस माधुरी, रसिक प्रियासी पुस्तक है । इसी भाँति गोप कवि ने रामचन्द्रण भूषण मे चन्द्रालोक के समान एक ही दोहे मे लक्षण और उदाहरण दे दिये है । याकूब खॉ के रस भूषण मे अलकार और नायिका भेद को साथ–साथ चित्रित किया गया है ।

याकूब खाँ—

याकूब खॉ ने अलकार और नायिका का भेद साथ–साथ किया है । क्योकि—

१—डॉ० नगेन्द्र–हिन्दी काव्यालकार सूत्र पृष्ठ १५७

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २४६

अलकार बिनु नायिका, शोभित कोई न आन।
अलकार जुत नायिका, याते कहौ बखानि।[1]

तदन्तर उपमा का और नायिका का एक साथ वर्णन करते है। यथा—

पूरण उपमा जानि, चारि पदार्थ होई जिहिं।
ताहिं नायिका मानि, रूपवन्त सुन्दर सुछवि।

उदाहरण है—
कर कोमल कज से ससि सौं दुति मुख ऐन।
कुन्दन र ग पिक बचन से मधुरे जाके बैन॥[2]

इनके हास्य रस को हिन्दी ग्रन्थो पर आधारित माना जाता है।

इनके ही समान कुमारमणि भट्ट ने रसिकलाल को काव्य प्रकाश के आधार पर बनाया। वे लिखते है—

काव्यप्रकाश विचारि कछु, रचि भाषा में हाल।
पण्डित सु कवि कुमारमणि किन्हों रसिकलाल।

इनके काव्य के प्रयोजन भी उसके अनुकूल है। इन्होने वात्सल्य को दसवा रस माना है। इनकी मौलिकता नायिका भेद मे नवीन नामो के उल्लेख मे पाई जाती है। जैसे इन्होने उन्नत यौवना, वक्र वचना और लघु सज्जा आदि का विवेचन किया है। इसी प्रकार से श्री पति मिश्र के काव्य पर भी सस्कृत का प्रभाव दिखाई देता है।

आचार्यश्रीपति—

आचार्य ने काव्य सरोज मे काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है—

शब्द अर्थ बिन दोष गुण, अलकार रसवाण।
ताको काव्य बखानिये श्री पति परम सुजान।[3]

१—डॉ० भागीरथ मिश्र-हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृष्ठ ११०
२—डॉ० भागीरथ मिश्र-हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १११
३—काव्यसरोज-दल १

हिन्दी मे अलकारो के महत्त्व के कारण इन्होने अलकार रसवान कहा है। इन्होने आगे कहा है—

जदपि दोष बिन गुण सहित, सबतन परमनूप।
तदपि न भूषण बिनु लसे, बनिता बविता रूप।

साथ ही इन्होने रस की महत्ता को भी स्थान दिया है। इनका स्थाई भावो और व्यभिचारी भावो का विवेचन भरत के नाट्य के अनुकूल है। ये कहते है—

जो रस को उपजायि के भावित करै विशेष।
तासौ कहै विभाव कवि, श्रीपति नर मुनिलेष।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे बहुत ही पौढ ग्र थ कहा है। इसी भाति रसिक सुमति कृत अलकार चन्द्रोदय भी सस्कृत काव्य शास्त्र से प्रभावित है।

रसिक सुमति—

इन्होने कुवलियानन्द के आधार पर कहा है—

तिनि मथि कुवलयानन्द मत अनौ कियो उद्योग।
अलकार चन्द्रोदय निकारियो सुमति लिखबै जोग।

इसमे अलकारो का वर्णन है जो सस्कृत काव्यशास्त्र का स्मरण दिलाता है। ये कहते है—कि अलकारो का वर्णन कुवलियानन्द के आधार पर किया गया है। इस युग मे सोमनाथ का रस पियुष निधि एक महत्वपूर्ण ग्र थ है।

सोमनाथ—

सोमनाथ ने रस पियूष निधि मे मम्मट के आधार पर काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है—

सगुन पदार्थ दोष बिनु, पिंगल मत अविरुद्ध।
भूषण जुत कबि कर्म जो सो कवि कवित्व कहि बुद्ध।

तदनन्तर काव्य प्रयोजन यश, धन, आनन्द और मगल बताये गये है। जो काव्य यशसेर्थ कृते पर आधारित है। ये सस्कृत के ध्वन्यालोक और काव्यप्रकाश के अनुकूल व्यग को महता देते हुए कहते है—"अर्थ और वाचयार्थ व्यग के लायक

है जहाँ सौ विवक्षित काव्य ध्वनि । ताके ध्वय भेद । एक असलक्ष्य–क्रम व्यगि–ध्वनि और दूजौ सलक्ष्य–क्रम–व्यगि–ध्वनि ।" ग्र थ मे भी इन्होने कहा है—

व्यग्य प्राण अरु अ ग सब, शब्द अरथ पहचानि ।
दोष और गुण अल कृत दूषणादि उरानि ।

इनका ध्वनि का बिवेचन काव्य प्रकाश पर आधारित है । वे भरत और अभिनव गुप्त का मत देने का प्रयत्न करते है । "जहाँ विभाव अनुभाव, सहित, सचारी, व्यग कियो थिर भाव । इहि सौ रस रूप बताब । भरत मत को लक्षण कह्यौ ।[1]

इन्होने अलकार विवेचन मे अन्य आचार्यो के मत उद्रित किये है । उदाहरणार्थ काव्यलिंग अलकार मे इन्होने लक्षण दोहो मे और उदाहरण छन्दो मे दिये है । इसकी आलोचको ने बहुत प्रशसा की है–वे इनके उदाहरणो को बहुत ही सुन्दर मानते है ।[2]

इनके समान करण कवि ने रस कल्लोल मे भरत का आधार लेते हुए कहा है—

रस अनुकूल विकार को, भाव कहत कवि गोत ।
इक मानस सारीर इक, द्वै विधि कहत उदोत ।

इनके समान गोविन्द का कर्णाभरण भी चन्द्रालोक की शैलि पर आधारित है । इनके उदाहरण कई स्थानो पर स्वतन्त्र और मौलिक है, यथा—

तुव कृपानि पानीयमय जदपि नरेश दिखाति ।
तौ प्यास पर प्राण की, या नाह ही बुजात ।[3]

रसलीन ने अग दर्पण और रस प्रबोद प्रदान किये । अ ग दर्पण मे ही प्राप्त होता है—

'अमी हलाहल भद मरे' इत्यादि–

१—डॉ० भागीरथ मिश्र–हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १२४

२—डॉ० भागीरथ मिश्र–हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १२०।१२५

३—डॉ० ओमप्रकाश–हिन्दी अलंकार साहित्य पृष्ठ १४६,१५५

रस प्रमोद मे नायिका भेद का मौलिक प्रयास किया गया है। इन्होने शैशव यौवना, उन्मत्त यौवना, लघुसज्जा, मूढ पति दुखिता जैसे भेद किये है। दुलह कवि ने कविकुल कण्ठामरण दें चन्द्रालोक और कुवलयानन्द का सहारा लिखा है। इन्होने केशव के समान यह कहा कि—

चरण बरण लच्छन ललित रीति जि करतार।
बिन भूषण नहि मूर्षे कविता वनिता चार।[1]

कुवलियानन्द के समान इन्होने स्तुति की और उसके समान अलकारो का विबेचन भी। शब्दालकार और अन्य विषयो को छोड दिया गया है। इन्होने एक साथ लक्षण देकर और फिर एक साथ उदाहरण दे दिये हैं। इससे इनकी कुछ नवीनता दिखाई देती है। नाम लेने मे ये कुवलियानन्द और चन्द्रालोक दोनो के ही लेते हैं परन्तु आधार कुवलियानन्द का ही है चन्द्रालोक का नही। इनके इस कथन पर—

ताही कटि-खीनता को नातो मानि सिह् हने,
तो गति गहैया गज अजब अजूबे को।१६

आचार्य भिखारीदास—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है— काव्यकला कल्पना सौष्ठव और चमत्कारिक रमणीयता की है जैसे रीतिकालीन काव्य वास्तव मे सुन्दर है। उस समय के कवियो ने आचार्य कर्म और कवि कर्म, दोनो स्थानाथ किये है।[2] फलतः काव्यशास्त्रीय ग्र थो का सरस रूप से वर्णन किया गया, जिनका आधार सस्कृत काव्यशास्त्र रहा है।[3] आचार्य भिखारीदास के काव्य मे आचार्यत्व के साथ सरस कवि के दर्शन होते हे। ये सस्कृत के इनके काव्यनिर्णय, श्रृ गार निर्णय, छन्दोर्णब-पिगल, रस साराश, विष्णु तुराण, नाम प्रकाश, अमरकोश अमरदिलक, तेरिज रस

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ २५८ एव कविकुल कण्ठा भूषण २
२—डॉ० रामशकर शुक्ल रसाल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ४०३
३—डॉ० दीनदयाल गुप्त—डॉ० नारायणदास सविचा विर चत—आचार्य भिदारिदास का उपोदघात

साराश और तेरिज काव्य निर्णय प्रभृति ग्र थ माना जाना है ।[1] इनके छन्दप्रकाश को आभोचलो ने अप्रमाणिक ग्र थ कहा है ।[2]

इन्होने काव्यशास्त्र के विभिन्न अगो काव्य प्रयोजन गुण, प्रदार्थ, तुक, काव्यदोष, छन्दानरूपण, रस और अलकारो पर विचार किया है । नायिका भेद पर इन्होने रसिकता प्रर्वक दृष्टिपात किया है ।

दासजी ने सस्कृत के विभिन्न काव्यशास्त्रीय ग्र थो का अध्ययन कर अपने ग्र थो का निर्माण किया । यथा—वे कहते है—

बुझि सुचन्तालोक अरु काव्य प्रकाश हु ग्र थ ।
समुझि सरुचि भाषा कियो है औरों कवि प थ ।[3]

एव—

प्रकृत भाषा सांस्कृत लाख बहु छन्दों ग्रथ ।
दास कियो छन्दोरण व भाषा रचि शुभ प थ ।[4]

अतएव इन पर सस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव आवश्यक है ।

सस्कृत शास्त्रकारो के समान इन्होने सहृदय सामाजिकों के लिये ही, इनमे भी जो थोडे से रस को समझना चाहते है, इनके लिये, रस साराश की रचना की ।

चाहत जानिगु थारे ही रस कवित्त को बंश ।
तिन रासिकन के हेत यह भी हो रस सारांश ।[5]

इस प्रकार इन पर सस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है । निम्नाकित विवेचन इसे स्पष्ट कर देता है—इनके काव्य निर्णय और सस्कृत के काव्य प्रकाश मे आपस मे निकट साम्य प्राप्त होता है—

१—डॉ० नारायणदास खन्ना विरचित—आचार्य भिखारीदास—प्राक्कथन
२—वही पृष्ठ १००
३—काव्य निर्णय पृष्ठ २
४—छन्दोर्णव पिंगल पृष्ठ ४
५—रस सारांश पृष्ठ ३

काव्यप्रकाश—

औनिद्यम दौबित्यं चिन्ताल सत्वं सननि' स्वसितम ।
मम मन्द मागिन्या कृते सखित्वांपी अहह परि भवति ।[1]

काव्यनिर्णय—

चिन्ता जृम्भा नीद अरु व्याकुलता अलसानि ।
लसयो अभागिनी हा अली ते हूँ गही सुवानि ।[2]

इसी प्रकार इनके काव्य मे स्थान–स्थान पर छायानुवाद या शब्दानुवाद प्राप्त होते है ।[3] चन्द्रलोक से भी इन्होने अनुवाद किये है । निम्नांकित उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है—

चन्द्रलोक—

मातर्गृहोय करणमय खलु नास्ती तिसाधितम त्वया ।
तदमरण किं करणीय मेव मेव न वासर स्थायी ।[4]

काव्यनिर्णय—

अम्बे फिर मोहि कहेगी कियो न तू गृह काज ।
कहँ सुकरि आऊँ अबै मु दो जात दिनराज ।[5]

श्री पद्मसिंह शर्मा ने काव्यनिर्णय और सस्कृत के आचार्यों के काव्यों में समता प्रदर्शित की है ।[6] इनमे उद्भट, भर्तृहरि, मम्मट आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है इन्होने काव्य मे अलकारो और गुणो का विवेचन मम्मट के आधार पर किया है—

१—पृष्ठ ४२
२—पृष्ठ १८
३—डॉ० नारायणदास खन्ना विरचित आचार्य भिखारीदास पृष्ठ २९-३२, ४०,४२
४—वही पृष्ठ २९
५—वही
६—सरस्वती नवम्बर १, १९१२

माधुर्योज प्रसाद के सब गुण है आधीन।
ताते ही को गन्यो मम्मट सुकवि प्रवीन।[1,2]

इन्होने श्लेष की गुरु, लघु और मथम की कल्पना की है जिसे आलोचको ने इनकी मौल्यकता काना है।[3] दास जी ने शब्द शक्तियो का सागोपाग वर्णन किया है जो शास्त्रो के अनुकूल है। यत्र-तत्र इन्होने परिवर्तन भी किये है यथा लक्षणा के भेदो मे इन्होने अपने भेद दिये है—यथा लक्षणा के भेदो मे लक्षणा के स्थान पर लक्षित लक्षणा नाम दिया है। फिर भी ये अधिकाशत मम्मट आदि सस्कृत आचार्यो के अनुकूल रहे है। अवर काव्य की परिभाषा हमारे मत की पुष्टी करती है। नायिका भेद मे धीरा, अधीरा और धीरा धीरा भेद इन पर भानुदत्त की काव्य मजरी का प्रभाव प्रकट करता है।[4] सस्कृत आचार्यो और केशव के समान इन्होने चित्र काव्य को भी स्थान दिया है।[5] काव्य निर्णय मे पूर्व ग्र थो—(हिंन्दी के ग्रन्थो) से भी सामग्री ग्रहीत की गई है। काव्यप्रकाश और चन्द्रालोक का प्रभाव तो स्वय कवि ने स्वीकार किया है। साथ ही इन्होने भाषा की रुचि के अनुकूल अपना मत भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया है।[6] काव्य निर्णय के उल्लासो मे काव्याक का विवेचन करते हुए वे ध्वनि की महता की प्रतिपादित करते है। काव्य प्रयोजन मे इन्होने साधना, सम्पत्ति, यश और सुख को स्थान दिया है जिससे मम्मट और हिन्दी कवियो के काव्य प्रयत्न का समनवय हो गया है। सूर और तुलसी के काव्य को इन्होने तपपु फ कहा है।

इन्होने अलकारो का आधार ढूँढ कर उन्हे वर्गो मे बाधने का मौलिक प्रयास किया है। ये वक्रोक्ति को काकु और श्लेष भेदो मे बॉटते है जिससे इन पर रुद्रट का प्रभाव दिखाई देता है—

१—काव्यनिर्णय पृष्ठ १९६
२—आचार्य भिखारीदास पृष्ठ १७३
३—आचार्य भिखारीदास पृष्ठ १७४
४—आचार्य भिखारीदास पृष्ठ २५०
५—वही पृष्ठ ३२५
६—डॉ० ओमप्रकाश-हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ १५६ पाद टिप्पणियाँ २,३

काकु वचन अरु श्लेश करि और अर्थ लै जायी ।
सौ वक्रोक्ति सुबरनिय उत्तम काव्य सुबायी ।[1]

इन्होने गुणो को रस मे अवश्य ही उपस्थित रखने को कहा है[2] पर तुक का निर्णय इनका अपना है । ये मम्मट द्वारा प्रतिपादित ध्वनि सिद्धान्त के अनुयायी है । साथ ही इनके निम्नाकित कथन–विरह बरी को मैं नही कहती लाल सन्देश पर कुबलियानन्द के निम्नाकित कथन का प्रभाव दिखाई देता है । "ना हम दुती तनोस्ता पस्तश्या काला न लोपना" की छाया दिखाई देनी है । समस्त अलकारो का वर्णन करते हुए इन्होने अपय दीक्षित के समान कहा है । इन पर विश्वनाथ का प्रभाव भी दिखाई देता है ।[3] इनका दोष वर्णन सस्कृत के काव्य प्रकाश के आधार पर है । इसी भाँती इन्होने जो प्रीति नामक भाव माना है वह रुद्रट का प्रमाण ही है ।[4]

इन्होने शृ गार निर्णय मे नायक नायिका के भेदो का वर्णन किया है । नायक भेद मे पति और उपपति भेद किये गये है । नविशक वर्णन मे सौन्दर्य वर्णन भी है । परकीया नायिका के भेदो मे इन्होने अपनी रुचि का परिचय दिया है ।[5] इन्होने अलकारो को वर्गों मे विभाजित किया और नायिका भेद भी समयानुकूल किया ।[6] रस साराश मे रशो का विवेचन है । इसमे इन्होने नटिन, धोबिन, कुम्हारिन और बरहन को दूतियो के रूप मे ग्रहण किया है ।[7] दास के निम्नाकित कथन पर रसवादी शास्त्रकारो–विश्वनाथ का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है । यथा—

१—भाव विलास पृष्ठ १४८

२—काव्य निर्णय १६ वां उल्लास–६३,६४

३—डॉ० ओमप्रकाश–हिन्दी अल कार साहित्य पृष्ठ १६२

४—डॉ० नगेन्द्र–रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ १४६

५—डॉ० ओमप्रकाश–हिन्दी अलकारसाहित्य एवम् डॉ० भागीरथ मिश्र हिन्दी काव्या शास्त्र का इतिहास पृष्ठ १४३

६—डॉ० नगेन्द्र–रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ १५३

७—रामचन्द्र शुक्ल–इतिहास पृष्ठ २५८

रस कविता को अंग, भूषण है भूषण शक्ल ।
गुण रूप और अंग, दूषण करै कुरूपता ।[1]

ये उनके ही समान सहृदय समाजिक की आवश्यकता पर बल देते हैं[2] और उनके आगामी कथन—

भिन्न भिन्न यद्यपि शक्ल रस भावादिक दास ।
रस व्यंग्य सबको भयो ध्वनि को जहां प्रकाश ।[3]

पर रस ध्वनि प्रतिपादन सिद्धान्त का प्रभाव है । इनका अर्थ पति को उदाहरण साहित्य दर्पण से प्रभावित है—उदाहरणार्थ—

हारोयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले ।
मुक्तानामप्यवेस्थेयं के वयं स्मर्किंकरा. ।। (साहित्य दर्पण)
पदुमनि–उरजनि पर लसत, मुकुतमाल की जोति ।
समुझावत यो सुथल गति, मुक्त नरन की होति ।(काव्यनिर्णय

इन्होने रस और अलकारो के समन्वय का सुन्दर प्रयास किया है । यथा—

अनुप्रास उपमादि जे, शब्दार्थालंकार ।
ऊपर तै भूषित करैं, जैसे तन को हार ।।
अलकार बिनु रसहु है, रसौं अलकृत छडि ।
सुकवि–वचन–रचनान सौं, देत दुहुंन को मडि ।।

इन्होने काव्य के हेतु' वताते हुए शक्ति, निपुणता और अभ्यास को मिला दिया है और रथ के रूपक द्वारा अपने मतव्य को स्पष्ट किया है दास ने तुनरुक्ति प्रकाश नामक एक नये गुण की कल्पना की है और सौकुमारी गुण को छोड दिया है ।[4] इनके काव्यागो का विवेचन का भी प्रकाश पर आधारित है । कई स्थानो

१—काव्य निर्णय
२—वही
३—डॉ० ओमप्रकाश हिन्दी अलंकार साहित्य पृष्ठ १६६
४—डा० नगेन्द्र–काव्याल कार सूत्र पृष्ठ १६७

पर तो उसका अनुवाद ही है। गुणीभूद व्यग्य तो ठीक काव्यप्रकाश के ही है। ध्वनि कार के विवेचन को भी महतता दी गई है।[१,२]

चन्द्रालोक के समान नामो से ही लक्षणो का प्रकट होना भी कहा गया है—

सुमिरन, भ्रम, सदेह कौ, लक्षरा प्रगटे नाम।?

इसी भाँति इनका निम्नांकित कथन कुवलियानन्द की छाया मे लिखा गया है—

बधन—डर नृप सों करे, सागर कहा विचारि।
इनको पार न शत्रु है, अरु हरि गई न नारि॥
सवय्या गते किमति वेपत एव सिंधु—
स्त्व काव्य सेतुमन्थकृदत किमसी विभोति।

इनके काव्य मे शृ गारिता और रूप सौन्दर्य के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते है। यथा एक नायिका मेघाच्छन्न भादो की रात्रि मे प्रिय मिलन हेतु अपने शरीर को ढक कर जाती है क्योकि उसकी तन द्युति से प्रकाश न हो जाये। पवन के झकझोरो से उसकी ओढनी कभी—कभी उडती है और लोग उस समय बिजली चमकती है ऐसा अनुमान करते है। दासजी कहते है—

जलधर ढारै जल धारन की अंधियारी,
निपट अंधारी भारी भादव की यामनी।
तामें श्याम बसन विभूषण पहरि,
स्यामा स्याम पै सिधारी प्यारी मत्त गज गामिनी।
दास पौन लागे उपरैनी उड़ी उड़ि जात,
तापर क्यो न हूँ भांति जानी जाति भामिनी।
चारू चटकीली छबी चमकि चमकि उठै,
लोग कहे दमकि दमकि उठै दामिनी।[३]
इनका यह वर्णन यहां तक बढ़ा कि,
उसमें अश्लीलता भी दिखाई देने लगी।[४]

१—डॉ० भगवत स्वरूप—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २०३
२—वही
३—शृ गार निर्णय पृष्ठ ५६,५७
४—उदाहरणो के लिये देखिये काव्य निर्णय पृष्ठ १४७,१६१ आदि

एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि हिन्दी मे इनके तुक वर्णन को अनोखा माना जाता है।[1] सस्कृत मे वर्ण वृत्तो और भिन्न तुकान्त छन्दो के कारण सम्भत इसकी आवश्यकता ही नही समझी गई थी। हिन्दी की प्रवति के अनुकूल इनका तुक विवेचन वास्तव मे सराहनीय है। इनके छन्दो का विवेचन भी मौलिकता से परिपूर्ण है।[2] मिश्र बन्धुओ ने दासजी के श्रीपति के काव्य से अपहरण कर लेने की चर्चा की। डॉ० नारायण दास खन्ना ने सोदाहरण इस मद का खण्डन किया और बताया कि कई उक्तियाँ तो दोनो ने ही सस्कृत से चन्द्रालोक और काव्य प्रकाश से ग्रहण की है।[3]

निष्कर्ष—

अतएव निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आचार्य दास सस्कृत के ग्रन्थो का अनुवाद करते, छाया अनुवाद करते और कभी–कभी अपना मत भी उधरित कर देते। इन्होने लक्षण ग्रन्थ सस्कृत शैली मे लिखने का प्रयत्न किया जिसमे तत्कालीन प्रवृति के अनुसार शृ गार को अत्यधिक महत्ता दी जिससे उनके वर्णन बडे सुन्दर बन पडे है, किन्तु कई स्थानो पर उनमे अश्लीलता भी दिखाई देती है। इन्होने आचार्यत्व और कवित्व को एक कर देने का प्रयत्न किया था। हिन्दी मे तुक वर्णन करने वालो मे ये अग्रगण्य माने जाते है। इनकी एक विशेषता यह भी रही है कि इन्होने भाषा की रुचि के अनुकूल अपने मत को प्रतिपादित किया है दास ने स्वगुण, उत्तरोत्तर, रत्नावली, रसनोपमा तथा देहली दीपक ऐसे नाम दिये है जो पहले इसी नाम से नही मिलते है। सिहावलोकन भी एक ऐसा ही उदाहरण है। इनके अपने उदाहरण सरस और सुन्दर हैं। यथा—

वहै अपह्नुति, अधरछत करत, न प्रिय, हिम–वाय।(काव्य निर्णय)

एवम् कज के सपुट है ये, खरे हिय में गड़ि जात ज्यों कु त की को है।
मैरु है पै हरि हाथ में आवत, चक्रवर्ती पै बड़ेई कठोर है।
भावती तेरे उरोजनि में गुन दास लख्यौ सव औरह और है।
सभु है पै उपजावै मनोज, सुवृत्त है पै परिचित के चोर है।

१—डॉ० भागीरथ मिश्र हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १४४,१४५
२—डॉ० पुतुलाल शुक्ल–आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना अध्याय ४
३—डॉ० नारायणदास खन्ना–आचार्य भिखारीदास पृष्ठ ३३६

शिवनाथ कृत रसवृष्टि एक नायक नायिका भेद सम्बन्धी ग्रंथ है जो केशव की परिपाटी पर आधारित है। इसमे इन्होने सामान्या के प्रसग मे नवीन भेद किये है। इसी प्रकार रमन कवि और ऋषिनाथ भी युग प्रभाव से अछूते नही रह सके। जनराज कृत कविता रस विनोदे मम्मट के काव्य प्रकाश पर आधारित है। ये कहते है—

गुन गन भूषण उचित दूषन प्रगठन होय।
बिग सु शब्दार्थ सहित, कवित कहावै सोय।

इन्होने लिखा है अन्ध अधम काव्य कर्णनातासौ अलकार कहते है। जिससे इस पर कुवलियानन्द का प्रभाव भी दिखाई देता है। उजियारे कवि ने रस चन्द्रिका मे भरत के आधार पर रस वर्णन किया है। ये कहते है—

"याके अनुभाव भरत सूत्र ......" आदि

यशवतसिंह का शृंगार शिरोमणि रस विभाव उद्दीपन और अन्य वर्णन प्रधान पद्धति पर आधारित है। इन्होने नायक का वर्णन करते हुए उसके सहायक नर्म, सचिव, व्याकरणी, नैय्याकि, पूर्व मीमाशक, उत्तर मीमाशक, वेदान्ती, योगशास्त्री और ज्योतिर्षि आदि का वर्णन किया है। ऐसेभेद का वर्णन भरत कृत नाट्य शास्त्र मे पाया जा सकता है। जगतसिह ने साहित्य सुधानिधि का आधार चन्द्रालोक, नाट्यशास्त्र और काव्य प्रकाश को बनाया है। थानकवि ने दलेलप्रकाश मे गन, गुण, रस और अलकारो का स्वेच्छा पूर्वक बिना किसी क्रम के वर्णन किया है।[1] ज्ञात ऐसा होता है कि इन्होने भाषा रीति ग्रंथ मे विन विन विषयो को चाहा, चुना और पाण्डित्य पूर्ण रीति से उनका विवेचन किया। गुरुदीन पाण्डे ने बाग मनोहर नामक रीति ग्रंथ का प्रणयन किया जिसमे छन्दो पर भी प्रकाश डाला है। इन्होने रस, गुण शब्द शक्ति और छन्दो का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

महाराजा मानसिंह ने रसशिरोमणि मे रसमंजरी को आभार बनाया। इन्होने रसनिवास मे मायारस का वर्णन भी किया है जिसका स्थायी भाव मिथ्या ज्ञान माना है। इन्होने भानुदत्त की रसमंजरी का आधार लिया है। अलकार दर्पण मे ये अलकार छबी देते है। इनकी उपमा सभवत: मम्मट पर आधारित है।

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २५६

सेवादास ने भक्ति को ही अपना उद्देश्य माना था। फिर भी ये रघुनाथ अलकार मे चन्द्रालोक और कुवलियानन्द के प्रभाव से अच्छूते नही रह सके हैं। इस पुस्तक मे किया गया अलकारो का वर्णन इसका साक्षी है—इन्होने कहा है—

कुवलियानन्द व चन्द्रालोक में अलंकार के नाम।
तिन की गति अवलोकि के अल कार कही राम। (१६४)

रस दर्पण भी एक नायिका भेद सम्बन्धी ग्रंथ है जिसमे राधा और गोपी का वर्णन किया गया है। इसकी पद्धति रसमजरी से मिलती जुलती है। गोकुलदास ने चेतचन्द्रिका मे अलकारो का स्थान दिया है। रीतिकाल के कवियो मे पद्माकर का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये चन्द्रालोक को कही–कही ज्यो का त्यो आधार बना लेते है। जैसे—

नाय सुधाशु, किं तर्हि? व्योमगंगा सरोरूहं।—चन्द्रालोक
यह न सखी, तो है कहा? नभगगा जलजात॥—पद्माभरण

पद्माकर—

पद्माकर मे पद्माभरण को दो प्रकरणो मे विभाजित किया हे। प्रथम प्रकरण के सौ अलकार कुवलियानन्द के अलकार ही है। इस प्रकार अलग प्रकरण बनाना कवि की अपनी सूज है। सभवत इसे बोध गम्य बनाने के लिये ही ऐसा किया गया है।[1]

इनके कुछ उदाहरण साहित्यदर्पण से भी प्रभावित है। उदाहरण के लिये दो लक्षण नीचे दिये जाते है—

जु कहुँ पावतौ आप में, द्वै अरविन्द अमंद।
तो तेरे मुखचन्द की, उपमा लहतो चन्द। २१४
यदि स्यानमण्डले सवतमिन्दोरिन्दी वर द्वयम।
तदोपमीयते तस्या वदन चारूलोचनम।

इनके लक्षण कुवलियानन्द, काव्यप्रकाश तथा साहित्यदर्पण से प्रभावित है।[2] साथ ही यत्र-तत्र कवि ने मोलिकता का भी प्रयास किया है। किन्तु उसमे

१—डॉ० ओमप्रकाश–हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ १८२
२—वही १८६

एकान्त्रिक ग्रथो का अनुकरण और कतिपय लक्षणो को ग्रहण करना ही प्रकट हो सके है। यथा कुवलियानन्द के रूपको के छै वेदो के अतिरिक्त साव्यव भेद भी माना गया है। जो साहित्य दर्पण के अनुकूल है किन्तु साहित्य दर्पण के निरग को छोड दिया गया है।

रणधीरसिंह ने काव्य रत्नाकर मे चन्द्रालोक और काव्यप्रकाश तथा भाषा ग्रथो का आधार लिया है। ये स्वय कहते है—

लखि गति चन्द्रालोक अरु काव्य प्रकाश सुदीप्त।
औरौ भाषा ग्रंथ बहु ताकौ सगत गीत।
काव्य रीति जितनी प्रकट आनि करीं इकठौर।
इतनोई पढ़ी बुझि है सकल काव्य कौ तौर।

इन्होने काव्य का प्रयोजन धन, धर्म, यश और मोक्ष बताये है। नारायण कृत नाट्यदीपिका मे भरत और शारगधर को उदाहरण के लिये उपयोग मे लिया गया है। इसके उदाहरण पद्य मे है और लक्षण गद्य मे है। भरत के नाट्यशास्त्र अभिनव गुप्त, मम्मट आदि ने इन्हे प्रभावित किया है। ध्वन्यालोक तथा विश्वनाथ के साहित्यदर्पण आदि का विवेचन कर ग्रन्थकर्ता को कत प्रतिपादित किया गया है। इनके रस कथन मे भरत की ओर सकेत किया गया है। साहित्यदर्पण के सत्वोद्रेकात की छाया भी दिखाई देती है। इसी भाँति साहित्यदर्पण के मुग्धा के उदाहरण की प्रशसा की जाती है।[१] प्रतापसाही ने शब्द शक्ति विवेचन मे मम्मट का अनुवाद कर दिया है। व्यग्यार्थ कौमुदी मे काव्य की आत्मा ध्वनि को बताया गया है। इन्होने मम्मट का सैद्धान्तिक आधार ग्रहण किया है।

काव्य विलास मे अधिकाशत काव्यप्रकाश का आधार लिया गया है। काव्यप्रदीप साहित्यदर्पण, रसगगाधर, चन्द्रालोक, कुवलियानन्द, रसतरगनी और रसमञ्जरी आदि ने भी इन्हे प्रभावित किया है। इन्होने नवरसों की जो व्याख्या की है उस पर ध्वनिकार और भरत का प्रभाव है। उत्तमचन्द भण्डारी भी अलकारवादी थे और केशव के समान अलकार को मुख्य मानते थे।

इस युग मे टीकाये भी लिखी गई जिनसे आलेच्यकाल की आलोचना पर संस्कृत का प्रभाव दिखाई देता है। सरदार कविकृत मानस रहस्य मानस की टीका

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २६५

है। इसमे ग्रथ के लेखक ने काव्यविलास रस रहस्य और समा प्रकाश का सहारा लिया है। इस आलोचना का आधार शास्त्रीय पक्ष रहा है।

रस रूप के तुलसी भूषण मे कुवलियानन्द और चन्द्रालोक का प्रभाव दिखाई देता है। ब्रह्मदत्त के दीप प्रकाश के लक्षणो पर भी चन्द्रालोक का प्रभाव है। यथा—

उपमा यत्र सादृश्य लक्ष्मीरुल्लसति द्वै। चन्द्रालोक

शोभा सरिस दुहुन में सो उपमाल कार। दीपप्रकाश

काशीराज की चेतचन्द्रिका पर सरस्वती कण्ठाभरण और काव्यप्रकाश की छाया है। गिरधरदास ने भारती भूषण मे कुवलियानन्द का आधार लेकर अलकारो और नायिका भेद का वर्णन किया हैं। जैसे दण्डी ने काव्यादर्श मे उपमावाचक शब्द दिये है वैसे ही इन्होने भी हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल और प्रकृति के अनुसार शब्दो की सूची बनाई है। कवीन्द्र ने रस चन्द्रोदय की रचना मे शास्त्रीयाधार लिया है। वीर ने कृष्ण चन्द्रिका नामक रस और नायिका भेद सम्बन्धी ग्र थ का प्रणयन किया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह युग टीका पद्धति भी प्रदान कर रहा था। अतएव रघुनाथ ने विहारी की टीका लिखकर इसमे सहयोग लिया। कृष्ण कवि ने भी बिहारी की टीका लिखी। इसमे वार्तिका मे काव्यागो को स्पष्ट किया गया है। दलपतिराम और बन्सीधर ने अलकार रत्नाकर नामक ग्र थ लिखा। सोमनाथ ने पियुष निधि मे पिंगल काव्य लक्षण, प्रयोजन, भेद, शब्दशक्ति, ध्वनि भाव, रस और गुन एव दोष का विवेचन किया।

इस काल मे निर्णयात्मक एव इच्छापूर्वक युक्तियाँ भी प्रकट की गई। इन पर सस्कृत शैली का प्रभाव दिखाई देता है।

उक्तियाँ और निणय—

रीति काल मे टीकाओ और तिलक के अतिरिक्त कवियो के सम्बन्ध मे उक्तिया भी प्राप्त होती हैं। ये उक्तियाँ कई बार तो किसी प्रसिद्ध ग्र थ मे से लेली जाती है और कई बार इनके निर्माता अज्ञात से ही रहते है। जिस प्रकार सस्कृत साहित्य मे अनुभूति एव निर्णय प्रधान उक्तियाँ मिलती है वैसे ही इन उक्तियो मे भी अनुभूति और निर्णय पाये जाते है। यथा सस्कृत मे कहा जाता है—

"पुष्पेषु चपा, नगरेषु लंका,
स्त्रीषु रभा, पुरुषेषु विष्णु ।"

और कवियो के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि,

"उपमा कालि दासस्य, भारवी अर्थ गौरवम् ।" इत्यादि । ऐसे ही प्रयोग हिंदी मे भी किये जाने लगे, यथा–काव्य निर्णय मे कहा गया है—

"तुलसी गग दओ भये, सुकविन के सरदार ।
इनकी काव्यन में मिलि, भाषा विविध प्रकार ।।"

× × × ×

सूर केसी मडन बिहारी कालिदास ब्रह्म,
चिंतामणि मतिराम भूषण से जानिये ।

इसी प्रकार के अन्य प्रयोगो की दृष्टि से निम्नांकित पद्यांश पठनीय है—

सूर सूर तुलसी शशी, उडगन केशवदास ·· ··
सतसइया के दोहरा, ज्यो नावक के तीर ।
तुलसी गग दुऔ भय, सुकविन के सरदार ··· ···
उत्तम पद कवि गग के, कविता को बलवीर,
केशव अर्थ गम्भीर, सूर तीन गुण धीर ।
किन्धौ सूर को सर लग्यो, कियौ सूर की पीर · ··

इस प्रकार उपर्युक्त कथन निर्णात्मक शैली और अपने अनुभव के प्रकाशन की दृष्टि से सस्कृत की ऐसी ही उक्तियो से तुलनीय है—इन पर सस्कृत का प्रभाव भी कहा जा सकता है ।

रीति कालीन काव्य और अन्य कवि—

इस युग के कवियो मे कला पक्ष का प्राधान्य रहा है । विहारी इस प्रभाव से अछूते नही रह सके है । उनका निम्नाकित दोहा हमारे कथन की पुष्टि करता है ।

लिखन बैठी जाकी सबी, गहीं-गही गरब गरूर ।
भये न केते जगत के चतुर, चितेरे कूर ।।

इसी भाँति इनका—

ललन चलन सुनि कलन में अंसु वा झरके आई।
भई न लखा यतु सखिन ही झूंठे ही जमुहात॥

यह वर्णन नायिका की प्रिय कमन से उत्पन्न खिन्नता को स्पष्ट रूपेण प्रकट करता है। इन्होने अपना मत यो व्यक्त किया है—

मानहु विधि तन अच्छ छबि, एवच्छ राखी बेकाज।
दृग पग पौछन को कियौ भूषण पायन्दाज॥

इससे प्रतीत होता है कि चमत्कारो को इतनी महत्ता देने वाले कवि बिहारी भी नायिका के सौन्दर्य को महत्ता देते है—भूषण को तो वे पायन्दाज मानते है। उनका निम्नाकित दोहा भी जीवन की सादगी, प्रिय के साथ रहने की लालसा और जीवन मे सुख की आकाक्षा की व्यग्रता को प्रकट करता है।

पटु पाखै भखे कांकरी, सदा परे ही संग।
सुखी परेवा जगत में एको तुहीं वियंग॥

बिहारी के समान सेनापति के काव्य मे भी शास्त्रीय तत्व खोजे जा सकते है[1]

सेनापति के काव्य मे श्लेस का चमत्कार देखने योग्य है। सभँग और अभग दोनो ही रूप प्राप्त होते है। कवित्त रत्नाकर की दूसरी तरग मे शृ गार वर्णन नख-शिख, उद्दिपन, भाव और वय सधि आदि को स्थान दिया गया है।

सेनापति का कथन है कि—

मूथन को आगम, सुगम एकता को,
जाकी सीखन विमल विधि ··· ···
बुद्धि है अथाह को। **कवित्त रत्नाकर।**

इस कथन पर—'विमल प्रतिमान शालि हृदय' के लक्षण का प्रकटीकरण उल्लेखनीय है। इनकी रीति सम्बन्धी धारणाये आलोचको ने खोज निकाली है।[2] निम्नाकित उद्धरण हमारे कथन की सच्चाई प्रगट करते हैं—

१—डॉ० नगेन्द्र—हिन्दी काव्यालकार सूत्र पृष्ठ १४७
२— वही पृष्ठ १४६, १४७

क–दोष सौं मलिन गुण हीन कविताई है तो,
कीने अरबीन परबीन कोई सुनि है ॥

एव—

ख–मच्छर है विशद करत हुं खै आपस में।
जाते जगती की जडताउ विनसित है ॥

यहाँ एक तथ्य का उद्‌घाटन सामयिक ही होगा कि रीति कालीन कवियो की धारणाओ और अंग्रेजी के शास्त्रीय युग की अभिव्यक्तियो मे समानता देखी जा सकती है। इसका उल्लेख यथा स्थान किया जा चुका है, फिर भी यह तो कहना ही होगा कि केशव के काव्य तक मे प्राप्य कई उक्तियाँ शेक्सपीयर के नाटको सी सुनाई देती है। उदाहरण के लिये केशव कहते है—

केशव चूक सबै सहियौ मुख,
चूमि चले यहु पै न सहोगी।
कै मुख चुमन दे फिर मोहि के,
आपनी धाई सो जाइ कहोगी ॥[२]

और शेक्सपीयर कहते है—

"दि सिन आफ माई लिप्स,
रिटर्न इट टू मी"[३]

घनानन्द—

रीति काल के घनानन्द ने सुजान सागर मे सवैया पद्धति से शृंगार, नायक नायिका और उद्दिपन आदि का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होने अपनी कविता मे छन्दो से सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है। उदाहरण के लिये निम्नांकित सौन्दर्य के दर्शन कीजिये—

"लाजति लपेटी चितवन भेद भाय भरि,
लसति ललित लोल चख तिरछानि में।

१—कवि प्रिया–नायिका वर्णन।
२—रोमियो जूलियट–रोमियो का कथन।

छबि को सदन गोरी बदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मे।
दसन दमक फैली हिये मोती माल होत,
पिय सौं लडैकि प्रेम पगि बतरानि में।
आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनग रंग ढूरि मुरझनि में॥"

इन्होने भाव-अनुभाव सचारि और वियोग आदि के चित्रण भी सजीव रूप मे प्रस्तुत किये है। इनका हृदय तो 'सुजान प्रेम' पीडा से सीहर रहा था। अतएव अभिव्यक्ति मे भाव सबलता का होना अनिवार्य ही था। फिर भी इनके कला पक्ष को कम नही कहा जा सकता।

विरह की दशा की अत्यन्त तीव्रानुभूति नीचे के छन्द मे प्राप्त होती है।

"कारी कूर कोकिल कहां को बैर काढति री।
× × × ×
चातक घातक त्यौंही तुहूँ कान फोरि लै
× × × ×
तोलौं रेडरारे बज मारे घन घोरि लै॥"

इन उद्धरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि घनानन्द के काव्य मे रीति तत्व विद्यमान अवश्य थे।[1]

रीतिकालः निष्कर्ष—

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रीतिकाल मे काव्य-शास्त्रीय ग्रंथो पर सस्कृत के काव्यशास्त्र का प्रचुर प्रभाव दिखाई देता है। इस युग का काव्य हाल की सतसै, खुसरो की मनोरजन प्रधान कविताओ और सन्देश रासक के रचयिता की दैन्य प्रकटीकरण की विशेषताओ से सम्पन्न है। इस समय तक रासो ग्रंथो व विद्यापति के काव्य मे प्राप्य शृंगारिक वर्णन बहुत विकसित हो गया जो कभी-कभी तो अश्लीलता की सीमा को छूने लगा। प्रश्रयदाताओ की

१—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी रीति साहित्य पृष्ठ १३३, १३४

प्रशसा मे भी ग्र थ लिखे गये। भूषण ने तो सभवत· छन्द रच कर उन्हे रीतिबद्ध कर दिया। लक्षण देने के बाद ऐसे वर्णन किये जो उनके उदाहरण बन गये। विद्यानाथ कृत प्रताप रुद्र यशोभूषण ऐसा ही ग्र थ है। लक्षण लिख कर अपनी ही रचनाओ के उदाहरण दे देने की शैली पण्डित राज जगन्नाथ के अनुकूल थी। इसे अपनाने से कई कवियो को राजा की प्रशसा करने का और लक्षण लिख देने का—दोनो का ही सौभाग्य प्राप्त हो गया। यही नही अन्य कवियो को लक्षण बता कर मनोनकूल शृ गारिक चित्रण दे देने का स्वातन्त्र्य भी प्राप्त हो गया।

रीतिकाल मे कतिपय आचार्यों ने अपनी भाषाये स्थापित करने के प्रयास किये। आचार्य कुलपति मिश्र की रचनाएँ उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है। तत्कालीन राज दरबारो मे नायिका के लक्षणो पर वाद–विवाद भी हुआ करते थे। लक्षण ग्र थकार इसमे सरुचि भाग लेते थे। वहा कवि–आचार्यो की एक प्रकार से परीक्षा भी हो जाती थी। अतएव इसमे भाग लेने वालो का विभिन्न ग्र थो से परिचित होना आवश्यक और स्वाभाविक ही था। इस प्रकार जब ये कर्य ग्र थो से परिचित होते तब अपनी रचनाओ मे भी विभिन्न ग्रथो का सहारा अवश्य ही ले लेते—सस्कृत के और आगे चल कर बाद के हिन्दी के कवि भाषा के ग्रथो का भी समुचित उपयोग करने लगे। वे नाम किसी एक आचार्य या कतिपय पाडे से बहु चर्चित प्रसिद्ध और प्रचलित आचार्यों का दे देते। कई बार तो सहारा किसी अन्य आचार्य के लेते और नाम किसी अपने प्रिय आचार्य का दे देते।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है राजकाश्रय प्राप्ति हेतु राजा की प्रशसा की जाती थी और नायिकाओ के भेद आदि से कवि परिचित रहते थे। यहा यह ध्यान देने योग्य है कि राज स्वय अधिक पण्डित नही होते थे, एतदर्थ शृ गारिक वर्णनो द्वारा उन्हे प्रभावित और आकर्षित किया जाता था। इन नायिकाओ, उनकी दूतियो और सखियो के वर्णनो मे तत्कालीन परिस्थितियो ने भी सहयोग दिया।[१]

इसके अतिरिक्त केशव जैसे पण्डित भी थे जो कई ग्रन्थो मे राजा की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा से भी बच जाते थे और राज दरबार मे अपने लक्षण ग्र थो

१—डॉ० नगेन्द्र रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ११

के द्वारा सम्मान भी प्राप्त कर लेते थे।[1] यह कहे तो भी अत्युक्ति नही होगी कि प्रवीणराय जैसी शिष्याए भी सम्भवतः आचार्यत्व से प्रभावित हो उनकी बन जाती थी राज दरबार का विलासतापूर्ण जीवन कवियो को प्रेरणा देता और वे लिख देते—

"गुलगुली गिज में गलीचायें गुनी जन है,
चांदनी है चके है चिरागन कीं माला है।[2]

इस प्रकार कवि और आचार्य विलासपूर्ण चित्रण मे व्य[illegible] और मस्त रहे। इसी हेतु वे काव्यशास्त्र से हटकर कामशास्त्र के अनुकूल नायिकावि के विस्तृत विवेचन करने लगे। देव के अष्ट याम ऐसे शृ गारिक वर्णनो के उदाहरण है। तत्कालीन काव्य मे रस, ध्वनी और अलकारो पर विस्तृत प्रकाश डाला गया और रीति व वक्रोक्ति पर सैद्धान्तिक दृष्टि से कम ही लिखा गया। रतिवर्णन जगतसिंह ने अवश्य किया है।[3] इस प्रकार हम कह सकते है कि कवियो ने कतिपय काव्य सिद्धान्तो को अपनाया और अन्य को छोडसा दिया। इसका कारण यह भी हो सकता है कि इन कवियो का उद्देश्य अपने आप को पण्डित और आचार्य सिद्ध करना था न कि साहित्य को समृद्ध करना। इसी युग मे सस्कृत के अनुकूल रहते हुए भी यत्र-तत्र विषय विस्तार या सकोच भी किया गया।

सस्कृत काव्यशास्त्रकारो के अनुकूल काव्य पुरुष की कल्पनाएँ की गई जिनमे अधिकाशत. सस्कृत का प्रभाव परिलक्षित होता है। कुलपति मिश्र ने ऐसा ही किया है। काव्य पुरुष की कल्पना मे ही नही, विषय निरूपण की शैली पर भी सस्कृत ग्र थो का प्रभाव दिखाई देता है। यथा काव्य प्रकाश की शैली पर काव्य के अधिकाश अ को का विवेचन किया गया तो कही शृ गार तिलक और रसमजरी के अनुकूल नायक नायिका भेद का चित्रण किया गया। चन्द्रालोक और कुवलियानन्द की शैलियो ने भी हिन्दी रीति साहित्य को प्रभावित किया। कही कुवलियानन्द के समान लक्षण और उदाहरण अलग-अलग दिये गये तो कही चन्द्रालोक के अनुकरण पर एक ही छन्द मे लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत कर दिये।

१—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी रीति साहित्य पृष्ठ २२

२—जगदविनोद—पद्माकर विरचित

३—साहित्य सुधा निधि ६, ५४, ५५

साहित्य दर्पण और काव्य प्रकाश आदि के यत्र-तत्र अनुवाद से कर लिये गये। कही-कही भोज के श्रृंगार प्रकाश, भानुदत्त की रसतरगिनी और अग्नि पुरानादि के अनुकूल श्रृंगार को रस राज माना गया।[1] यह भी उल्लेखनीय है कि कभी कभी कतिपय ग्रन्थो की विवेचन प्रणालियों को भी एक कर दिया जाता था। उदाहरणार्थ हरिनाथ ने अलकार दर्पण मे ८६ दोहो मे लक्षण लिख दिये और फिर ४० छन्दो मे उनके उदाहरण दे दिये। यह पद्धति चन्द्रालोक की शैली से अधिक भिन्न नही कही जा सकती है। इसी भाति अलकारमाला और अलकार चन्द्रोदय मे शैली तो चन्द्रालोक की अपनाई गई परन्तु विषय का आधार कुवलियानन्द को बनाया गया। सिद्धान्त रूप से शब्दालकारो को कम महत्व देने की प्रवृति पर दो भिन्न-भिन्न प्रभावो का सयोग दिखाई देता है। एक तो चन्द्रालोक मे ऐसा ही किया गया है और दूसरा रस और चमत्कार के कारण भी सभवत: ऐसा हुआ है। अलकारो मे शब्दालकार रस ध्वनि से अधिक दूर दृष्टिगोचर होते है। एक अन्य कारण वह भी बताया जा सकता है कि शब्दालकारो के द्वारा अपने हृदय की श्रृगारिता को भी उतनी सफलतापूर्वक नही प्रकट किया जा सकता जितनी की सफलता अर्थलकारो के द्वारा प्राप्त होती है। फिर भी सस्कृत के अनुकूल कतिपय विवेचको ने चित्र काव्य तक को स्थान दिया है। जगत विनोद मे रस को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है। कुछ ग्रन्थो मे रस सम्बन्ध मे भरत के नाट्य शास्त्र के अनुकूल चार रसो को प्रमुख माना गया है और अन्य की उत्पत्ती उनसे ही बताई गई है।

इस काल मे कवियो के सम्बन्ध मे निर्णयात्मक और इच्छा के अनुकूल उक्तिया भी कही गई है जो सस्कृत की प्रसिद्ध उक्तियो की शैली के अनुकूल है।[2] साहित्य दर्पण के नाम पर भी अलकार दर्पण (रत्न कवि बिरचित) और अन्य अलकार दर्पण (हरिनाथ कृत) आदि प्राप्त होते है। महाराजा रामसिह कृत अलकार दर्पण भी इसकी पुष्टी करता। यह काल टीका पद्धति का भी अनुसरण

१—केशव कृत रसिक प्रिया एव देव विरचित शब्द रसायन।

२—(क) काव्य निर्णय पृष्ठ ४, ६

(ख) डॉ० भगवत स्वरूप हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २९०–२९१

करता हुआ दिखाई देता है। अत एक शब्द मे कहा जा सकता है कि भाव और शैलि की दृष्टि से रीत युग के काव्यशास्त्रीय ग्र थो और लक्ष्य ग्र थो पर सस्कृत के काव्यशास्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। यहा यह कह देना असगत न होगा कि अब तक काव्य मे शृ गारिता, राधाकृष्ण मिलन, दूतिवाक्य, सयोग वियोग, उपालम्ब, रूप वर्णन और काम कल्पनाएँ तथा उहात्मक वर्णन वहुतायत से प्राप्त होने लगे। यह इनकी चरण सीमा थी। जिस प्रकार से अग्रेजी मे शेक्सपीयर के नाटको के बाद स्वतन्त्रता वादी नाटक अति स्वतन्त्र होगये जिन्हे वनजोनसन और क्रोमवैल द्वारा रोका गया। उसी प्रकार से हिन्दी–काव्यशास्त्र को भी पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी और तत्कालीन राजनीतिक परिस्तितियो ने नई और शुद्ध सात्विक राह बताने का सफल प्रयास किया। अग्रेजी आलोचना सिद्धान्तो ने इसमे सहयोग दिया।

द्वितीय प्रकरण

भारतेन्दुकाल 'क' भाग

(सम्वत् १९०० से १९५७)

सामान्य परिचय—

रीतिकाल तक हिन्दी काव्यशास्त्र सस्कृत नियमो की ओर दृष्टि लगाये हुए था। कभी तो वह सीधा सस्कृत आचार्यों की सामिग्री ग्रहण कर लेता था और कभी अपने पूर्ववर्ती भाषा लेखको के आदर्श को स्वीकार कर लेता था। कही-कही वह एकाधिक लेखको के सिद्धान्तो को मिला कर अथवा उनमे अपनी बुद्धि, सूज और अपने ज्ञान के आधार पर अथवा कभी–कभी भूल से भी कुछ तथाकथित नवीन और मौलिक से सिद्धान्तो का प्रतिपादन भी कर लेता था। कालान्तर मे इसमे परिवर्तन हुआ—यह हुआ भारतेन्दुकाल में। भारतेन्दु युग मे अग्रेजी प्रभाव प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगा और लेखकों के सामने पहले जहाँ सस्कृत आदर्श ही था वहाँ अब अग्रेजी सिद्धान्त और नवीन प्रणालियो के रूप भी सामने आये। आलोचक परीक्षण कर नूतन काव्य सिद्धान्तो का भी अनुकरण करते तो कभी अनुपयुक्त प्राच्य पृष्ठ भूमिका त्याग भी कर देते। यह हुआ अग्रेजी काव्यशास्त्र के सपर्क से।

अंग्रेजों का आगमन—

इस समय तक अग्रेजो का आगमन हो चुका था और उनके विशाल साम्राज्य की जडे दृढ हो रही थी। ईसाई धर्म प्रचारक अपने कार्य मे दत्तचित्त थे और अग्रेजी भाषा का प्रचार भी होने लगा था। ये सभी कार्य हो रहे थे। इस समय अग्रेजी साहित्य से सपर्क स्थापित हुए अधिक काल व्यतीत नही हुआ था। यातायात के साधनो का भी सुधार हो रहा था। फिर भी यूरोप जातियाँ भारतीय साहित्य को प्रभावित कर रही थी। उनके मनोरजन के साधन भारतीय जनजीवन पर प्रभाव डाल रहे थे और भारतीय लोग भी उनके ही समान नाटको की आलोचना

की ओर भी बढ रहे थे। अ ग्रेज नाट्य प्रेमी सज्जनो ने इसमे सहयोग दिया।[1] अब तक भारतीय भी उसी दृष्टिकोण से साहित्य को परखने का प्रयत्न करने लगे।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत मे प्रथम अ ग्रेज के आगमन के बारे मे मतभेद हो सकता है किन्तु यह अधिकाशत सर्व मम्मत का ही है कि टोमस स्टीफन्स नामक प्रथम अ ग्रेज सोलहवी शताब्दी मे भारत मे आकर वस गया।[2] इसके वाद फिच तथा न्यूबरी भारत मे आये।[3] जौन मिडन नामक अ ग्रेज मन् १५९९ मे अकवर के दरबार मे गया। ये यात्राएँ केवल कुछ व्यक्तियो तक ही सीमित थी। लन्दन मे ३१ दिसम्बर सन् १६०० मे महारानी एलिजिवेथ ने भारत मे व्यावसायिक कम्पनी खोलने की राजाज्ञा प्रसारित की। सन् १६१२ तक कम्पनी के कर्मचारियो की अलग-अलग नौ यात्राये हुई। इस काल तक को यात्राओ का उद्देश्य भारत मे धन एकत्रित कर विलायत ले जाना और अ ग्रेजो को भारतियो की दृष्टि मे अन्य विदेशियो से शक्तिशाली सिद्ध करना था। उधर कम्पनी के हिस्सेदार अधिक धनोपार्जन के इच्छुक थे। इ ग्लैड की सामान्य जनता का ध्यान भी भारतीय वैभव की और आर्कष्ट हो चुका था। अतएव सन् १६५८ मे एक व्यापारिक कम्पनी की नीव डाली गई। सन् १७०२ मे युक्त दोनो कम्पनियो का एकीकरण कर दिया गया। इस सयुक्त कम्पनी ने भारतीय जनजीवन से विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसने अ ग्रेजी भाषा का प्रचार न करके प्राच्य भाषाओ को समुन्नत बनाने की नीति को अपनाया।

अंग्रजों का शासन और उनकी भाषा सम्बन्धी नीति—

लोर्ड हेस्टिंग्स ने सन् १७८१ मे मुस्लीम मदद से नीव डाली और सन् १७८४ मे अरेबिक सस्था की स्थापना की। जब चार मई सन् १८०० मे फोर्ट वित्यम कालेज की स्थापना हुई तब उसका उद्देश्य अ ग्रेजो को भारतीय भाषाओ का ज्ञान प्रदान करना था। सन् १८१३ के अधिनियम के अनुसार शिक्षा पद्धति पर

१—विकासात्मक अध्ययन पृष्ठ १८,२०,८२,८३
२—क-श्री नेत्र पाण्डे भारत वर्ष का इतिहास पृष्ठ १०७
ख—रामधारीसिंह दिनकर—सस्कृत के चार अध्याय पृष्ठ ४०५
३— १५८३ में।

एक लाख रुपया व्यय करना निश्चित किया गया। वह धन सन् १८२३ मे ही व्यय किया जा सका। सन् १८२३ मे जन शिक्षा सभा (कमेटी ओफ पब्लिक इन्सस्ट्रक्शन्स) की स्थापना हुई। लोर्ड मेकाले व राजा राममोहन राय आदि ने अ ग्रेजी की शिक्षा का माध्यम मानने पर बल दिया।[1] डॉ० विल्सन ने फारसी, अरबी और सस्कृत को उन्नत बनाने के असफल प्रयास की।

मेकाले प्रदत्त अ ग्रेजी शिक्षा प्रसार के दृष्टिकोण को प्राप्त करक भी अ ग्रेज अपनी भाषा का सफल प्रचार नही कर पा रहे थे। उन्हे रेल, तार, डाक आदि की व्यवस्था करनी थी। सन् १८५७ से पूर्व भारतवर्ष मे विश्वविद्यालयो की स्थापना भी सभव नही हो सकी। सन् १८५७ से पूर्व तक के कम्पनी के राज्य को स्वेच्छाचारी और निरकुशता का राज्य कहा जाता है।[2] यह भी कहा जाता है कि अभी तक अ ग्रेजो ने भारतियो की दुर्दशा की और उन्हे सभी अच्छी वस्तुओ से वचित रखा। यही नही उनकी जाति व उनके धर्म को भी अपमानित किया।[3] फलत तथा किथत सिपाही विद्रोह अथवा भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम सग्राम का सूत्र पात्र हुआ।

स्वतन्त्रता-संग्राम और अंग्रजों की नीति—

स्वतन्त्रता सग्राम के कारण महारानी विक्टोरिया ने शासन को बागडोर अपने हाथ मे ले ली और भारतियो के साथ सहिष्णुता के व्यवहार की घोषणा की। उसने धर्म निरपेक्षनीति को अपनाया तभी से अ ग्रेजी राज्य की एक निश्चित नीति बन पाई। यद्यपि राज्य सत्ताने तो धर्म निरपेक्ष नीति की घोषणा की, किन्तु ईसाई धर्म प्रचारक पादिरी अवश्य ही अपने धर्म प्रसार कार्य मे लगे हुए थे। ईसाई प्रचारक इस कार्य मे दत्तचित्त थे।

१—लोर्ड मेकाले ने वष्टिक के शासन काल में भारतियों को अंग्रेजी शिक्षा देने का प्रवल समर्थन किया।—मिनिट २३ फरवरी १८३५ पारा २६। राजा राम मोहन राय ने भी अ ग्रेजी शिक्षा के लिये सन् १८२३ में लोड एमहर से निवेदन किया—वेस्टन इनफ्लुयेन्स इन बगाली लिट्रेचर पृष्ठ ४६।

२—श्री नेत्र पाण्डे-भारत वर्ष का इतिहास पृष्ठ २५, ६५ एवं १७५से २००

३—वही ४३३

ईसाई प्रचारक और हिन्दी—

वैसे तो ईसाई प्रचारक बहुत प्राचीन काल से ही भारत मे आते रहे है। ईसा के अन्यतम शिष्य सैंट टोमस का सन् ६५ मे ही भारत मे आना कहा जाता है—ये प्रचार भारत वर्ष मे डच, पुर्तगालियो और फ्रासीसियो के राज्य मे भी चलते रहे।[1] यह कार्य अग्रेजी शासन काल मे तीव्रता धारण करने लगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक अधिकारी—क्लाइव और उनके सहयोगी तो इनके विरुद्ध नही थे परन्तु इनके शीघ्र ही बाद कार्न वालिस जैसे शासक इन्हे हथोत्साहित करने लगे।[2]

कालान्तर मे ये निर्वासित से कर दिये गये। अन्त मे सन् १८३३ मे इगलैण्ड की ससद मे विल्बर फोर्स नामक अधिनियम द्वारा इनकी रक्षा की। इन धर्म प्रचारको का उद्देश्य धर्म प्रचार करना ही था जिसमे उन्होने प्रेम, समाज सुधार और साक्षरता से सहयोग लिया। फिर भी यह प्रचार काव्यशास्त्र और आलोचना मे प्रत्यक्ष रूप से सहयोग नही दे सके। इगलैण्ड मे बहुत पहले ही नाटक और अन्य साहित्य विधाये पादरियो से सरक्षण प्राप्त करने मे असफल हो चुकी थी।[3] वे प्रचारक जो कि इन्द्रीय सुखोपभोग के विरुद्ध थे।[4] आलोचना को शरण न दे सके—सम्भवत. उन्हे इगलैण्ड मे घटित दसवी—बारहवी शताब्दियो का ध्यान था जिसमे धर्म सहायक स्वरूप गृहीत साहित्यिक विधाओ ने लौकिक आनन्द प्रोत्साहन देकर अधार्मिक रूप धारण कर लिया था।[5]

अनेक राजनीतिक परिस्थितियो मे उलझ जाने से कम्पनी के लोग साहित्य के प्रचार और प्रसार की ओर अधिक ध्यान नही दे पाये थे। फिर भी भारत

१—हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ १२४

२—हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ १२४

३—डॉ० विलियम केरे भारत में आये और उन्होंने मालावार में चर्च की स्थापना की। कम्पनी ने बाधा डाली, फलत उन्हें सी रामपुर जाना पड़ा।

४—दी चीफ ब्रिटिश ड्रामेटिस्ट्स भूमिका एवम् पृष्ठ १२,१४,२४

५—वैस्टर्न इनफुलेन्स इन बगाली लिट्रेचर—पृष्ठ ४७

स्थित कई सहृदय एवम् साहित्य प्रेमी अंग्रेजी साहित्य की ओर भारतियो का ध्यान आकर्षित कर रहे थे।[1] यहा पर अंग्रेजी नाटको के अभिनय होते जो भारतियो को उक्त विद्या की ओर आकर्षित करते। वहा वे साधारण रूप से नाट्यालोचन मे भाग भी लेते। यह आलोचना बहुत ही प्रारम्भिक रूप की कही जा सकती है। फिर भी इतना तो तथ्य ही है कि इससे हिन्दी आलोचको को दुखान्त नाटको को स्वीकृति देने में सहायता मिली। १९वी शताब्दी मे भारतीय नाटको की आलोचना करने वाले हिन्दी आलोचको ने वियोगात नाटको को स्वीकार किया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सन् १८५७ मे कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयो की स्थापना हुई। फलत भारतीय, अंग्रेज प्राध्यापको के निकट सम्पर्क मे आये। इन अंग्रेज विद्वानो ने हिन्दुस्तानियो को सस्कृत साहित्य की ओर आकर्षित किया। क्वीन्स कालेज के पिंकाट साहब ने राजा लक्ष्मणसिंह को शकुन्तला के अनुवाद की प्रेरणा दी। उन्होने नाटक भूमिका लिखकर हिन्दी आलोचकों को सस्कृत की ओर आकर्षित किया और उन्हे नाटक की स्वतन्त्र आलोचना लिखने का भी सम्भवत: निर्देश किया। पिंकाट साहब अन्य साहित्यकारो को भी पत्रो द्वारा प्रोत्साहित किया करते थे।[2,3] सर बिलियम जौन्स के शकुन्तला के अंग्रेजी अनुवाद मे भी भारतीयो को अपने साहित्य को परखने का साहस प्रदान किया। इससे आलोचक और नाटककार हमारे साहित्य को महतता प्रदान करने लगे।

शनै शनैः भारत मे अंग्रेजी राज्य की जडें मजबूत हुई। उनकी सभ्यता और सस्कृति से हम अछूते नही रह सके। साहित्य मे अंग्रेजी राज्य की सराहना उसके प्रति रोष, उससे छुटकारा पाने के प्रयत्न और स्वदेश प्रेम आदि को स्थान दिया गया। आलोचको ने अंग्रेजी से आई हुई नवीन साहित्यक पद्धतियो को अपनाया।[4] वियोगात नाटक और उपन्यास उदाहरण स्वरूप पढे जा सकते है।

१—वन एक्ट प्लैज ओफ टु डे–पृष्ठ २६९,३६

२—देखिये शकुन्तला नाटक की भूमिका

३—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ४४३

४—नाटकों पर अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से देखिये हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन पृष्ठ १८ से २१

एक शब्द मे हम कह सकते है कि हमारी आलोचना पद्धति इस प्रभाव से एक नवीन दिशा मे बढने लगी। हिन्दी की प्रारम्भ मे ही यह प्रवृत्ति रही है कि वह देशकाल अनुसार शास्त्रीय तत्वो को ग्रहण करती हैं।

अतएव इस युग मे हिन्दी ने परीक्षण द्वारा सस्कृत नियमो की पृष्ठ भूमि अग्रेजी आलोचना के नियमो को अपनाना प्रारम्भ किया। समालोचक कवि और भावक कभी किसी पद्धति को अपनाते तो कभी किसी को। कभी-कभी वे इनके समन्वय का भी प्रयत्न करते। इस प्रकार इस युग मे हिन्दी काव्य शास्त्र न्यूनाविक से दोनो का ही सहारा लेता हुआ आगे बढता हैं। इस युग की आलोचना की विभिन्न प्रवृतिया हमारे कथन की साक्षी है।

संस्कृत काव्यशास्त्र के परिपार्श्व में—

इस युग मे भी काव्य शास्त्रीय सैधान्तिक ग्रन्थो का निर्माण हो रहा था। शास्त्रकार सस्कृत के काव्यशास्त्रो की छाया मे भाषा मे ग्रथ प्रतिपादित कर रहे थे। यथा कवि कल्पद्रुम,[1] रसिक विनोद व नक्षिक-ग्वाल विरचित और इनके ही अलकार भ्रम भजन आदि देखे जा सकते है। गगाभरण,[2] रामचन्द्र भूषण[3] एवम् वनिता भूषण[4] ग्रथ भी हमारे कथन की पुष्टी करते हैं। ये सस्कृत के साहित्यदर्पण काव्यप्रकाश, रसगगाधर, चन्द्रालोक और कुवलियानन्द पद्धति ग्रथो से प्रभावित प्रतीत होते है। उस समय लोगो की सस्कृत भाषा मे रुचि भी थी—"पिताजी का कहना था कि मनुष्य को उस लोक के लिये सस्कृत पढनी चाहिये और इस लोक के लिये उर्दू।[5] इसलिये लोग सस्कृत पढ़ते थे और अन्य हिन्दी की धार्मिक पुस्तको पर टीकाये भी लिखते थे।

१—रचनाकाल १६०१ लेखक रामदास

२—रचनाकाल स० १६३५ लेखक नन्दकिशोर मिश्र

३—रचनाकाल १६४७ संवत लेखक लच्छीराम

४—गुलाबसिंह द्वारा सवत १६४६ में भी रचित

५—बृजमोहन व्यास—बालकृष्ण भट्ट—पृष्ठ १५—२१

टीका साहित्य—

आलोच्य काल मे सस्कृत प्रणाली के अनुकूल टीकाओ की रचनाऐ हुई । मानसीनन्दन कृत मानव शकावली, शिवलाल द्वारा सम्पादित मानव मयक तथा शिवरामसिह वी रचित तत्त्व प्रबोधिनी इसके प्रमाण है । इनमे रस व भारतीय शास्त्रीय तत्वो ने प्रमुखता प्राप्त की । शका समाधानावली मे पुरातन पद्धति का अनुशरण किया गया । मानव मयक तो पद्य वध टीका है जिसे स्पष्ट करने के लिये प्राचीन प्राणाली के अनुकूल इन्द्रनाथ को तिलक लिखना पडा । इन ग्रथो मे शास्त्रीय रस को प्रधानता दी गई । यही क्या प्राचीन लेखक और शास्त्रीय तत्व तो पत्र पत्रिकाओ मे भी स्थान प्राप्त करते थे ।

हिन्दी प्रदीप मे प्राचीन लेखको का एक स्थाई स्थम्भ था । जिनमे शास्त्रीय तत्त्वो की दृष्ट से उनकी आलोचना की जाती थी अर्थात आलोचना करते समय रस अलकार ध्वनि और बक्रोक्ति का सहारा लिया जाता था । कविवचनसुधा मे भी इसी प्रकार की आलोचनाएँ प्राप्त होती थी । उदाहरण के लिये लेखक ने स्थाई भाव रस, आलम्बन और उद्धीपन का विवेचन करते हुए लिखा गया था— "स्थाई उसे कहते है जो मूल रूप से रस मे रहे । इस विभत्स का स्थाई धन है । रसो मे आलम्बन और उद्धिपन्न भी होते है, आलम्वन मे जो रस का आलम्बन होता हो, वैसे ही उद्दीपन्न वह जो रस जगावे ·······हमारे इस परम पवित्र की जो गलिया हैं वह उद्दीपन और आलम्बन दोनो ही है ।" इस प्रकार उक्त आलोचनाओ मे हमे शास्त्रीय तत्त्व प्राप्त होते है ।

शास्त्रीय तत्त्व—

भारतेन्दु काल मे साहित्य की आत्मा रस को महत्व प्रदान किया गया था । यद्यपि यह तथ्य है कि प्रयोगात्मक दृष्टि से इस पर इतना बल नही दिया जाता था किन्तु आलोचक इसका स्मरण अवश्य ही कर लेते थे । भारतेन्दु ने नाटक मे रस की महतता को स्वीकार किया और रूपक मे वस्तु और नेता के महत्व को भी घोषित किया । वे अलकारो और ध्वनि का भी यदा कदा स्मरण कर लेते थे ।[1]

१—भारतेन्दु कृत नाटक—

इस समय तक सस्कृत शास्त्रीय शब्दो को आलोचक अपनाये हुए थे और इसी हेतु कविता के लिये भी नाटक शब्द का और नाटक को कविता के रूप मे लिख देने का प्रयोग करते थे।—तो जानना चाहिये कि यदि सयोगिता स्वयम्बर पर नाटक लिखा गया तो कोई दृश्य स्वयम्बर का न रखना मानो इस कविता का नाश कर डालना है। क्योकि यही इसमे बर्णनीय विषय है।[1] इसी भाति अग्रेजी से आये हुए शीन शब्द को वे दृश्य न कह कर गर्भांग कहते थे। कहने का तात्पर्य यह कि वे सस्कृत शास्त्र का आधार ग्रहण कर लेते थे।

आधार—

आलोचक सस्कृत ग्रथो को अपना आधार मानते थे और अधिकाशत: उनका समुचित आदर भी करते थे. वे यत्र–तत्र इसका स्मरण कर अत्यन्त श्रद्धा प्रकट करते थे। कभी–कभी तो कविता तक मे अंग्रेजी आकर्षण के प्रति रोष प्रकट किया जाता था।

> **"पहिर कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर।**
> **भालू चरबी चरचि लवेन्डर की लगाई फिर॥**
> **नई विदेशी विद्या ही को मानत सर्बस।**
> **सस्कृत के मृदु वचन लागत इनको अति कर्कश॥[2]"**

इस प्रकार हम कह सकते है कि हिन्दी का आलोचक सस्कृत काव्यशास्त्र का आधार ग्रहण किये हुए था। आलोचना मे शास्त्रीय तत्वो को अपनाया जाता था। काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो का निर्माण भी होता था और टीकाओ की रचनाएँ भी। फिर भी समालोचक अग्रेजी आलोचना के प्रति भी जागरूक थे।

अंग्रेजी काव्यशास्त्र के परपार्श्व में—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस युग मे अंग्रेजी आलोचना का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगा था आलोचना के मानदण्ड, आदर्श और

१—प्रेम धन–सयोगिता स्वयबर की समीक्षा। सस्कृत में काव्य नाटक में सम्मिलित होता है।—काव्येसु नाटकम् रम्यम इसका उदाहरण है। अतएव आलोचक ने नाटक के अर्थ में कविता का प्रयोग किया है।

२—भारत धर्म

पत्रिकाओ मे व्यग्य को बढावा मिला। इसमे अग्रेजी की छाया पाई जाती है। सयोगवश यह पत्रकार प्रतिद्वन्दता इगलैण्ड मे सौलवी शताब्दी मे पल्फेटियर्स के सघर्ष से तुलनीय है।[1] इस सघर्ष मे जो एक दूसरे पर कटु व्यग्य करने की प्रवृत्ति है वह अग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से विकशित हुई प्रतीत हुई है। पाश्चात्य साहित्य मे व्यग्य को प्रारम्भ से ही स्थान दिया जाता रहा है। वहा सुखात नाटको मे इसे भलीमाति देखा जा सकता है। हिन्दी के प्रहसन और यह आलोचना शैली भी इनसे अप्रभावित नही रह सकी। इस सघर्ष मे भाषा को सुधार कर गद्य के रूप को स्थिर करने की लालसा थी। अग्रेजी के गद्य साहित्य ने सम्भवत· हमारे आलोचको को ऐसी ही प्रेरणा दी होगी। यह तो तथ्य ही है कि हिन्दी का गद्य साहित्य अग्रेजी के सम्पर्क से विकसित हुआ था और अग्रेजी आलोचना के समान अब गद्य मे आलोचना की जाने लगी। पहले जहा कविता मे काव्य शास्त्रीय तत्वों का निरूपण होता था वहा अब अग्रेजी आलोचना के समान गद्यात्मक आलोचनाएँ प्राप्त होने लगी। साहित्यकार पत्रो द्वारा नवीन विद्याओ के–गद्य विद्याओ के, निर्माण की प्रेरणा देने लगे। भारतेन्दु बाबू ने अपने मित्र पण्डित सन्तोषसिंह को लिखा—"जैसे भाषा मे अब कुछ नाटक बनाये गये हैं अब तक उपन्यास नही बने। आप या हमारे पत्र के योग्य सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ व गोस्वामी राधाचरणजी कोई भी उपन्यास लिखे तो उत्तम होगा।"[2] इस प्रकार नवीन विद्या के प्रादुर्भाव विषय प्रतिपादन की शैली मे नवीनता का समावेश किया जाने लगा।—"पहले तो पढने वाले इस पुस्तक मे सौदागर की दुकान का हाल पढके चकरावेंगे।········ इनमे मदनमोहन कौन, वृजकिशोर कौन········· इनका स्वभाव कैसा········· परस्पर सम्बन्ध कैसा········· हर एक की हालत क्या है······ यहा किस समय किस लिये इकट्ठे हुए हैं। यह बातें पहले कुछ भी नही बताई गई। इस प्रकार लाला श्रीनिवास ने परीक्षा गुरू मे अग्रेजी से आये हुए तत्व जिज्ञासा को अपनाया और उनके ही समान अपनी पुस्तक की भूमिका मे अपने उपन्यास पर प्रकाश डाला। इस प्रकार आलोचना प्रति पादन की शैली मे अन्तर आया।

१—डॉ० सेंट्स बरी–ऐलिजाबैथन लिट्रेचर–अध्याय १,२

२—डॉ० रामविलास शर्मा–भारतेन्दु युग–पृष्ठ ६३

सिद्धान्त प्रतिपादन शैली—

सस्कृत साहित्य मे, अलकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति और औचित्य सम्प्रदाय थे। उनके बारे मे आलोचना की जाती थी अथवा सिद्धान्त प्रतिपादन के समय उनका ध्यान रखा जाता था। रीति काल तक रस, अलकार और ध्वनि किसी न किसी रूप मे विद्यमान रहे। अब तो अग्रेजी प्रभाव के कारण ये सिद्धान्त भुला दिये गये। इनकी उपेक्षा सी की गई। यहा तक कि शास्त्रीय तत्वो को ध्यान मे रख कर भी उन्हे अनिवार्य नही माना गया। अब यदि अग्रेजी मे भारतीय शास्त्रीय पद्धति का समानार्थी सिद्धान्त या शब्द मिल जाता तो सस्कृत शैली को अपना लिया जाता अन्यथा बहुधा छोड दिया जाता था।

शास्त्रीय शब्द और अंग्रेजी—

इस काल मे शास्त्रीय शब्दो के अग्रेजी के रूपो और पर्यायवाची शब्दो को प्राप्त करने के प्रयत्न किये गये। अग्रेजी के अलकारो की सस्कृत अलकारो के स्थान पर रखा जाने लगा। साहित्य मे भी उन्ही अलकारो को महतता मिली जिन्होंने अपना रूप अग्रेजी मे भी पाया था। पत्र पत्रिकाओ मे अग्रेजी के शब्दो और वाक्यो को स्थान दिया जाने लगा।

पत्र-पत्रिकाएँ—

अग्रेजी के सम्मान हिन्दी मे भी पत्र-पत्रिकाओ का प्रणयन होने लगा। ब्राह्मण, कवि वचन सुधा, हरीशचन्द्र मैगजीन, हिन्दुस्तान, सारसुधानिधी और भारत मित्र प्रभृति पत्र निकलने लगे। जिनमे व्यवहारिक आलोचना को स्थान दिया जाने लगा। पत्र-पत्रिकाओ मे पुस्तक समीक्षा ने भी स्थान प्राप्त कर लिया।[1] इसकी पद्धति से तत्कालीन आलोचको मे क्षोभ भी था। वे कहते थे,—"हमारे देश में यह प्राचीन समय मे जैसी होनी चाहिये वैसी न थी। और अर्वाचीन काल मे भी लुप्त प्राय: हो गई थी। पर अभी दस पन्द्रह वर्षो मे ही अग्रेजी ग्रन्थ कृताओ

१—डॉ० रविन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव। पृष्ठ १४८ एवम् डॉ० विश्वनाथ मिश्र हिन्दी भाषा और साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव। पृष्ठ १३०-१३१

के परिचय से केवल कही-कही इसका प्रारम्भ हो चला है।······ 'विलायत मे मासिक और त्रिमासिक जितने पत्र हमारे दृष्टि मे आते है उन सब मे यह प्रकरण भलीभाति सम्पादित किया हुआ दीख पडता है।[1] इन पत्र पत्रिकाओ मे से अधिकाश की दशा अच्छी नही थी।[2]

प्रयोगात्मक आलोचना—

अग्रेजी आलोचना के परिपार्श्व मे हिन्दी समालोचना में प्रयोगात्मक आलोचनाओ की प्रवृत्ति विकसित हुई। इसका प्रारम्भ हिन्दी मे अग्रेजी के समान पुस्तक समालोचना (बुक रिव्यु) से हुआ। इनमे अंग्रेजी के गद्य और पाश्चात्य शिक्षा के सम्पर्क और अंग्रेजो के लाये हुए प्रेस ने पूरा-पूरा सहयोग दिया। इन आलोचनाओ मे काम मे लिये जाने वाले सिद्धान्त भी भारतीयता से दूर हट रहे थे। पुस्तक परिचय के रूप मे हिन्दी प्रदीप मे एवम् आनन्द, कादम्बरी मे आलोचनाएँ की जाने लगी। श्री श्रीधर पाठक के गौल्डस्मिथ के अनुवादो के परिचय इसी श्रेणी मे रखे जा सकते हैं। वह लेख लन्दन के ऐलेन्स-इण्डियन मेल सन् १८९० के लेख से प्रभावित प्रतीत होता है।

अंग्रेजों द्वारा आलोचना में सहयोग—

श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के डेजर्टेड विलेज का उजडे ग्राम नाम से अनुवाद किया था। उसकी प्रशसा लन्दन से प्रकाशित इण्डियन मैग्जिन मे जून १८८८ मे की गई। और उसे श्रेष्ठ कविता बताया गया।[3] इसी भाति अलीगढ इस्टीट्युट ने भी अंग्रेजी मे इसकी प्रशंसा प्रस्तुत की। इससे ज्ञात होता है कि अंग्रेजो ने और अग्रेजी मे की गई आलोचना मे हिन्दी आलोचना के विकास मे सहयोग दिया। अग्रेजी मे प्रशसा प्राप्त कर लेने के बाद ही हिन्दी मे कहा गया।

१—डॉ० रविन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव। पृष्ठ १४८ एवम् डॉ० विश्वनाथ मिश्र हिन्दी भाषा और साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव। पृष्ठ १४६

२—बालकृष्ण भट्ट—पृष्ठ १५ सम्पादक बृजमोहन व्यास

१—श्रीधर पाठक—मनोविनोद—३ खण्ड—पृष्ठ ४२

"पाठक जी आँख फेर कर इधर भी देखे ।[१] अब ऊभड़ ग्राम इगलैण्ड मे कही भी नहीं है, उनकी जन्म भूमि हत् भाग्य भारतवर्ष मे सर्वत्र है ।"[२]

इस युग मे समालोचको को साहित्यकार समझा जाने लगा ।[३] यहाँ हम यह कह सकते हैं कि सैद्धान्तिक और शास्त्रीय दृष्टि से तो हिन्दी रीति काल में बहुत विवेचन हो चुका था परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से कृति विशेष या लेखक विशेष की टीका से भिन्न आलोचना अब प्राप्त होने लगी । इस प्रकार से साहित्यक प्रस्फुटन मे निश्चित रूपेण अग्रेजी की आलोचना पद्धति और अग्रेजी पत्रिकाओ के लेखको का हाथ था । अग्रेजी की आलोचना पद्धति की ओर साहित्यकार आकृष्ट हो रहे थे । और उसके अनुसार साहित्य सर्जन मे लीन थे । फलत· रत्नाकरजी ने पोप के ऐसे ओन क्रिटीसिज्म का पद्य-बध अनुवाद किया गया । यह सयोग ही था कि इसी वर्ष नागरिक प्रचारिणी ।

नागरिक प्रचारिणी सभा—

सन् १८९७ मे इस पत्रिका के प्रथम अक मे ही गगाप्रसाद अग्नीहोत्री ने समालोचना शीर्षक निबन्ध लिखा, जिसमें हिन्दी आलोचना पर अग्रेजी प्रभाव के प्रत्यक्षीकरण का प्रयास किया गया था । अग्नीहोत्रीजी ने यह अनुभव किया था कि अग्रेजी पढ़े लिखे नवयुवको को इसमे सहयोग देना चाहिये । इस सभा मे हिन्दी के उत्थान मे अपूर्व सहयोग दिया । १९०३ मे उसके कार्य के अवलोकनार्थ जो समिति बनाई गई थी उसका निम्नाकित निर्णय हमारे कथन की पुष्टि करता है —

(क) पारिभाषिक शब्दो को चुनने के लिये उपयुक्त हिन्दी शब्दो को पहले स्थान दिया जाय ।

(ख) इन शब्दो के अभाव मे मराठी, गुजराती, बगला और उर्दू के उपयुक्त शब्द ग्रहण किये जांय ।

१—श्रीधर पाठक-मनोविनोद-३ खण्ड पृष्ठ ५०,५७

२—सुदर्शन-फरवरी-पृष्ठ १९०

३—डॉ० वैकण्ट शर्मा-आधुनिक हिन्दी में समालोचना का विकास पृष्ठ १४८-४९

(ग) इनके अभाव मे पहले सस्कृत के शब्द ग्रहण किये जाँय, तब अंग्रेजी के शब्द रखे जाय और अन्त मे सस्कृत के आधार पर नये शब्द निर्माण किये जाय ।[1]

इससे ज्ञात होता है कि उस समय मे पारिभाषिक शब्द बनाते समय मे अग्रेजी के शब्दो को सबसे बाद मे स्थान दिया जाता था। इनके अभाव मे आधार भारतीय भाषाओ का ही रखने का प्रयास किया जाता था। फिर भी यह मानना ही होगा कि अंग्रेजी के शब्द हिन्दी मे अपनाये जा रहे थे।

अंग्रेजो द्वारा सन्चालित विद्यालयो की पाठ्य पुस्तकों ने भी हिन्दी आलोचना को बल प्रदान किया। पाठ्य पुस्तको के द्वारा एक विशिष्ठ शैली का निर्माण हुआ। इसने आलोचनात्म प्रवृति को बल प्रदान किया।

अंग्रेजी आलोचना ने भारतीय कवियो को भी प्रकाश मे लाने की प्रेरणा दी। जिस प्रकार से अंग्रेजी "बुक रिव्यु" से हिन्दी पुस्तकालोचन प्रभावित था उसी भाति कवियो की जीवनियो पर भी निम्नाकित अंग्रेजी प्रभाव की सभावना है।

कवियों की जीवनियाँ—

(क) अंग्रेजो द्वारा संस्कृत का अध्ययन महत्व प्राप्त कर रहा था। फलत. सस्कृत विद्वानो की जीवनियो को प्रकाश मे लाने के प्रयत्न किये गये।

(ख) डॉ० जाहन्सन कृत लाइव्ज ओफ पोइट्स जैसे ग्रन्थ प्रेरणास्पद रहे और उनमे जीवनी के आधार पर आलोचना की शैली ने हिन्दी आलोचको को ऐसी ही आलोचना करने की प्रेरणा दी। जो लोग अंग्रेजी पढ़े लिखे नही थे उन्होने हिन्दी लेखको की शैली से, जो अग्रेजी से प्रभावित थी प्रेरणा ली और हिन्दी की श्री वृद्धि की।

मान दण्ड मे अन्तर—

अब साहित्यक विधाएँ नवीन रूप धारण करने लगी। अतएव उनकी आलोचनाएँ भी नूतन दृष्टिकोण लिये हुए थी। यथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अंग्रेजी

१—डॉ० श्यामसुन्दर दास, मेरी आत्म कहानी—पृष्ठ ४५ से ५५

नाट्य विद्याओ को अपनाया। उन्होने अपने "नाटक" मे इसका उल्लेख किया है। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी का काव्यशास्त्र अ ग्रेजी से सम्बल ग्रहण कर आगे बढ रहा था। अधिक क्या कहे इस युग मे प्राप्त काव्य शास्त्र ग्रन्थ भी–रीति ग्रन्थ भी अ ग्रेजी प्रभाव से विमुख नही हो सके। लच्छीराम और गुलाबसिह पद्य के स्थान पर गद्य मे टीकाये प्रदान की। लच्छीराम इसके अग्रगण्य कहे जा सकते है। साथ ही इसके पथ मे भी यत्र–तत्र खडी बोली को स्थान दिया गया है।[१] इससे ज्ञात होता है कि अब प्राचीन परिपाटी के लेखक भी अ ग्रेजी आलोचना से प्रभावित हो रहे थे। जब साहित्य का उद्देश्य भी रीतिकाल के उद्देश्य के समान मनोरजन या श्रृंगारिकता और लक्षरण ग्रन्थ प्रणयन न रहकर विलासिता के विरोध मे मगल और यथार्थ का सुष्ठु रुख माना जाने लगा। साहित्य जन साधारण की वस्तु बनने लगा। एतवर्थ चमत्कार का स्थान रागात्मिक तत्व ने ले लिया जिसमे वौधिकता का आग्रह भी था।[२] अतएव आलोचना मे भी चमत्कार का वास और बौधिकता का आग्रह दिखाई देने लगा। साथ ही अ ग्रेजी साहित्य की प्रमुख प्रवृति व्यग्य भी इस युग मे महतता प्राप्त करने लगी।

आलोचना और अंग्रेजी—

भारतेन्दु काल मे अ ग्रेजी भाषा प्रचलित हो चुकी थी और उसका प्रभाव भी लोगो पर बहुत था। इस निमित्त साहित्यिक पत्रो पर इसका प्रभाव अवश्यम्भावी था हरीशचन्द्र मैग्जीन के नाम मे ही अ ग्रेजी शब्द को स्थान मिला है। उक्त पत्रिका के मुख पृष्ठ पर भी अ ग्रेजी की पक्तिया प्राप्त हुआ करती थी।[३]

इसी भाति विभिन्न साहित्यिक सभाओ के मन्त्री, सैक्रेट्रीज कहलाते थे।[४] और जो प्रशसा पत्र कवियो को दिये जाते थे जो उनकी कविता के एप्रीसियेशन को प्रकट करते थे वे अ ग्रेजी के किसी प्रशसा पत्र की अनूदित प्रतिलिपि के समान दिखाई देते थे।[५] इसी प्रकार से भूमिकाओ के वाक्यो को अ ग्रेज लेखको के समान

१—डॉ० भागीरथ मिश्र–हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १७२ से १७८

२—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र–हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास-पृष्ठ२३५

३—कवि वचन सुधा–बौल्युम २,७,९–आश्वन कृष्ण पक्ष सवत, १९२७

४—वही–पृष्ठ १६

५—क–डॉ० विश्वनाथ प्रसाद हिन्दी भाषा और साहित्य पर अ ग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ११४–१५

कृति की आलोचना या आत्मालोचन के प्रथम प्रयास कहे जा सकते है। जिनमे अ ग्रेजी शब्दो को मुक्तहस्त स्थान दिया जाता था। किशोरीलाल गोस्वामी की अ गूठी का नगीना की भूमिका इसकी साक्षी है। वहाँ लिखा गया है—"एक सज्जन हमारे घर पर काशी मे पधारे ...... उन्होने ...... अपने घर की सच्ची कहानी कही .... 'यही इसका आधार है।[1],[2]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस युग की आलोचनात्मक कृतियो मे लेक्चर, स्पीच, लिट्रेचर, क्रीटिसीज्म, क्रीटिक और नौबल आदि शब्दो के प्रयोग किये जाते थे।[3] कान्ताप्रसाद गुरु का हिन्दी व्याकरण डॉ० गिल क्राइस्टफोर्ट बिलियम के सचालक और हिन्दी अ ग्रेजी के अध्यापक की व्याकरण की सेवाओ का उल्लेख करता है।[4]

अंग्रेजी के विराम चिन्ह—

हिन्दी गद्य और आलोचना के विकास मे अ ग्रेजी शब्दो के साथ आये हुए विराम चिन्हो ने भी बहुत सहयोग दिया है। लाला श्रीनिवास दास ने अपने उपन्यास परीक्षा गुरु की भूमिका मे उन पर अपनी अभिव्यक्ति प्रकट की। जिससे इनकी आलोचनात्मक सम्मति कहा जा सकता है। प्रेम सागर और नासिकेतोपाख्यान मे इन विराम चिन्हो को महत्व पूर्ण स्थान दिया गया। इनके कारण भावो की अभिव्यक्ति मे सहायता मिली जिससे हिन्दी आलोचना को बल मिला। हिन्दी के अनुसधान और इतिहास ने भी अ ग्रेजी से बहुत कुछ ग्रहण किया है।

अनुसन्धान और इतिहास—

जब अ ग्रेज लेखको द्वारा हिन्दी साहित्य को महत्ता दी जाने लगी और ग्रियर्सन ने हिन्दी का इतिहास लिखा—तब भारतीय विद्वान भी इस ओर द्रुततर

१—भूमिका-पृष्ठ १,२

२—डॉ० भगवत् स्वरूप मिश्र-हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास-पृष्ठ १२०, १३२

३—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ १४१ से १६०

४—पृष्ठ-६ सस्करण १६२७

गति से बढने लगे। एफ० एस० क्रूसो ने रामायण औफ तुलसीदास मे विस्तृत तुलनात्मक आलोचना के सिद्धान्तो को प्रकट किया। ऐसा ही कार्य नागरिक प्रचारिणी सभा द्वारा किया जाने लगा। अग्रेज विद्वानो द्वारा भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को भी बल मिला। गासी दी तासी ने भी इतिहास ग्रन्थ लिखा—तात्पर्य यह है कि पाश्चात्य और विदेशी विद्वानो ने हिन्दी आलोचना को बल प्रदान किया। इससे हमारी तर्क शक्ति बढी और टीकाओ की पद्धति मे भी अन्तर आ गया। अब टीकाओ के स्थान पर प्रयोगात्मक आलोचनाएँ सामने आई। इन टीकाओ मे भूमिकाएँ भी स्थान प्राप्त करने लगी जो अग्रेजी आलोचनो के अनुकूल थी।

एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ सस्कृत काव्य शास्त्र मे भरत कृत्य नाट्य शास्त्र प्रथम प्राप्य प्रमाणिक और प्रौढ रचना मानी जाती है उसी भाँति हिन्दी मे भारतेन्दु युग मे भारतेन्दु कृत नाटक आलोचनात्मक प्रौढ निबन्ध दृष्टिगोचर होता है। साथ मे प्रयोगात्मक, आलोचनात्मक निबन्धो मे भी नाटको की आलोचना प्रमुखता रखती है। सयोगिता स्वयम्बर की आलोचना इसका प्रमाण है। यही क्यो, प्रेम घनजी की आलोचना का सूत्र पात भी दृश्य रूपक या नाटक के प्रकाशन से ही हुआ था।[1] पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने युग के बुक रीव्यु के प्रारम्भ का सूत्र पात भी सयोगिता स्वयम्बर की आलोचना से किया। उन्होने रणधीर और प्रेम मोहिनी तथा चन्द्रसैन और गुरू गोवरधनदास के अभियन की आलोचना अपने लेखों मे की।

निबन्ध और आलोचना—

अग्रेजी प्रभाव के कारण निवन्धो में आलोचना को स्थान दिया जाने लगा। महत्व पूर्ण साहित्यिक विद्या की अवतारणा हुई।[2] आलोचनात्मक निबन्ध सामने आये।

निबन्ध और आलोचना—

इसमे सस्कृत की निर्णयात्मक शैली के साथ अग्रेजी व्यग्य प्रहार करने की शैली भी विद्यमान थी। पण्डित बालकृष्ण भट्ट जैसे मनीशी इन आलोचको मे थे

१—डॉ० वेंकण्ट शर्मा—हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास।

२—डॉ० रवीन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ १५२

जो बुद्धि के ही अनुयायी थे और आलोचना ही जिनका धर्म था।[1] धर्म राजनीति और देश प्रेम भी इसमे ही आ जाते थे।[2] साथ ही वहा भाषा और तत्कालीन परिस्थितियो का भी वर्णन होता था। उदाहरण के लिये निम्नाकित कथन देखिये—"किन्तु एक समय था जब कुटिल आकृति धारण करने वाली वभावर्तिनी, कराला उर्दू के सिवाय और कुछ था ही नही। ... .. वर्तमान हिन्दी साहित्य के जन्म-दाता प्रात स्मरणीय सुगहीत नामधेय बाबू हरिशचन्द्र तथा दो एक उन्ही के समकक्षो को छोड सुलेखको का सर्वथा अभाव था...... निज उन्नति के आगे हिन्दी की उन्नति का उत्साह भग हो गया .. .. पर हम अगीकृत का परिपालन अपने जीवन का उद्देश्यमान प्रति दिन इसे अधिकाधिक अपनाते ही गये।[3]

इससे ज्ञात होता है कि लेखको मे देश प्रेम और राजनीति प्रेम भी उत्पन्न हो रहा था। यहाँ यह कहना सम्यक होगा कि वैसे भारतवासियो के लिये देश प्रेम कोई नवीन बात नही थी। यहाँ तो प्रारम्भ से ही "जननी जन्म भूमिश्च्य स्वर्गादपि, गरयसी की भावना थी। फिर भी तत्कालीन परिस्थियो ने इसमे सहयोग दिया। उस समय देशी शासक अपने व्यक्तिगत स्वार्थो और अह के वश आपस मे लड रहे थे। वे अपने निजि स्वार्थो के सम्मुख देश को भूल चुके थे। यही नही डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का अनुभव सत्य है कि—अपने देश को धन, धान्य से सम्मृद्ध बनाने के लिये दूसरे देशो का शोषण करना, अपने देश के प्रासाद सवारण के लिये दूसरे देश की झोपडियो को जलाना आदि भावनाओ से भी भारतवासी परिचित होने लगा।[4] तत्कालीन निबन्धो मे ये भावनाएँ स्पष्ट रूप से अनुभव की जा सकती है।

१—वृजमोहन व्यास—बालकृष्ण भट्ट पृष्ठ १११

२—वही पृष्ठ १५५—पहले यहां यह देश सोने से फूला-फूला था वहा लोहा भी मवसर नही है—जिस बात पर अशर्फियां लुटती थीं उसमें अब कोयले पर भी मोहर। हिन्दुस्तान दिद्यमान दशा और अ ग्रेजी राज्य की नीति।

३—वही पृष्ठ १६२

४—हिन्दी साहित्य पृष्ठ ३९५

निष्कर्ष—

अन्त मे निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग मे सस्कृत काव्य-शास्त्र के अनुकूल कतिपय लक्षरण ग्रन्थो का निर्माण कार्य चल रहा था। सामान्यत आलोचक और लेखक शास्त्रीय तत्वो को भी महत्व प्रदान कर रहे थे। निबन्धो और आलोचनाओ मे सस्कृत के विचारको और शास्त्रो के मंत उधृत किये जाते थे इसके साथ ही अग्रेजी के प्रभाव स्वरूप काव्यशास्त्र नाम के स्थान पर अग्रेजी के क्रिटिस्जिम का हिन्दी रूपान्तरित रूप आलोचना या समालोचना प्रचलित हो गया। आलोचना मे नवीनता और मौलिकता का आग्रह मान्य हुआ। आलोचना मे सिद्धान्त निरूपण का स्थान प्रयोगात्मक आलोचनाऐं ग्रहण करने लगी। भारतेन्दु के नाटक मे जहाँ सिद्धान्त निरूपण का प्रयत्न किया गया है वहाँ भी उन पर अग्रेजी आलोचना का प्रभाव देखा जा सकता है। उन्होने वियोगान्त नाटको को स्वीकृति प्रदान की और केवल भारतीय आधार पर नाटक रचना को अनुपयुक्त बताया। यह प्रत्यक्षत. अग्रेजी आलोचना और नाटको का ही प्रभाव था।[1] अब आलोचको द्वारा छन्दो और भाषा के सुधार की ओर भी ध्यान दिया गया। यह स्वाभाविक ही था। इगलैंड मे भी प्रारम्भ मे ऐसी ही मनोवृत्ति विद्यमान थी। सोलवी शताब्दी तक वहा के साहित्यकार चौसर, स्पेन्सर और इतालवी छन्दो का अध्ययन कर साहित्य निर्माण मे सलग्न थे।[2] चैक, एसकम और गोस्कायिन आदि ने इसमे सहयोग दिया था। इनके आपसी व्यमनस्य जैसा रूप हिन्दी के तत्कालीन साहित्यकारो मे भी विद्यमान था।

इस युग की पत्रिकाओ मे सस्कृत और अग्रेजी—दोनो को ही स्थान दिया जाता था। हरिश्चन्द्र मैगजीन मे हिन्दी के साथ अग्रेजी के लेख भी छपते थे और वहा सस्कृत की रचनाओ को भी समुचित स्थान दिया जाता था। काव्यप्रदीत और ब्राह्मण भी इसके अपवाद नही थे। इन पत्र पत्रिकाओ मे अग्रेजी के समान हिन्दी मे भी बुक रिव्यू को अपनाया। इससे प्रयोगात्मक आलोचना को बहुत बल प्राप्त हुआ।

१—हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन—भारतेन्दु के नाटकों का विवेचन।

२—डॉ० सेन्सबरी हिस्टी ओफ इगलिश क्रिटिसिजम एव एलिजेबथन लिटरेचर—अध्याय १,२

बुक रिव्यू ने आगे चल कर प्रयोगात्मक आलोचना का रूप धारण कर लिया। ऐसी भूमिकाएँ लिखी जाने लगी जिनमे लेखक अपने मतव्य को प्रकट करते और वे अग्रेज लेखको के समान अपने कृति का महत्व प्रदर्शित करते। सामान्यत आलोचक पुरातन पद्धति के आधार पर नवीन विद्याओ को ग्रहण कर रहे थे। प्रेस के प्रादुर्भाव और विकास से आलोचको मे आपस मे सघर्ष भी चला जो अग्रेजी के पफलेटियर्स के सघर्ष से तुलनीय है। अलकारो के और आलोचना के अग्रेजी पर्याय भी दिये जाने लगे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने शास्त्रीय शब्दावली के निर्माण मे सहयोग दिया। उसका उद्देश्य हिन्दी को प्रान्तीय भाषाओ से- उर्दू से सस्कृत से और अग्रेजी से शब्द लेकर सम्पन्न बनाना था।

साहित्य की सर्जनात्मक और कारयित्री विद्याओ मे अग्रेजी प्रभाव के कारण परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे। फलत. आलोचना पर भी यह प्रभाव परिलक्षित होने लगा। समालोचको द्वारा नवीन विद्याओ को ग्रहण करने और प्राचीन विद्याओ मे समयानुकूल यत्र–तत्र परिवर्तन कर देने के प्रयत्न किये जाने लगे। प्रारम्भ मे देशज भाषाएँ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो के प्रणयन की उदासीनसी ही थी। वे समयानुकूल सुविधानुसार सस्कृत नियमो को ग्रहण कर लेती थी अथवा उन्हे त्याग देती थी।[1] अतएव हिन्दी मे प्रारम्भ से ही नियमो के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति नही थी। वह सस्कृत के नियमो से दूर भी जा रही थी। रीतिकाल मे भी सस्कृत काव्यशास्त्र को देश कालानुसार ही अपनाया गया था। इसी कारणो से वक्रोक्ति और रीति सम्प्रदायो की अवहेलना हुई। नाटको का तो विवेचन प्राय छोड ही दिया गया। अत हिन्दी की नियमो के शिकंजे से छूटने की प्रवृत्ति अंग्रेजो के आने से पहले ही विद्यमान थी। उसे अग्रेजी आलोचना ने और भी अधिक प्रोत्साहित किया। पहले हिन्दी जगत के सामने केवल सस्कृत और देशी भाषाओ के शास्त्रीय तत्व ही विद्यमान थे। ये तत्व प्राचीन और अमर भाषाओ के थे। इस युग मे अग्रेजो के कारण जीवित विदेशी भाषाओ से हिन्दी का सम्पर्क हुआ। अतएव हिन्दी आलोचनाओ पर उसका प्रभाव वाछनीय मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से समचीन था।

अग्रेजी भाषा मे जीवन भाषा के प्राण थे नवीनता थी विद्युता थी और था तर्क सबल भी। अग्रेज शासक भी थे। और भारतियो तथा अग्रेजो मे अग्रेजी

१—देखिये प्रस्तुत अतिनिबन्ध–वीरगाथाकाल और भक्तिकाल का विवेचन।

के प्रसार के प्रयत्न भी किये थे। इसलिये भाषा का आलोचना साहित्य अग्रेजी आलोचना से प्रभावित हुआ और उसके सहारे से आगे बढने लगा। इसमे हिन्दी में उन विद्याओ और सिद्धान्तो को जो दोनो मे विद्यमान थे दृढतापूर्वक स्वीकार कर लिये थे जो केवल किसी एक की साहित्य मे थे उन्हे सुविधानुसार त्याग दिये अथवा ग्रहण कर लिये। कई बार सस्कृत के शास्त्रीय तत्वो को छोड दिया जाता था और बहुत सी बार अग्रेजी आलोचना के सिद्धान्तो को अपनाने का प्रयत्न भी किया जाता था। अग्रेजी के प्रभाव से हिन्दी मे श्लिोषणात्मक ढग की आलोचना शैली के दर्शन होने लगे। इस आलोचना शैली मे कही–कही तुलनात्मक शैली भी दिखाई देती है।[१] अग्रेजो के समान हिन्दी आलोचक भी गद्य और पद्य की भाषा के बारे मे सोचने लगे।

अग्रेजी प्रभाव के कारण गद्य और पद्य की भाषा के भेद के महत्व को समझा गया। इस कार्य मे अयोध्या प्रसाद खत्री ने आगे आकर अगुवा के रूप मे काम किया पिंगाठ महोदय जिन्होने नाटको मे आधुनिकता लाने का प्रयत्न किया था उन्होंने ही अयोध्या प्रसाद की खडी बोली की कविताओ का कुशल सम्पादन किया। उन्होने खत्रीजी को साधुवाद भी प्रदान किया। इसी तथ्य पर सन् १८८८ मे हिन्दुस्तान के सम्पादक ने गद्य और पद्य की भाषा के भिन्न–भिन्न न रखने पर बल दिया। इस प्रकार अग्रेजी साहित्य–वर्डसवर्थ के, सिद्धान्तो के समान हिन्दी मे भी भाषा भिन्नता को त्याज मानने के बीज दृष्टिगोचर होने लगे।[२] इनका विकसित स्वरूप आगामी युग मे दिखाई देने लगा। यहा अग्रेज विद्वानो द्वारा की गई हिन्दी साहित्य के इतिहास की सेवा की प्रशसा करना उपयुक्त ही होगा। उन्होने भारतियो को प्राचीन साहित्य की ओर जाने का निर्देश भी दिया। वे समय समय पर हिन्दी समालोको को प्रोत्साहित भी करते थे। विभिन्न विद्यालयो और विश्वविद्यालयो ने हिन्दी को स्थान दिया। इससे हिन्दी की गद्यशैली का विकास हुआ और पाठ्यक्रमो की पुस्तको की रचनाओ से शैली मे एक विशिष्ट स्थिरता के

१—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २४२

२—क–हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव पृष्ठ ८२,८५

ख–पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ ९३,९४

ग–शान्तिगोपाल–वर्डसवर्थ के काव्य सिद्धान्त।

भो दर्शन होने लगे। साहित्यक रचनाओ मे जीवन का चित्रण हो ऐसा भी माना जाने लगा। रीति कालीन शृ गारिकता को भी अवाछनीय बताये जाने लगा।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समय के आलोचक सस्कृत और अग्रेजी दोनो से ही सबल ग्रहण कर आगे बढ रहे थे। सस्कृत को उन्होने पैतृक सम्पति के रूप मे प्राप्त किया था और अग्रेजी का ज्ञान उनके अपने परिश्रमो से संचित और अर्जित धन था। इस युग के आलोचक और उनकी आलोचनाएँ हमारे मत का समर्थन करती है। आलोचको मे एक वर्ग संस्कृत साहित्य की ओर रुचि रख रहा था तो दूसरा अग्रेजी नियमो से आर्कषित हो रहा था। बहुधा सुविधानुसार दोनो ही आलोचना पद्धतियो को अपनाने के प्रयत्न किये जाते थे। आगामी बिवेचन इसका साक्षी है।

१—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र–हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २३५।

'ख' भाग

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र रचनात्मक साहित्यिक विधाओ का सृजन करते हुए आलोचको की दृष्टि भी रखते थे। इन्होने नाटक मे उन्हे प्रतिपादित भी किया था। ये अपने मित्रो को साहित्य की नवीन विधाओ को अपनाने की प्रेरणा भी देते थे। इस प्रकार ये सच्चे आलोचक के रूप मे साहित्यकारो के सहयोगी भी थे। इन्होने अपने मित्र पडित सन्तोषसिंह को जो पत्र लिखा था वह हमारे कथन का साक्षी है।[1] इससे प्रतीत होता है कि आलोचक भारतेन्दु हिन्दी साहित्य की क्षति—पूर्ति की आकाक्षा रखते थे, अपने साथियो को प्रेरणा देते थे और जब वह कार्य पूरा नही होता था उसे पूरा करने का वे स्वय प्रयत्न करते थे। जब उन्होने हिन्दी मे उपन्यासो की कमी को अनुभव किया तो उन्होने स्वय चन्द्रप्रभा और पूर्ण प्रकाश नामक उपन्यास से उसे पूरा करने का प्रयत्न किया।[2] इसी भाति उन्होने नाट्य क्षेत्र को भी पुष्ट और उन्नत बनाया। भारतेन्दु बाबू ने कालिदास, जयदेव और सूर तथा पुष्पदन्ताचार्य के चरित्र लिखे। इस प्रकार इन्होने जीवन चरित मूलक आलोचना को पुष्ट बनाया। इस आलोचना को अग्रेजो के भारतीय कवियो के क्षेत्र मे किये गये कार्य से प्रेरणा मिली होगी। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि ये विषय अर्थात् कवियो के जीवन निसन्देह भारतीय थे। इस प्रकार इन पर विषय की दृष्टि से भारतीयता का प्रभाव है और प्रतिपादन की शैली की दृष्टि से अग्रेजी का। इन्होने शाडिल्य ऋषि के भक्ति के सौ सूत्रो का भाष्य लिखा। यह भाष्य लिखने

१—डॉ० रामविलास शर्मा—भारतेन्दु युग पृष्ठ ६२, ६३—इन्होने लिखा था "जैसे भाषा में अब तक कुछ नाटक बन पाये है, अब तक उपन्यास नही बने है। आप—उपन्यास लिखें तो उत्तम रहेगा।"

२—यह मराठी उपन्यास का रूपान्तर था और उन्होंने अपनी पत्रिका हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में कुछ आप बीती जग बीती उपन्यास का प्रारम्भ भी किया था, जो अपूर्ण ही रहा।

की पद्दति इन पर सस्कृत के प्रभाव की परिचायक है। इन्होने अपने नाटक मे भी सस्कृत के रस को पूर्ण रूपेण विस्मृत नही किया है। ये उसके ममयानुकूल उपयोग के समर्थक थे। इस प्रकार हम कह मकते है कि ये सस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाये हुए थे, साथ ही ये नवीन सिद्धान्तो के प्रति सर्तक और जागरूक थे।

भारतेन्दु बाबू अंग्रेजी आलोचना के परिपार्श्व में—

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने बुक रिव्यु लिखे और तहकीकात पूरी की। तहकीकात मे इन्होने उसका प्रखर रूप सामने रखा। इन्होने दादु, नानक कवीर, प्रभृति आदि भक्त और ज्ञानियो को देवताओ के लिबरल दल मे रखा है।[1] इन्होने जातीय सगीत मे लोक गीतो के प्रति रुचि दिखाई है, जिसका कारण अग्रेजो द्वारा फोक सौन्गज् की महत्ता हो सकती है। भाषा शीर्षक निबन्ध मे भाषा की पाचन शक्ति की बात कही गई हैं जो अग्रेजी की प्रवृत्ति के अनुकूल है। वे तो अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे जीवन की बाधाओ को भी नाटकीय शैली मे प्रस्तुत किया।—"छः जनवरी सन् १८८५ ई० प्रात काल के समय जब भीतर से बीमारी का हाल पूछने मजदूरिन आई तो आपने कहा कि—जाकर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया छप रहा है, पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खासी की सीन हो चुकी, देखे लास्ट नाइट कब आती है।"[2]

जीवनियाँ—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन्होने जीवनियाँ भी लिखी। वैसे जीवनी साहित्य भक्ति काल में ही प्राप्त होने लगा था, किन्तु भारतेन्दु बाबू ने भक्ति कालीन लोकोत्तर तथ्यो का उल्लेख न करके अग्रेजी मे प्राप्त यथार्थ मूलक जीवनियो के सम्राब जीवनियो का प्रतिपादन और सम्पादन किया। भारतेन्दु विरचित कालिदास, जयदेव और सूरदास जैसे साहित्यकारो की जीवनियाँ उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है। प्रामाणिक जीवन वृत्त प्रस्तुत करने का इनका उद्देश्य था।

१—स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, मित्र विलास, खण्ड ८, सख्या ४० १६ जून सन् १८८५।

२—अयोध्याप्रसाद खत्री—खड़ी बोली का पद्य (सन् १८८६) पृष्ठ ३१,३२।

इसकी प्रेरणा सम्भवत: डॉ० जोनसन की लाइव्ज ओफ पोइट्स से मिली होगी। इन्होने अपने नाटक मे भारतीयता के साथ अग्रेजी आलोचना त वो को ग्रहण किया है।

नाटक—

भारतेन्दु ने नाटक द्वारा दोनो का भाषाओ के गुणो से नाट्य निर्माण की आकाक्षा प्रकट की है। वहाँ उन्होने नाटको को प्राची और अर्वाचीन नामक दो भागो मे विभाजित किया है। उनकी मान्यता है कि प्रहसन (प्राचीन मे) एक ही अङ्क होता था पर अर्वाचीन मे दृश्य बदलना आवश्यक हो गया है। नवीन नाटको मे उन्होने यूरोप और ब गला का प्रभाव बताया है। अ ग्रेज आलोचको के समान उन्होने नाटको मे कई दृश्यो को स्वीकार किया है। नाटको के सयोगान्त दोनो ही भेदो को स्वीकार किया है। अर्थात् दुखान्त नाटको को उन्होने मान्यता प्रदान की है। भारतेन्दु ने यथार्थ बाद पर बल दिया और मिथ्या आशा को दूर करने के लिये सन्देश भी दिया। वे कहते है कि सस्कृत नाटकादि रचना के निमित्त महामुनि भरतजो ने जो सब नियम लिख दिये है उनमे से हिन्दी नाटक रचना के नितान्त उपयोगी है। और इस काल के सहृदय सामाजिक लोगो की रुचि के अनुयायी है वे ही नियमादि यहाँ प्रकाशित होते है।[1] इस प्रकार ज्ञात होता है कि अनेक दृश्यो की व्यवस्था देने, वियोगान्त नाटको की महत्ता स्वीकार करने, यथार्थ के आग्रह को मान्यता प्रदान करने, सूत्रधार की अवहेलना करने आदि मे भारतेन्दु पर अ ग्रेजी आलोचना और नाटको का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

नाटक मे भारतेन्दु ने नाटको का इतिहास भी दिया है—भारतीय ही नही यूरोप के नाटको का भी इतिहास दिया है, इससे अवश्य ही नाटको के पठन पाठन में अभिवृद्धि हुई होगी। उनकी इस आलोचना से तत्कालीन परिस्थितियो मे अ ग्रेजी साहित्य के प्रभाव का परिचय मिल जाता है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उस युग मे शोध कार्य विकसित न होने के कारण वे कम ही आलोचको

१—(क) भारतेन्दु नाटकावली प्रथम भाग– सम्पादक बाबू ब्रज रत्न दास पृष्ठ ७२२

(ख) विस्तृत विवेचन के लिये देखिये–हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन पृष्ठ १०० से १३६

के मत उद्धृत कर पाये। जैसे—भास, दण्डी और हर्ष आदि के नाम उन्होने नही लिये है।

निष्कर्ष—

भारतेन्दु ने शास्त्रीय रस को महत्ता प्रदान करते हुए भी सामयिक दृष्टि से भक्ति, वात्सल्य, सख्य और आनन्द नामक चार नवीन रसो की कल्पना भी की। जब इसकी आलोचना प्रत्याआलोचना होने लगी तो उन्होने स्वय सम्पादक के नाम पत्र लिख कर अपने मत की पुष्टि को फलत· विरोधियो का दमन हो गया। वे लिखते है—

"वाह वाह रसो का मानना भी मानो वेद के धर्म को मानना है। जो लिखा है यही माना जाय और उसके अतिरिक्त करे तो पतित होय। रस ऐसी वस्तु है जो अनुभव सिद्ध है। इसके मानने मे प्राचीनो की कौई आवश्यकता नह ी। यदि अनुभव मे आवे मानिये न आवे न मानिये।"[1]

× × × ×

"भक्ति—कहिये इसको आप किस के अन्तर्गत करते है क्योकि इस रस की स्थाई श्रद्धा है और इसके आलबन भक्त और इष्ट देवता है और उद्दिप्न भक्तो का प्रसग और सतसग है।"[2]

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उन्होने अग्रेजी काव्यशास्त्र के सहारे हिन्दी काव्य शास्त्री की अभिवृद्धि करनी चाही। उन्होने जहा सस्कृत नियमो मे रूढितावाद देखा वहा उसे हेय बताया। साथ ही वे सस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाये हुए थे। उन्होने जब नवीन रसो की कल्पना की तो शास्त्रीय दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया। उन्होने जब भारतीय मनिषियो के चरित्र लिखे तो एतिहासिक आलोचना को दृष्टि पथ पर रखा। जब उन्होने साहित्य मे नवीन विधाओ का ह्रास पाया तो उसके परिपूर्ण करने का प्रयत्न भी किया। वे अपने युग के श्रेष्ठ साहित्यकार और आलोचक तो थे ही, उन्होने अनेक कवियो और लेखको को प्रेरणा भी प्रदान की।

१—कवि वचन सुधा जिल्द ३ सख्या २२, ५ जुलाई १८७२
२—वही जिल्द ३

बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन—

भारतेन्दु काल के आलोचको मे प्रेमघनजी का अपना स्थान है। वे विवेकशील सम्पादक के रूप मे कार्य करते रहे। नवीनता के प्रति ये आकृष्ट हुए और इन्होने बुक रिव्यु द्वारा प्रयोगात्मक आलोचना को महत्व दिया। इनकी आलोचनाये आनन्दकादम्बिनी और नागरीनीरद नाम पत्रिकाओ मे प्राप्त होती है। इन्होने अपने 'दृश्य रूपक या नाटक नामक निबन्ध मे सस्कृत और अ ग्रेजी नाटको का उल्लेख किया है।[1] अतएव ये अग्रेजी और सस्कृत साहित्य तथा समालोचना के साथ आगे बढ रहे थे। उनका इन पर प्रभाव भी था।

संस्कृत के परिपार्श्व में—

उक्त लेख मे इनका रस को महत्त्व देना नाट्य शास्त्र और काव्य शास्त्रीय परम्परा के अनुकूल है। इसी भाति सयोगिता स्वयम्बर की आलोचना करते समय उन्होने शास्त्रीय तत्त्वो–वस्तु नेता और रस का आधार ग्रहण किया है। यही क्यो इसमे मूल और अ गी रस कौन है ? इसका भी विवेचन किया गया है जो पूर्णतया नाट्य शास्त्र और साहित्य दर्पण के अनुकूल है। इसी भाति इन पर अ ग्रेजी आलोचना का प्रभाव भी दिखाई देता है।

अंग्रेजी आलोचना के परिपार्श्व में—

ब ग विजयता की आलोचना करते हुए इन्होने बताया कि वह आर्य भाषा मे होकर भी अ ग्रेजी प्रबन्ध प्रणाली मे युक्त है।[2] इससे स्पष्ट ज्ञात होता है आलोचक की दृष्टि अ ग्रेजी प्रबन्ध प्रणाली के गुण भी थे। उन्होने यह भी बताया कि प्रथम परिच्छेद मे आई हुई घटनाएँ इतिहास के अधिक निकट है, उपन्यास के नही। अतएव इस परिच्छेद को उन्होने भूमिका मे रखने का आदेश दिया। इससे अ ग्रेजी पुस्तको मे लिखी गई भूमिकाओ का प्रत्यक्ष प्रभाव मानना चाहिये।

१—आनन्द कादम्बिनी सख्या ४,५ सन् १८८१

२—प्रेमघन सर्वस्व द्वितीय भाग पृष्ठ ४४१

इनके हिन्दी भाषा से सम्बन्धित लेखो[1] मे हिन्दी के विकास की कामना प्रदर्शित की गई है। उनका कलकत्ते मे तीसरे साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के समय दिया गया भाषण हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास को प्रकट करता है। इन्होने स्वय पत्रिका की प्रार्थना मे २६ पुस्तको के फोरवर्ड लिखने की बात कही है। इन्होने नागरी समाचार पत्र और उनके समालोचको का समाज मे भारत मित्र और सरस्वती के सम्पादको—बाल मुकन्द गुप्त और महावीर प्रसाद द्विवेदी के सघर्ष को हेय बताया है। इनके उर्दू पर किये जाने वाले व्यग्य अग्रेजी के सेटायर के समान प्रतीत होते है।

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन्होने सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल रस आदि को मान्यता प्रदान की। अग्रेजी आलोचना के समान इन्होने प्रयोगात्मक आलोचना को महत्व दिया। भूमिकाएँ लिखना और व्यग्य प्रहार करना भी अग्रेजी पद्धति के अनुकूल है। इनके ही समान पण्डित बालकृष्ण भट्ट पर भी सस्कृत काव्यशास्त्र और अग्रेजी आलोचना का प्रभाव दिखाई देता है।

पण्डित बालकृष्ण भट्ट—

सस्कृत काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित बालकृष्ण भट्ट अग्रेजी समीक्षा सिद्धान्तो के प्रति उदार नही थे। इन्होने सयोगिता स्वयम्बर पर लेखनी चलाई जिसे भारतेन्दु युग की आलोचना मे प्रथम स्थान दिया जा सकता है। रणधीर और प्रेम मोहिनी, चन्द्रसेन तथा गुरु गोवरधन दास आदि की भी इन्होंने आलोचनाएँ की। इनके सामने अग्रेजी का निबन्ध और आलोचना साहित्य था परन्तु इन्होने अन्धानुकरण नही किया। हिन्दी प्रदीप द्वारा पाठक वर्ग तैयार किया। इनकी शैली मे व्यग्य का प्राचुर्य प्राप्त होता है। इस प्रकार ये एक ओर सस्कृत काव्यशास्त्र के निकट है तो दूसरी ओर अग्रेजी आलोचना से प्रभावित हुए ही है।

१—हिन्दी, हिन्दु और हिन्दी, हमारी प्यारी हिन्दी, हमारे देश की भाषा और अक्षर, देश के अग्रसर और समाचार पत्रो के सम्पादक, पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार और भारतीय नागरिक भाषा इसके उदाहरण है।

२—प्रेमधन सर्वस्व दूसरा भाग पृष्ठ ४६२

संस्कृत प्रभाव—

इन्होने भविभूत कालिदास और श्री हर्ष आदि के ग्रन्थो का परिचय देते हुए उनकी जीवनियो पर प्रकाश डाला है। अतएव विषय की दृष्टि से ये सस्कृत से सम्बद्ध रहे है। भवभूति और कालिदास की तो इन्होने तुलना भी की। भट्टजी ने अपनी आलोचनाओ मे शास्त्रीय तत्त्वो को भी ध्यान मे रखा है। वह हमारे शास्त्रीय सिद्धान्तो के अनुकूल है। ये लिखते है—लालाजी यदि बुरा न मानिये तो एक बात आपसे धीरे से पूछे कि आप ऐतिहासिक नाटक कहते किसे है आदि। इस प्रकार के कथन इन पर अग्रेजी प्रभाव के भी परिचायक है।

अंग्रेजी प्रभाव—

इन्होने अ ग्रेजी शब्दो को स्थान दिया है। विशेष प्रकार की कबिता के लिये छन्द–मन्द भी अनुपयुक्त मानते थे। उन्होने सस्कृत से परिपूर्ण शास्त्रीय कविता को कृत्रिम और हेय सिद्ध किया है। ये लिखते थे—"हिन्दी कवि भी उन्ही पुराने कवियो की शैली का अनुकरण कर आज तक चले आये है और उसी ढग को छोड कर दूसरे प्रकार की भी कविता हो सकती है। यह बात उनके मन मे धसती ही नही है। जिसकी उपमा हम देगे। छोटे से तालाब की देगे जिसमे न कही से पानी का निकास है न ताजा पानी उसमे आने की कोई आशा है। तब इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि पानी दिन ब दिन बिगडता जाये।"[१] इसी भाति आलोचना मे व्यग्य प्रहार करते है और अ ग्रेजी शब्दो को अपनाते है।— "पात्र के भाव (स्प्रीट औफ दी टाइम्स) क्या थे ? इन सब बातो को ऐतिहासिक रीति से पहले समझ लीजिये तब उनके दर्शाने का भी यत्न नाटको द्वारा कीजिये।"[२]

ये प्रदीप मे आलोचना करने से पूर्व जिन सिद्धान्तो के आधार पर आलोचना करते थे उनका उल्लेख भी कर देते थे। इस प्रणाली पर ऐडीसन के स्पेक्टेटर मे की गई आलोचना की—प्रमुख रूप से मिल्टन की पेरेडाईज लोस्ट की आलोचना की छाया का अनुमान लगा सकते है।

१—हिन्दी प्रदीप मार्च, सन् १८८०

२—हिन्दी प्रदीप–मार्च, १८८०

निष्कर्ष—

भट्टजी ने हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये अथक परिश्रम किया। हिन्दी प्रदीप मे वे स्थान–स्थान पर लिखते थे—विचार कर देखिये तो भी जो हिन्दी हम आजकल बोलते है वह पहले क्या थी और अब क्या है। अब फारसी, उर्दू शब्द इसमे मिलते जाते है ... अपनी निज की भाषा के काम काजी शब्दो को मर जाने या मृतक प्राय हो जाने से बचाना अच्छे लेखको का काम है।[1] इसी भाति आप लिखते थे —आप जो भाषा बोलेगे वह किसी साचे मे ढली होगी। इत्यादि।[2] इन्होने अत्यन्त सामान्य परिस्थिति के होते हुए भी हिन्दी प्रदीप का ३३ वर्ष तक सम्पादन किया।[3] इस प्रकार हम कह सकते है कि इनका उद्देश्य अपनी भाषा को समृद्ध बनाना था जिसमे इन्होने सुविधानुसार सस्कृत के काव्यशास्त्र के साथ अ ग्रेजी की आलोचना को भी अपनाया।

पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री—

अग्निहोत्री जी ने समालोचना के मुख पृष्ठ पर भामिनी विलास का श्लोक उद्धृत किया जो इनकी सस्कृत आदर्श निर्वाह की आकाक्षा को प्रकट करता है। इन्होने जहन्सन व मोकोले के अध्ययन की महत्ता को प्रतिपादित किया। जिससे अ ग्रेजी प्रभाव प्रत्यक्ष हो जाता है। यहाँ एक प्राचीन सस्कृत आलोचना के लिये लिखा कि वह वैसी नही थी जैसी होनी चाहिये।[4] अतएव अ ग्रेजी आलोचना को ये लोहा मानते थे। वे अग्रेजी अध्ययन को, आलोचना—गुण दोष विवेचन को, आलोचना का मूल मानते थे। उन्हे हिन्दी मे इसके अभाव का खेद भी था। उनकी धारणा थी कि—

साराश जो दोष हो उनका निर्भयता एवम् स्पष्टता पूर्वक कथन हो और वैसे ही हे जैसे गुण हो तो उनके लिये रचयिता की उचित प्रशसा की जाय। जिस प्रकार एक सत्य निष्ठ न्यायाधिकारी शत्रु मित्र भाव को बिल्कुल भुलाकर

१—हिन्दी प्रदीप–१८८५ जिल्द ८, सख्या १७

२—वही–

३—वृजमोहन व्यास–बालकृष्ण भट्ट पृष्ठ १६९–१८१

४—पण्डित गगाप्रसाद अग्निहोत्री–समालोचना पृष्ठ २५

केवल उदासीनता पूर्वक न्याय करता है, वह सच्चा वणिक पुत्र सच्चे नाम से अपने ग्राहको को सच्चा तोल देता है, सच्चा एवम् उत्तम चित्रकार ज्यो का त्यो चित्र उतार देता है उसी प्रकार समालोचक को भी होना चाहिये ।[1] इससे हमे ज्ञात होता है कि ये जहा सस्कृत आलोचना के अनुसार कार्य करने के इच्छुक थे इसी भाति अ ग्रेजी आलोचना को इन्होने अपनाया था ।

बाबू बालमुकन्द गुप्त—

बाबू बालमुकन्द गुप्त हरबर्ट स्पेसर, मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानो के जीवन चरित्र के रचयिता है जिससे उनका अ ग्रेजी का ज्ञान प्रकट होता है ।[2] उन्होने चन्द अमीर खुसरो, कबीर, नानक और जायसी द्वारा हिन्दी को दिये गये योगदान को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया । हिन्दी भाषा और लिपि को सुधारने का भी इन्होने प्रयास किया । द्विवेदी जी ने जब भाषा और व्याकरण निबन्ध प्रकाशित करवाया तो बाबू बालमुकन्द गुप्त ने उसकी भारत मित्र मे प्रत्यालोचना की । और फिर तो अग्नि भवकी ।

इस प्रकार की आलोचना प्रत्यालोचना की शैली पफेटियर्स की याद दिलाती है । इनकी पुस्तक समालोचनाओ मे शास्त्रीय निर्वाह नही के बराबर दिखाई देता है ।[3] ये बडे तीव्र आलोलक माने जाते है ।[4] इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन्होने अ ग्रेजी के ज्ञान से हिन्दी भाषा को सुधारने का परिश्रम किया । इसमे इनके सस्कृत व्याकरण और शास्त्रीय ज्ञान ने भी सहयोग दिया ।

अन्य—

पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक ठहराने का वैज्ञानिक प्रयत्न किया । जब कवि राज सामलदास ने रासो को और

१—पण्डित गगाप्रसाद अग्निहोत्री—समालोचना सन् १८९६ पृष्ठ ३७

२—भारत मित्र सन् १९०४ एवम् १९००

३—डॉ० वेंकट शर्मा—आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास पृष्ठ १८०–८१

४—डॉ० भागीरथ मिश्र और डॉ० राम बहोरी शुक्ल हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृष्ठ १६७

पृथ्वीराज के सम्बन्धित घटनाओ को पृथ्वीराज चरित्र मे जाली ठहराया तो इन्होने रासो सरक्षण मे उसकी प्रामाणिकता पर विश्तरित प्रकाश डाला।

ये आलोचक सस्कृत का आधार लेते हुए भी अग्रेजी आलोचना के प्रति जागरूक थे। इन्होने अग्रेजी आलोचना के प्रयोगात्मक रूप को अपनाया और पत्र पत्रिकाओ मे गद्यात्मक लेखो द्वारा अपने विचार अभिव्यक्त करते थे। इन आलोचको के साथ ही आलोच्य काल मे सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल काव्यशास्त्र रचना करने वाले भावक भी प्राप्त होते है। रामदास कृत कवि कल्पद्रुम इसका उदाहरण है। इसमे ध्वनि सम्प्रदाय को प्रमुखता देते हुए सस्कृत के शास्त्रो के अध्ययन की ओर सकेत किया गया है। प्रारम्भ मे ही लिखा गया है—

देखे भाषा सस्कृत, ग्रन्थ अनेक विचारि।
तिनके वरनन नाम है, जथा सुक्रम अनुसार।

× ×

देखि कुवलियानन्द, सुनि वाग्भटालंकार।

इसमे नाट्यशास्त्र के समान नाटक मे सस्कृत और नाटक दोनो ही भाषा के प्रयोग की व्यवस्था की है। इस प्रकार यह ग्रन्थ संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है। फिर भी इस युग मे अग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से गद्य का विकास हो चुका था। इस प्रकार ये भी अपने ग्रथ मे गद्य की व्याख्या अवश्य ही देते है।–जैसे—
शब्दार्थ सम्बन्ध से कवित्त होता है ताते प्रथम आखर अर्थ कहे रूढादि जात्यादिक भेद करके वाचक लाक्षणिक विजक तीन प्रकार के शब्द —

यहा हम कह सकते है कि गद्य का तो व्रज भापा वाला ही है परन्तु इस प्रकार की व्याख्या प्रदान करने की भावना पर अग्रेजी से विकसित हिन्दी गद्य को अपनाना कहा जा सकता है।

चन्द्रशेखर वाजपेयी—

वाजपेयी जी ने रसिक विनोद की रचना रसमजरी के अनुकूल की है। इसमे नायक नायिका के भेद को स्थान दिया गया है। रस निरूपण भरत के अनुसार है किन्तु इसमे नव रसो का उल्लेख मिलता है।

ग्वाल कवि ने केशव और देव के समान रस रग मे रस के दो भेद किये हैं। इन्होने उन्हे प्रकाश और प्रच्छिन्न न कह कर लौकिक और अलौकिक कहा है। नायिका भेद मे भी नवीनता दिखाई गई है। यथा सुख साध्या, दुख साध्या और बहुकुटुम्बिका आदि भेद किये गये है। इससे ज्ञात होता है कि काव्यशास्त्रो पर लिखने वाले विवेचक भी अग्रेजी प्रभाव के कारण नवीनता को अपनाने लगे थे।

नन्दकिशोर उपनाम लेखराज कृत गगा प्रण तीनो भागो मे विभक्त है। इसमे अर्थालकारो, शब्दालकारो और चित्रालकारो को विवेचन की सामग्री बनाया गया है। वहाँ सस्कृत परिपाटी का परिपालन भूषण के माध्यम से हुआ प्रतीत होता है। लेखक ने गगा का महिमा गान करते हुए अलकारो का विवेचन परम्परा के अनुकूल किया है।

लच्छीराम—

लच्छीराम कृत रामचन्द्र भूषण मे भी अलकार वर्णन प्राप्त होता है। ये रीति काल के समान कह देते है—

सकुवि रीझि है करि कृपा, तो कविता लछिराम।
नतरू व्याज सों में रच्यो, श्री सियवर को नाम ।।६२८

लच्छीराम कृत कई ग्रथ माने जाते है जिनमे रावणेश्वर कल्पतरु और महेश्वर विलास प्रसिद्ध है।[1] इनकी रचनाओ मे लक्षण देकर उदाहरण देने की प्राचीन परम्परा का निर्वाह हुआ है।[2] इसका क्रम भाषा भूषण के अनुकूल ही रक्खा गया है। इसके ही समान रामचन्द्र भूषण मे गुम्फ अलकार को स्थान दिया गया है। इसमे इनकी मान्यता यह थी कि जो भिन्न प्रभाव काव्य का होता है उसे ही कान्ती कहते है जो अलकार है। पोप ने भी ऐसा ही कहा था कि हम शारीरिक अव्ययो को अलग-अलग रूप से देख कर उन्हे सुन्दर नही कहते। सुन्दरता तो प्रभावानविति की सज्ञा है। यहा हम कह सकते हैं कि लच्छीराम के उक्त कथन पर

१—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का उद्भव और विकास पृष्ठ १८६–८७

२—डॉ० ओमप्रकाश—हिन्दी अलंकार साहित्य पृष्ठ १९८

पोप का प्रभाव न होकर ध्वनि सम्प्रदाय की छाया है। इन्होने रावणेम्वर कल्पतरु मे काव्य के उत्तम मध्यम और अधम भेद चन्द्रलोक के आधार पर किये है। इसका तृतीय कुसुम शब्द शक्ति का विवेचन करता है जिस पर काव्य प्रकाश की छाया परिलक्षित होती है। इस सस्कृत प्रभाव के साथ इन पर अग्रेजी का प्रभाव भी दिखाई देता है।

इनकी यह विशेषता है कि इन्होने गद्य मे अलकारो के साथ तिलक जोड दिया है।[1] यह अग्रेजी के परिपार्श्व मे विकसित गद्य के प्रचलन के गुलाबसिंह कृत वनिता भूषण मे भी गद्य को स्थान दिया गया है। इसमे नायिका भेद और अलकारो का वर्णन केशव की रसिक प्रिया के समान एक साथ किया गया है। इसके प्रणयन मे सस्कृत ग्र थो और हिन्दी पुस्तको की सहायता ली गई है जिसका उल्लेख लेखक ने स्वयम् कर दिया है। अलकारो का विवेचन कुवलियानन्द की छाया प्रकट करता है क्योकि उसके ही समान मालोपमा आदि अलकारो को इसमे छोड दिया है।

गगाधर का महेश्वर भूषण भी एक काव्य शास्त्रीय ग्र थ है। इसमे उन्होने बाबू भारतेन्दु हरीश्चन्द्र का आदर सहित नामोल्लेख किया है। वे कहते है कि—

पढि विद्या वाराणासी लिया प्रशसा पत्र।
हरिश्चन्द्र आदिक सुकवि किय कस्ताक्षर तत्र।
भयउ जब इगलैण्ड में जुबली को दरबार।
चित्र काव्य वर विरचि के पढ़ेयों तित सुखसार।

इस प्रकार जुबली के दरबार के अवसर पर कवि का ग्र थ पढा गया था। इन्होने इसके चतुर्थ उल्लास मे राधिका का नख-शिख वर्णन किया है। पाचवे उल्लास मे दान वर्णन और तदनन्तर चित्र काव्य का वर्णन किया गया है। यथा इन्होने स्थान-स्थान पर तिलक दिया है।

१—यह जो समस्त वृतान्त वर्णन कियो सो कारण प्रस्तुत है अरु सेना के प्रभाव से जो दूत के दृश्य में भयानक भयौ ताको नैक हु ना कह्यौ सो अप्रस्तुत है।

प्रश्न—　　　**मिसकरि के तो पर्यायोक्ति में भी है।**

उतर—　　　**पर्यायोक्ति मे मिसिकरिके कार्य साध्यौ ॥**[1]

अलकारो के विवेचन मे चन्द्रलोक और कुवलियानन्द का आधार लिया गया है। इन्होने कई आचार्यो और उनके मतो के नामतः उल्लेख किये है।—

विशेषोक्ति भूषण तहा, मम्मट को मत मानु ॥१५८
अधिक अलकृत प्रथम तहँ, कैयट को मत मानि ॥१६७
अलकार मम्मट मत जानौ तदगुन तौन ॥२४७

निष्कर्ष—

इम प्रकार हम देखते है कि गगाधर ने महेश्वर भूषण ग्रंथ को सस्कृत कवियो पर आधारित करने का प्रयत्न किया। इन्होने एकाधिक कवियो का सहारा लिया है। साथ ही समय के अनुमार सशय पूर्ण अशा को समझाने हुए चले है। एक तथ्य यह उल्लेखनीय है कि अग्रेजी राज्य भी इनके काव्य का प्रेरणा श्रोत रहा होगा। कम से कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि कवि ने जुबली के अवसर पर अपने कविता का पाठ कर गौरव का अनुभव किया था।

इम युग के प्रमुख आचार्य हैं कवि राजा मुरारीदान।

कविराजा मुरारी दान—

कविराज जी ने अग्निपुराण नाट्य शास्त्र चिन्तामणी कोष और चन्द्रालोक तथा कुवलियानन्द की छाया लेकर जसवन्त जासो भूषण की रचना की। इसमे इन्होने नाम के आधार पर अलकारो का अर्थ बताया है। अर्थात व्युत्पति से ही ये लक्षण स्पष्ट करते है। जसवन्त भूषण पर चन्द्रालोक की शैली का प्रभाव दिखाई देता है। इन्होने पण्डित राज जगन्नाथ के समान ही रमणीय अर्थ प्रतिपादित करने वाले शब्द को काव्य कहा है।[2] इन्होने अतुल्य योग्यता अनवसर, अप्रत्यनीक और

१—महेश्वर भूषण—पृष्ठ ७७
२—जसवन्त भूषण—पृष्ठ २,३ एवम् ५७

अभेदनीय आदि कुछ अलकार अपनी ओर से भी बनाये है। इससे इनका नवीनता का आग्रह दिखाई देता है। इनके जसवन्त जसो भूषण मे महाराजा जसवन्तसिंह प्रेरक के रूप मे गया था। इसकी विशेषता यह है कि इससे सस्कृत मे भी अनुवाद किये गये। इसे राज कृपा परिणाम कहा जा सकता है परन्तु यह भी सत्य है कि इनका ग्र थ भाषा विद्वानो मे ही नही सस्कृत के कवियो मे भी समादृत था। मुरारीदान जी ने कहा है कि—

> **भाषा भूषण ग्रन्थ कौ, इक दिन चल्यौं प्रसग।**
> **मोसो नृप पूछ्यौ कहौ, याकौ कैसौ ढग॥**
> **भाषा में मत भरत के, है प्रथमहि यह ग्र थ।**
> × × ×
> **पै साक्षात् न होत है, अलंकार कौ ज्ञान।**
> **इस उत्तर पर हँसि कह्यौ, रचौ ग्रंथ कोउ आनु॥**

लक्षण नाम प्रकाश मे लेखक ने बताया है कि जयदेव ने स्मृति भ्रान्ती और सन्देह इन तीन अलकारो के नामो को लक्षण समझा है। इन्होने जसवन्त जसो भूपण मे तो सभी अलकारो को नाम से ही समझाने का प्रयत्न किया है। इसका आधार जयदेव माने जा सकते है। साथ ही इन्होने यह भी कहा है कि ऐसा ग्र थ बनाना चाहिये जिसमे सस्कृत और भाषा के ग्रन्थो को पिष्ट पेषण न हो। कोई नवीन युक्ति निकाली जाय। इस नवीन युक्ति को निकालने की भावना पर अ ग्रेजी का प्रभाव दिखाई देना है। इन्होंने गद्य मे व्याख्याएँ भी की है।[1] इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इनके लक्षण ग्रन्थ का आधार काव्यशास्त्र थे। महाराजा से इन्हे प्रेरणा मिली और आदेश मिला। अ ग्रेजी के प्रभाव से उत्पन्न नवीनता का आग्रह इन्हे मान्य था। अबतक गद्य का प्रचलन हो चुका था और उसके प्रौढ रूप के दर्शन इनके ग्रंथों मे होते हैं।

निष्कर्ष—

उपर्युक्त बिवेचन से ज्ञात होता है कि आलोच्य काल में एक धारा संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल प्रवाहित हो रही थी। इसके रचयिताओ ने भाषा कवियो के माध्यम से भी सस्कृत प्रभाव को ग्रहण किया था। साथ ही युग प्रभाव के रूप मे

१—जसवन्त जसौ भूषण–११४

इन्होने गद्य को भी अपनाया था। कालान्तर मे इसका निखरा रूप भी सामने आया। ये आचार्य भी नवीनता और मौलिकता की आकाक्षा रखने लगे। फिर भी अधिकाशतः ये प्रतिपादन की शैली की दृष्टि से और विषय सामग्री के विचार से संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल थे। दूसरी ओर ऐसे समालोचक भी थे जो अग्रेजी शैली और अग्रेजी आलोचना के तत्वो को अपनाने का प्रयत्न कर रहे थे। तत्कालीन परिस्थितियाँ और अग्रेजी राज्य सामान्य रूप से दोनो ही कवियो को प्रेरणा प्रदान कर रहे थे। सरस साहित्य जिस पर अग्रेजी प्रभाव पड रहा था उसके माध्यम से भी हिन्दी के आलोचक अग्रेजी आलोचना के तत्व ग्रहण कर रहे थे। उदाहरण के लिये अब वियोगात नाटक,[1] विक्ष्यात्मक कवितायें आदि हिन्दी मे प्रतिष्ठित हुए। अग्रेजी की भिन्न तुकान्त शैली के अनुकूल हिन्दी मे भी गद्य गीतो की रचनाएँ हुई। भारतेन्दु की चन्द्रावली का समर्पण इसका साक्षी है। यहाँ भी यह कथनीय है कि सस्कृत की विद्याओ और सस्कृत के शास्त्रीय तत्वो की और आलोचको का ध्यान अवश्य ही था। लक्ष्य ग्र थो मे जैसे सस्कृत की पृष्ठ भूमि विद्यमान थी वैसे ही लक्षण ग्र थ उसे अपनाये हुए थे। अ ग्रेजी के समान बुकरिव्यु, पत्र–पत्रिकाओ और व्यग्यात्मक प्रहारो का प्रचलन बढ गया था।

नवीन नामो को सस्कृत के आधार पर ग्रहण किया जा रहा था। उदाहरण के लिये अ ग्रेजी के शीन को सस्कृत के गर्भांग के रूप मे हिन्दी आलोचको ने स्वीकार किया। आलोचको और समालोचको मे देश प्रेम था और अपनी भाषा की उन्नति का वे भरसक प्रयत्न भी कर रहे थे। उनमे नवीनता का आग्रह बढ रहा था। कही–कही पुस्तको को छात्रोपयोगी बनाने के प्रयत्न भी चल रहे थे। तथ्य यह है कि सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल शास्त्रीय रचनाये करने वाले भी अग्रेजी आलोचना के कतिपय तत्वो और नवीनता के आग्रह को अपना रहे थे। नवीन शैली का आग्रह बढ रहा था। पुरातन से भी कम प्रेम नही था। अभी तक सभी नूतन और पुरातन शास्त्रीय तत्वो से पूर्ण परिचय नही हो सका था–परिक्षण काल चल रहा था। कोई आलोचक कही भारतीय पद्धति का अनुमरण करता तो अन्य समालोचक अ ग्रेजी का। इन विद्याओ का सुखद सामन्जस्य आगामी युगो मे देशकालानुसार होने लगा।

१—विस्तृत विवेचन के लिये देखिये हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्यय भारतेन्दु कालीन नाटको का विवेचन।

तृतीय प्रकरण

द्विवेदी युग 'क' भाग

(संवत् १९५७ से १९८५ तक)

सामान्य परिचय—

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गद्य को प्रौढता प्रदान की और रीति कालीन शृंगारिता जो भारतेन्दु युग को भी पार करके साहित्य मे आई थी उसे निष्कासित किया। काव्य को शुद्ध और सस्कृत रूप प्रदान करने वालो मे आचार्य का प्रमुख स्थान है। इनकी मान्यता थी कि कविता का विषय मनोरजन और उपदेश जनक होना चाहिये। "लेकिन कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका है। न परकीया पर प्रबन्ध लिखने की आवश्यकता है और न स्वकीया की गतागत की पहेली बुझाने की।"[1] इसमे इनके सस्कृत और अग्रेजी के ज्ञान ने सहयोग दिया। पत्र पत्रिकाओं की आलोचना पद्धति पर "बुकरिव्यु" की छाया दिखाई देती है किन्तु साथ ही उन्होने हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल देशकालानुसार आलोचना को सफल बनाने का सुष्ठु प्रयास किया। इसमे एक ओर जहाँ भारतीयता की पुकार थी वहाँ दूसरी ओर अग्रेजी आलोचको की व्यंग्य प्रहार की प्रवृत्ति भी थी। इतना होते हुए भी आलोचना को प्रौढता प्राप्त करनी थी। द्विवेदीजी और श्यामसुन्दर दासजी का पत्र व्यवहार इस पर प्रकाश डालता है।—

"लोगो को प्रसन्न रखना बडा कठिन है, अप्रसन्न करने मे विलम्ब नही लगता। समालोचनाओ को यथार्थ रूप मे ग्रहण करने से हम किसी को सतुष्ट नही कर सकेंगे, यद्यपि इसमे कोई सन्देह नही कि ऐसा करने से लाभ होगा। फिर भी यह मेरा विश्वास है कि हमारे समाज मे गिनती के दो एक लोग है जो निर्पेक्षता

१—रस रंजन पृष्ठ १५

पूर्वक आलोचना कर सके। इन सब बातों का बिचार करके हम लोगो ने अभी आरम्भ नही किया—परन्तु इसकी आवश्यकता जरूर स्वीकार करते है और एक स्वतन्त्र पत्र निकाल कर इस अभाव की पूर्ति का विचार रखते है।"[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी जी आलोचना को प्रौढ स्वरूप प्रदान करने की आकाक्षा रखते थे। वे पत्रकार के रूप मे भी आलोचना की सेवा करने को इच्छुक थे। उन्होने यह कार्य किया भी। इनकी विचार धारा का प्रभाव इनके सरस्वती सम्पादन के अन्त हो जाने पर भी चलता रहा।

द्विवेदी युग काल विभाजन—

द्विवेदी युग का आरम्भ सन् १९०१ से १९३० तक माना जाना चाहिये। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने इस प्रकार की मान्यता की पुष्टि कर साहित्यक काल विभाजन की प्रणाली को पुष्टता प्रदान की है। द्विवेदी जी ने सन् १९०१ [2] के आसपास साहित्य जगत मे पदार्पण किया था और सरस्वती का कुशल सम्पादन सन् १९०३ मे प्रारम्भ किया। वे इस काम को सन् १९२० तक करते रहे। उनके उक्त सम्पादन के (दस वर्ष) बाद तक उनकी ही धारणाएँ साहित्य जगत मे विकीर्ण होती रही। अतएव सन् १९३० तक द्विवेदी युग माना जाना चाहिये। अग्रेजी मे ऐलिजावैथ युग, ऐलिजावैथ के जीवन काल तक ही सीमित नही रहा है। चासर, ड्राईडन और पोप के कालो के बारे मे ऐसी ही धारणाएँ हैं। साहित्य मे कोई भी बाद, विचार धारा अथवा युगान्तर न तो व्यक्ति के उत्पन्न होते ही उत्पन्न होता है और न उसके अन्त के साथ ही समाप्त होता है। अतएव द्विवेदी जी के सरस्वती के सम्पादन के समाप्त होते ही साहित्य मे एकाएक एक युग का अन्त और दूसरे का समारम्भ नही माना जा सकता है। जो उनके युग को सन् १९३० तक नही मानते है उन्होंने भी उक्त काल तक उनकी समीक्षा शैली और समीक्षा

१—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—

२—डॉ० दीनदयाल गुप्त ने डॉ० उदयभानु सिंह की रचित आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग के उपोद घात में द्विवेदी युग का प्रारम्भ सन् १९०१ से माना है।

प्रणाली का चलते रहना स्वीकार किया है।[1] फिर भी यह तो मानना ही होगा कि हिन्दी आलोचना इतनी तीव्र गति से आगे बढ रही थी कि काल विभाजन अधिक स्पष्टता से नही हो सकता। इसी युग मे नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा शोधकार्य किया जा रहा था। मिश्र बन्धुओ की तुलनात्मक पद्धति प्रौढता प्राप्त कर रही थी और सूर्य नारायण दीक्षित जैसे आलोचक शेक्सपियर पर लिख रहे थे। द्विवेदी जी स्वयम् सस्कृत कवियो को प्रकाश मे लाने का प्रयत्न कर रहे थे।अ ग्रेजो की ऐसी ही सस्थाओ, अ ग्रेजी के ऐसे ही तुलनात्मक विवेचनो और विलियम जौन्स जैसे व्यक्तियो के प्रयास इन कार्यो के प्रेरणा श्रोत कहे जा सकते है। द्विवेदी जी का शास्त्रीय पक्ष सस्कृत काव्यशास्त्र के सन्निकट होते हुए भी अ ग्रेजी आलोचना से प्रभावित अवश्य ही था। अतएव वे अ ग्रेजी आलोचना ओर पाश्चात्य विद्वानो द्वारा प्रतिपादित प्रान्तीय भाग के गौरव को भी दृष्टि से ओझल नही कर सके। फलत उन्होने बगला और मराठी को भी महत्व प्रदान किया। उनका भारतीय सिद्धान्तो के प्रति श्रद्धालु होना उन्हे छाया वाद के प्रति उपेक्षा भाव वाला बनाने लगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा एवम् मार्ग निर्देषना मे हिन्दी कविता कामिनी ने पहली बार समर्थ भाव से अपने रूप और प्रोणो का नवीन सस्कार किया।[2] अतएव इस कार्य पर सस्कृत के सैद्धान्तिक पक्ष का प्रभाव माना जा सकता है। इस युग का सैद्धान्तिक पक्ष सस्कृत काव्यशास्त्र के रस, अलकार आदि सम्प्रदायो की छाया मे बढ रहा था और साथ ही उस पर अ ग्रेजी आलोचना की व्याख्यात्मक और व्यग्यात्मक पद्धति का भी प्रभाव था।

द्विवेदी युग-संस्कृत काव्यशास्त्र के परिपार्श्व में—

द्विवेदी जी ने मानस मे यद्यपि युग धर्म और सुधारवादी नैतिकता को स्थान दे रखा था किन्तु इससे वे अतीत की अवस्थाओ और सास्कृतिक आधार से विमुख नही हुए।[3] मुक्तक गीत काव्य से प्रबन्ध और महाकाव्य को श्रेष्ठतर मानना

१—डॉ० वैकण्ट शर्मा–आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास पृष्ठ १८५–१९७

२—डॉ० रमाशंकर तिवारी–प्रयोगवादी काव्य धारा पृष्ठ ४

३—पण्डित नन्ददुलारे बाजपेयी–आधुनिक हिन्दी साहित्य द्वितीय सस्करण पृष्ठ १२

इसका उदाहरण है। वे शुभ्रता और शुचिता के पुजारी थे। "कवि बनने के लिये सापेक्ष साधन" नामक निबन्ध मे इन्होने क्षेमेन्द्र के विचारो का स्पष्टीकरण किया है।

अम्बिका दत्त व्यास ने गद्य काव्य मीमाशा मे साहित्य दर्पण कार के आधार पर कथा और आख्यायिका का विषद् विवेचन किया।[1] सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने कवि और काव्य[2] मे सस्कृत शास्त्रीय सिद्धान्तो के अनुकूल कवि और काव्य की रूप रेखा प्रस्तुत की। द्विवेदी सुधाकर का हिन्दी साहित्य के आधार पर साहित्य को काव्य घोषित करता है। श्यामसुन्दर दास जी ने नाट्य शास्त्र निबन्ध मे दस रूपक की मान्यताओ को प्रतिपादित किया है। इस युग मे प्राचीन पद्धति की टीकाएँ भी प्राप्त होती है।

टीकाएँ—

आलोच्यकाल मे सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण और मतिराम के ग्र थो की टीकाओ का प्राधान्य रहा है लाला भगवान दीन और रत्नाकर जी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। सूर पच रत्न, बिहारी बोधिनी, केशव कौमुदी, प्रिय प्रकाश, प्रभृति ग्र थ इसके उदाहरण है। द्विवेदी जी ने सन् १८९१ मे पण्डित राज जगन्नाथ की पुस्तक भामिनी विलास का अनुवाद प्रस्तुत किया। सालिग्राम शास्त्री ने भी साहित्य दर्पण की टीका प्रस्तुत की जगन्नाथ दास कृत बिहारी रत्नाकर इस पद्धति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है।

काव्य के विभिन्न अगो के विवेचन के साथ काव्यशास्त्र का गहरा सम्बन्ध बना हुआ रहा। फिर भी आलोचना का माध्यम तक कभी-कभी अ ग्रेजी बनी रही। द्विवेदी जी की कालिदास की निरकुशता की आलोचना करते हुए लिखा गया, "यू कैन क्रीटीसाईज इट। योर क्रीटीसिज्मविल आफ्टर ओल बिकम ए ग्रेट ओब्सटेकल ....।"[3]

१—सन् १८७७ की काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका पृष्ठ ५३

२—सरस्वती—सन् १९०१—पृष्ठ ३२८

३—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र हिन्दी आलोचना उद्‌भव और विकास—पृष्ठ २४८

सस्कृत शास्त्रीय प्रणाली के अनुकूल भानु कवि का काव्य प्रभाकर प्रकाश मे आया। इसी भाति मित्र बन्धुओ का—सुखदेव बिहारी और प्रताप नारायण मिश्र का लिखा हुआ ग्र थ भी गुण अलकार रीति विवेचन आदि की दृष्टि से उल्लेखनीय है। हरदेव प्रसाद ने भी इसमे सहयोग दिया। उन्होने पिगल व छन्दपयोनिधि भाषा, कन्हैयालाल मिश्र ने पिगल सार, बल्देव प्रसाद निगम ने साभालकार और राम नरेश त्रिपाठी ने पथ प्रबोध तथा हिन्दी पथ रचना नामक पुस्तके लिखी। इन पुस्तको मे छन्द शास्त्र को विवेचना का विषय बनाया। इसी भाति अलंकार और रस के क्षेत्रो मे काव्य प्रकाश अलकार प्रबोध हिन्दी काव्यालकार भाषा भूषण और नव रस आदि उल्लेखनीय है।[1]

आलोचना शैली—

कवियो की भाषा शैली पर सस्कृत काव्य शास्त्रीय पदावली का प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा वे रस, अन्त करण, भाव, प्रभृति शब्दो का प्रयोग करते रहते है। जैसे .. कवियो का यह काम है कि वे जिस पात्र अथवा जिस वस्तु का वर्णन करते है उसका रस अपने अन्त करण मे लेकर उसे ऐसा शब्द रूप देते है कि ..... .[2] एवम् . .अन्त करण की वृतियो के चित्र का नाम कविता है। नाना प्रकार के विकारो के योग से उत्पन्न हुए मनोभाव जब मन मे नही समाने तब वे आप ही मुख के मार्ग से बाहर निकलने लगते है।[3]

इसी युग से भारतीय दृष्टिकोण से की गई आलोचना की आलोचना को आलोचको ने मुक्त कण्ठ से सराहा है।—

"शुद्ध भारतीय रूप मे समालोचक ने किसी पद या प्रबन्ध के अन्तर्गत रस, अलकार आदि सस्कृत के समालोचको की भाति विवेचना की है। यथा ... उपमानो की आनन्द दशा का वर्णन करके . खून ने अप्रस्तुत प्रशसा द्वारा राधा के अगो और चेष्टाओ का विरह मे द्युतिहीन और मद होना व्यजित किया है।"[4]

१—डॉ० उदयभानु सिह—महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग।
२—रसज्ञ रजन पृष्ठ ५३
४—वही—पृष्ठ ५३ से ६७
३—डॉ० उदयभानु सिह—महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग—पृष्ठ २५६

द्विवेदी जी के काव्य मे चमत्कार को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यह धारणा आचार्य कुन्तक के अनुकूल है। उन्होने चमत्कार को आवश्यक माना है। और उसके अभाव मे आनन्द का निषेध घोषित किया है।[1]

पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने भी वक्रोक्ति के महत्व को शास्त्रोक्त रूप मे स्वीकार किया है। इन्होने वक्रता को रस की जान और रस की खान कहा है।[2]

जगन्नाथ प्रसाद ने काव्य का प्राण परम्परागत सभी काव्य तत्वो के सम्मिलित स्वरूप को घोषित किया है। इन तथ्यो के होते हुए भी यह युग अंग्रेजी प्रभाव से अछूता नही रह सका है।

द्विवेदी युग-अंग्रेजी प्रभाव—

अब तक अंग्रेजी शासन और शिक्षा के कारण प्राचीन के प्रति प्रतिक्रिया होने लगी थी और सामाजिक बुद्धिवाद की ओर बढ रहा था। उपयोगिता वाद महत्ता प्राप्त कर रहा था। अतएव दृष्टिकोण मे परिवर्तन आना आलोचना का प्रौढतर होना स्वाभाविक और आवश्यक था। काव्य धाराओ का मार्ग दर्शन भी आलोचना करने लगी। अंग्रेजी के यथार्थ चित्रण ने रीतिकालीन प्रवृति की हीनता को प्रकट कर दिया।[3] अंग्रेजी के समान इस युग मे भी पफलेटियर्स जैसा सघर्ष चलता रहा। द्विवेदी जी और अयोध्या प्रसाद खत्री की आलोचनाएँ इसका उदाहरण है। सन् १९०१ मे बाबू श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी भाषा के सक्षिप्त इतिहास मे बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री के कार्यों का उल्लेख नही किया था। यह खत्रीजी को बुरा लगा। आचार्य द्विवेदी जी ने भी अपनी हिन्दी भाषा और उसका साहित्य शीर्षक लेख जब लिखा तो खत्री जी का नाम नही लिया। परिणाम यह हुआ कि आपस मे छोटी-छोटी बातो पर नुक्ता-चीनी होने लगी। अनिस्थिर शब्द को लेकर भी बहुत वादविवाद चला। अन्त मे बाबू बालमुकन्द गुप्त ने द्विवेदी जी से क्षमा चाही और द्विवेदीजी ने उन्हे गले से लगा लिया। ऐसा ही वाद विवाद विभक्तियो को लेकर भी चला। पण्डित जगन्नाथ प्रसाद, पण्डित अम्बिका प्रसाद

१—सचयन-पृष्ठ ६६-६७

२—बिहारी की सतसई-पृष्ठ २१७

३—डॉ० श्यामसुन्दर दास-हिन्दी साहित्य (१९४४) पृष्ठ १६१-६२

और गोबिन्द नारायण आदि विभक्तियों को शब्दों के साथ जोड कर लिखना चाहते थे। आचार्य शुक्लजी, लाला भगवान दीन और बाबू भगवान दास इसके विरोधी थे। आचार्य द्विवेदी यथा इच्छा और आवश्यकतानुसार कार्य करने के पक्षपाती थे। इन्होने आलोचना मे तुलनाओ द्वारा और भी प्रौढता लाने का प्रयत्न किया।

तुलनात्मक पद्धति—

इसी युग मे तुलनात्मक आलोचना और एक कवि को दूसरे से छोटा बडा सिद्ध करने की प्रवृति पाई जाने लगी। अब आलोचना मे तुलना को उल्लेखनीय स्थान दिया जाने लगा। भानु कवि ने काव्य प्रभाकर मे अग्रेजी के अलकारो को भी स्थान दिया। साहित्यक विद्याओ की भी तुलनाये की जाने लगी। गोपाल राम गहमरी का नाटक और उपन्यास इसका साक्षी है। कालीदास और शैक्सपीयर (मनोहरलाल श्रीवास्तव–विरचित) भी इसका उदाहरण है। उस काल के आलोचको ने गवेषणात्मक समालोचना को भी स्थान दिया। आलोचक यथा सम्भव कवियो की आलोचना करते और ऐतिहासिक आलोचना को भी दृष्टि पथ पर रखते थे। छन्नु लाल द्विवेदी ने कालिदास और शैक्सपीयर नामक पुस्तक लिखी। शुक्लजी की आलोचनाओ मे तुलनात्मक स्वरूप के सुन्दर रूप का चित्र पाया जाता है। यहाँ यह कहना अनुपपुक्त न होगा कि सूर और तुलसी आदि की तुलनायें ग्रियर्सन ने ही अपने इतिहास मे कर दी थी।[1]

टीकाओ मे भी अग्रेजो के द्वारा बताये गये पाठालोचना को महत्व मिला। अब अग्रेजी पुस्तको के सम्मान भूमिकाओं को स्थान दिया जाने लगा। शुक्लजी के जायसी ग्रथावली, तुलसी ग्रंथावली और भ्रमर गीत सार, प्रभृति ग्रंथ, प्रमाण स्वरूप देखे जा सकते है। अग्रेजो ने सस्कृत के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया था। और हिन्दी वालो ने उसे अपना लिया। अग्रेज कवियो से भी भारतीय की तुलनाएँ की गई।

काव्य के विभिन्न अगो—नाटक उपन्यास और कविता आदि की आलोचनाएँ की गई। काव्यशास्त्र के विवेचन मे भी पाश्चात्य समीक्षा की व्याख्यात्मक

१—किशोरीलाल गोस्वामी कृत–ग्रियर्सन के इतिहास का अनुवाद तुलसी का विवेचन।

प्रणाली ने प्रभूत्व जमा लिया अंग्रेजी आलोचना के प्रभाव स्वरूप हिन्दी आलोचना मे गाम्भीर्यता प्रादुर्भाव हुआ। श्री सूर्य नारायण दीक्षित लिखित सरस्वती मे प्रकाशित शैक्सपीयर की आलोचना उदाहरण स्वरूप पढी जा सकती है। द्विवेदी जी ने स्वयम् बेकन के ३६ निबन्धो का बेकन विचार रत्नावली नाम से अनुवाद किया। इन्होने नायिका भेद[1] और कवि कर्तव्य[2] मे नवीन युग की ओर सकेत करते हुए नायक–नायिका विवेचन की भरत्साला सी की। उन्होने कहा—

"इन पुस्तको के बिना साहित्य की कोई हानि न होगी। उल्टा लाभ ही होगा। इनके न होने ही से समाज का कल्याण है। इनके न होने ही से नववयस्क युवाजनो का कल्याण है। इनके न होने ही से इनके बनाने और बेचने वालो का कल्याण है।"[3]

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ—

अंग्रेज आलौचको और भावक सज्जनो ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लिखने की पद्धति को भी प्रभावित किया। भिन्न बन्धुओ ने इसमे सहयोग दिया।[4] प्रेम चन्द जी ने उपन्यास रचना मे अंग्रेजी आलोचना सिद्धान्तो के अनुकूल उपन्यास के तत्वो की विवेचना की। पद्मलाल, पुन्नालाल बक्सी ने विश्व साहित्य मे साहित्य को अंग्रेजी के लिट्चर का परियाय माना।

हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास[5] व अकबर के राजत्व काल के कवि[6] मे ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपनाया गया।

अंग्रेजी शिक्षा पद्वति मे उत्पन्न और विकसित शौध्कार्य ने भी इस युग मे महत्वपूर्ण कार्य किया। डॉ० पिताम्बर दत्त बडतवाल, डॉ० हीरालाल, डॉ० श्याम

१—सरस्वती–सन् १९०१ पृष्ठ १५
२—वही–पृष्ठ २३२
३—रसज्ञ रंजन पृष्ठ १६
४—माधुरी भाग १, खण्ड १, पृष्ठ ३५४
५—नाथुराम प्रेमी सवत् १९७३
६—मन्नन द्विवेदी–संवत् १९६० विक्रम।

सुन्दर दास, मित्र वन्धु, भगवान दीन जी और शुक्ल जी आदि की समीक्षाएँ इसके उदाहरण है। इस समय तक मुल्याकन की अपेक्षा जानकारी शोध ग्र थो मे अधिक रही। कारण भी स्पष्ट ही है। आज तो सामग्री के उपलब्ध हो जाने से मुल्याकन सम्भव है किन्तु उस काल तक आधार भूत सामग्री ही अधिकाशत अनुपलब्ध थी। अतएव उपरिकथित विद्यावानो ने सामग्री प्रदान कर हिन्दी साहित्य की प्रशसनीय सेवा की है। तत्कालीन पत्र पत्रिकाओ ने भी इसमे सहयोग दिया।

पत्र-पत्रिकाएँ और अंग्रेजी प्रभाव—

इस युग की पत्रिकाओ पर अग्रेजी प्रभाव परिलक्षित होता है। पत्रिकाओं के उद्भव और उनकी भाषा और विवाद पर पहले लिखा जा चुका है। अब तो यह स्पष्ट प्रयीत होने लगा है कि इस समय के कई विषय और उनकी भावनाएँ भी अग्रेजी से प्रभावित थी।[1] सौन्दर्य विवेचना और विश्लेषणात्मक तथा तथ्य निरूपणात्मक शैली भी अग्रेजी के अनुकूल है।

इस युग तक हिन्दी आलोचना का अग्रेजी से इतना निकट सम्पर्क हो गया था कि मिश्र वन्धुओ के हिन्दी नव रत्न की आलोचना मोड्रन रिव्यु मे छपी, और उसे युगान्तर कारी बताया गया। आज का आलोचक द्विवेदी जी की सरस्वती की पत्रिकाओ को अग्रेजी के समकक्ष रखने की आक्षाशा प्रगट करता है[2]। उसकी धारणा है कि द्विवेदी जी अग्रेजी आलोचको के समान एक श्रेष्ठ आलोचक थे।

अलंकार विवचन और अंग्रेजी प्रभाव—

आचार्य द्विवेदी जी ने नूतन अलकार सृष्टि का आदेश दिया। उनका मत था कि भारती को नवीन आभूषणो से अलकृत करने मे हमे सकोच नही करना चाहिये। फिर क्या कारण कि बेचारी भारती के जेवर वही भरत, कालीदास, भोज इत्यादि के जमाने के ज्यौ के त्यो रहे। इस नवीन सुझाव पर अग्रेजी का प्रभाव दिखाई देता है।

१—समालोचक सितम्बर, १६०२

२—डॉ० रबिन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव।

'ख' भाग

द्विवेदीजी संस्कृत प्रभाव—

सन् १८९६ मे नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे द्विवेदी जी ने कुमार सम्भव की भाषा विषयक लेख प्रस्तुत किया। जिसका अन्तिम भाग उत्तरार्थ, हिन्दोस्तान मे प्रकाशित हुआ। इससे इनकी सस्कृत साहित्य की ओर रुचि का परिचय प्राप्त होता है। यही क्यो इन्होने १८९७ से १८९८ तक कालीदास के ऋतु सहार को भाषा पर कई लेख लिखे। इससे ज्ञात होता है कि वे आलोचना क्षेत्र मे सस्कृत के उपजीव्य ग्रन्थो के साथ आये। साथ ही वे हिन्दी भाग का उत्थान चाहते थे और सम्भवत. इस कारण से उन्होने सस्कृत कवियो की भी भाषा की ओर अधिक ध्यान दिया। सन् १९०१ मे उन्होने हिन्दी कालिदास की आलोचना प्रकाशित करवाई। इस प्रकार उन्होने हिन्दी मे कालिदास की आलोचनाएँ प्रकाशित की। कालिदास के रघुवश और मेघदूत भी उनकी दृष्टि से बच नही सके। इसका उद्देश्य सस्कृत कवियो को प्रकाश मे लाने का था। उन्होने सस्कृत की आलोचना शास्त्रीय माप दण्डो के आधार पर की। जैसे दण्डी के आधार पर नैषिधि चरित् के सर्गों की लम्बाई को हेय बताया। इसी भाँति वे लिखते है कि विल्व ने विक्रमाक देव चरित्र को भी वेदर्भी रीति मे लिखा।[1] उन्होने १९०३ मे नाट्य शास्त्र का प्रणयन किया जो सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है। रसज्ञरजन मे वे छन्द मात्र को ही काव्य नही मानते। उन्होने उसमे अर्थ सौरस्य को प्राण माना है। उनके मत से रस ही काव्य का प्रभाव अङ्ग है। नाट्य शास्त्र और रसज्ञरजन की रचनाएँ सस्कृत आलोचना पद्धति पर आश्रित है।[2]

उनके आलोचनात्मक माप दण्ड पर काव्य प्रकाश, साहित्य दर्पण और ध्वनियाँ लोक की छाया है। वे औचित्य को बहुत महत्व देते थे और सामाजिक

१—विक्रमाक देव चरित चर्चा–पृष्ठ ७४

२—डॉ० उदयभानु–आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ ११९।

मे भी सहृदयता को आवश्यक मानते थे। उनके कवि बनने के सापेक्ष साधन, कवि और कविता और अन्य साहित्य सम्बन्धी निबन्ध सस्कृत के काव्य विमॉशा नामक ग्रन्थ से प्रभावित दिखाई देते है। उनके सिद्धान्त सस्कृत काव्यशास्त्र से अनुप्राणित थे। उन्होने सस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल हिन्दी मे भी लक्षण ग्रन्थो के निर्माण का आदेश दिया है। इन्होने रसज्ञ रजन नामक सकलन मे शास्त्रीय आधार का समर्थन किया है। भारतीय चित्रकला नामक निबन्ध मे इन्होने आनन्द को कला का चर्मोद्देश्य माना है।[1] वे कवियो को आदेश देते है कि उनके काव्य मे स्वभाविकता का समावेश होना चाहिये। बहुधा वे स्थान-स्थान पर सस्कृत की उक्तियो से अपना समर्थन करते चलते है।[2] वे अलकारो मे श्रद्धा अलकारो को शास्त्रानुकूल निम्न स्थान ही देते है।[3] उन्होने टीका पद्धति के अनुकूल श्लोक लिख कर उनके अर्थ भी दिये है। कविता की परिभाषा मे यह प्रभाव और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है।

कविता की परिभाषा—

द्विवेदी जी की कविता की परिभाषा मे भ्रान्ति और विषमृति शब्दो के प्रयोग पर पण्डित राज जगन्नाथ के विचारो की गन्ध आती है।[4] इन्होने सस्कृत के चमत्कारवादी सम्प्रदायो के अनुकूल कहा है—शिक्षित कवि की उक्तियो मे चमत्कार का होना परमावश्यक है। चमत्कार अलकार मूलक हो सकता है—वह अभिव्यक्ति मूलक एवम् औचित्य मूलक भी हो सकता है। इसकी पुष्टि उन्होने क्षेमेन्द्र के उदाहरण प्रस्तुत करके की है।[5]

साथ ही उनकी मान्यता है कि अग्रेजी का अन्धानुकरण हेय है। अग्रेजी के कला-कला के लिये वाले सिद्धान्त की प्रतिक्रिया भी दिखाई देती है। केवल कविता-कविता के लिये करना वे एक तमाशा मानते है।[6]

१—विक्रम चरित्र चर्चा-पृष्ठ ५६ और आलोचनांजली प्रथम निबन्ध
२—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र-हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २५१
३—वही पृष्ठ २५२
४—रसज्ञ रंजन पृष्ठ ५८
५—सचय-पृष्ठ १००,१०१,६६ और ६७
६—रसज्ञ रजन-पृष्ठ १५

काव्य की परिभाषाएँ—

उन्होने काव्य को मगलकारी माना है।[१] साथ ही वे रसागभूति पर भी बल देते रहे है।[२] और उसे आनन्द का कारण मानते हैं।[३] वे आलोचना करते समय सस्कृत ग्रथो के उद्धरण भी देते चलते है। हिन्दी कालिदास की आलोचना मे उन्होने वासव दत्ता का श्लोक उद्धृत किया है। इसी भाति कुमार सम्भव के प्रारम्भ मे वासव दत्ता, ऋतु सहार के मुख पर श्री कण्ठ चरित एवम् मेघदूत और रघुवश के प्रारम्भ मे शृ गार तिलक के श्लोक प्राप्त होते हे। हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग को समालोचना का प्रभाव भरतृंहरी के कथन से किया गया है। टीकाएं लिखते समय उसका उद्देश्य सस्कृत महत्ता को प्रतिपादित करना था। उनकी मान्यता थी कि सस्कृत ग्रथो की समालोचना हिन्दी मे होने से ही लाभ है कि समालोचित ग्रन्थो का साराश और उनके गुण दोष पढने वालो को विदित हो जाते है। ऐसा हो जाने से सम्भव है कि सस्कृत म मूल ग्रन्थो को देखने की इच्छा से कोई उस भाषा का अध्ययन करने लगे। अथवा उसके अनुवाद को देखने की अभिलाषा प्रकट करे अथवा यदि कुछ भी न हो तो सस्कृत का प्रेम मात्र उनके हृदय मे अकुरित हो उठे। इसमे भी थोडा बहुत लाभ अवश्य ही है।[४]

लोचन शैली—

द्विवेदीजी का लोचन शैली का अनुसरण करना तो अग्रेजी प्रणाली के अनुकूल ही माना जायगा। इस पद्धति मे अन्तः साक्ष और तुलतस को भी स्थान दिया गया है। यहा यही कहना उपयुक्त है कि इस शैली मे भी वे विषय की दृष्टि से सस्कृत ग्रथो पर, आधारित रहे है। यथा—मारवी को लिखना था महाकाव्य। पर कथानक इन्होने ऐसा चुना जिसके लिये विषय विस्तार के लिये यथेष्ट सुमिता न था।[५]

१—समालोचना समुच्य–हिन्दी नवरत्न पृष्ठ २२८
२—रसज्ञ रजन–पृष्ठ ५०
३—वही–पृष्ठ २६
४—विक्रमाक देव चरित चर्चा–पृष्ठ १
किरावार्जुनीय की भूमिका पृष्ठ २७ और ३०

पारिभाषिक शब्दावली—

द्विवेदीजी का आलोचक के रूप मे आगमन सस्कृत से अनुदित ग्र थो के द्वारा ही हुआ। द्विवेदी जी ने पारिभाषिक शब्दावली का समुचित उपयोग किया है। जैसे जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसमाजलि मे लिखते है कि जिनके हृदय कोमर हो चुके है अर्थात् अलकार शास्त्र की भाषा मे जो सहृदय है उन्ही को सरस काव्य के आकलन से आनन्द की यथेष्ठ प्राप्ती हो सकती है।[1] उन्होने आत्म विषयक निवन्धो के अतिरिक्त अपने को कही निवन्ध का केन्द्र नही माना है।[2] उन्होने अपने को बचा कर विषय का प्रतिपादन किया है। छन्द भी उनकी दृष्टि से ओझल नही पाये है।

छन्द—

द्विवेदी जी ने द्रुव विलम्बित स्नग्धारा और उपेन्द्रव ·····प्रभृति व्रतो को अपनाया। और घोषणा भी की कि–दोहा, चौपाई, शोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी मे बहुत हो चुका। कवियो को चाहिये कि यदि वे लिख सकते है तो इनके अतिरिक्त और भी छन्द लिखे।[3] इस परिवर्तन की प्रेरणा अग्रेजी के ब्लैक वर्ष से मिली होगी और जब सस्कृत मे भिन्न तुकान्त छन्द विद्यमान थे ही तब इस नवीन शैली को अपनाने मे सस्कृत के आधार ने भी सहयोग दिया होगा।

इस प्रकार जहाँ द्विवेदी जी सस्कृत काव्य शास्त्र से प्रभावित थे वहाँ वे अग्रेजी की नवीनता को भी स्वीकार करते थे। आगामी विवेचन इसे स्पष्ट कर देगा।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है द्विवेजी ने कालिदास की आलोचनाएँ प्रारम्भ की। इस मनोवृत्ति पर विल्यम जौन्स द्वारा कालीदास को दी गई महता का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनका भाषा विषयक विवेचन भी अग्रेजी प्रभाव से

१—सरस्वती अगस्त १६२२

२—डॉ० उदयभानुसिह–आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ १५८

३—रसज्ञ रंजन–पृष्ठ ३

अछूता नही रह सका है । भाषा के सुधार की ओर भी ज्ञान अग्रेजो के प्रेरणा से लाभान्वित हो रहा था । भाषा शुद्धि के आन्दोलन मे द्विवेजी ने प्रमुख हाथ बढाया ।

कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता मे पुरातन सामग्री को आधुनिक रीति मे देखने का प्रयत्न किया गया हैं । अवतक अग्रेज साहित्य बन्धुओ ने सस्कृत की महत्ता को प्रतिपादित करने का स्तुत्य प्रयास कर ही लिया था, अतएव हिन्दी वाले भी इस ओर आकार्षट हुए और द्विवेदी जी ने सस्कृत के ग्र थो के उद्धार और विश्लेषण की महान सेवा की ।

वे छन्दो, अलकारो और व्याकरण निबन्धो को आलोचना के विषय बनाते थे किन्तु वे शास्त्रीय नियम पालन मात्र को ही कविता नही मानते थे । इस दृष्टि से उन्होने रीतिकालीन काव्य की बहुत आलोचना की ।[१]

उनकी हिन्दो शिक्षावली भाग तीन की समालोचना उन्हे अंग्रेजो के प्रति दृष्टकोण को बताती है ।[२] उन्होने सिद्ध कवियो के लिये छन्द नियम अनिवार्य नही माने है । किन्तु साधारण कवियो के लिये उसे आवश्यक समझा है । इससे ज्ञात होता है कि उन्होने सस्कृत और अंग्रेजी कवियो के सिद्धान्तो का सामन्जष्य करने का प्रयत्न किया । उन्होने पदान्त मे तुक के अभावो को भी स्वीकार किया । यह स्वीकारोक्ति इस बात की परिचायक है अंग्रेजी की ब्लेशवर्स ने सम्भवतः उन्हे सस्कृत वर्णवनो की ओर आकर्षत होने मे सहायता प्रदान की । अग्रेजी आलोचना के समान उन्होने मनोरजन और उपदेश दोनो को ही काव्य मे आवश्यक माना ।[३] उन्होने कवियो के विषय का भी विस्तार किया । उनकी मान्यता थी कि कुछ भी विषय व्यक्ति या स्थान कविता मे स्थान प्राप्त कर सकते है । वे यह चाहते थे कि सस्कृत शास्त्रकारो को अध्ययन कर नवीन और देश कलानुसार काव्य शास्त्रीय ग्र थो का निर्माण हो । द्विवेजी ने गद्य और पद्य की भाषा को मिटा कर आतुकान्त

१—रसज्ञ रंजन—पृष्ठ ११ एव साहित्य सन्देश पृष्ठ ३०१ सन् १९३९
१—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २६८ एव सरस्वती सन् १९०१ पृष्ठ १९५ ।
3— Horace—"The aim of poetry is to instruct and delight."—

कविता को महत्व देने की बात कही। इस मे वे अग्रेजी प्रभाव से अछूते नही रह सके है। भाषा भेद को मिटाने की धारणा पर वर्डसवर्थ की मान्यताओ का प्रभाव प्रतीत होता है।[1] रसज्ञरजन मे उन्होने इसका प्रतिपादन किया है। डॉ० मनदुलारे वाजपेयी का कथन है कि यह भाषा जीवन से ओतप्रोत थी जिसके कारण यह अग्रेजी भावो और शैली के प्रभाव से अवश्य ही प्रभावित हुई। अग्रेजी आलोचना के समान उन्होने पुस्तकाकार आलोचना की शैली को सबल बनाया। काव्य के विभिन्न अगो का अंग्रेजी के समान विवेचन करना प्रारम्भ किया। उन्होने मिलटन के समान सादगी गाभीर्य और जोश को कविता मे अनिवार्य माना। उन्होने कविता के लिये पोयट्री शब्द का और पद्य के लिये वर्स का प्रयोग किया। यह शब्द निसदेह इस बात के द्योतक है कि उन्होने अ ग्रेजी मान्यताओ के आधार पर हिन्दी की आलोचना को समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया। अन्त साक्ष्य के आधार पर कवियो का जीवन लिखने का प्रयत्न भी विदेशी देन ही था। पुस्तको की प्रामाणिकता प्रतिपादन करने मे और शोध कार्य को महत्ता देने मे भी अग्रेजी काव्यशास्त्र को प्रेरणा स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है।

यह तो पहले कहा जा चुका है कि नाट्य शास्त्र और रसज्ञ रजन के रचनाएँ आचार्य पद्धति पर आधृत है। किन्तु उनमे भी अग्रेजी आलोचना के समान व्यावहारिक पक्ष को महता दी गई है। उनकी मान्यता थी कि छन्द, अलकार, व्याकरणादि को गौण बाते हुई उन्ही पर जोर देना अविवेकता के प्रदर्शन के सिवाय और कुछ नही।[2] उन्होने तो नाट्यकला के उद्देश्य, "मनोरजन और उपदेश दोनो ही माने है।"[3] इस पर होरेस का प्रभाव परिलक्षित होता है साथ ही सस्कृत साहित्य की शुद्धता और रस को ब्रह्मानन्द महोदर कहने की धारणा की भी पुष्टि होती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि अ ग्रेजी नियमो ने उन्हे भारतीय शास्त्रीय स्वरूप को अपनाने मे बहुत कुछ सहयोग दिया।

जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाते है द्विवेदी जी ने कविता को नायक नायिका रस और अलकार एव प्राचीन विषयो तक ही सीमित नही रखा।

१—शान्तिगोपालसवर्डसबेर्थ के काव्य सिद्धान्त

२—तिचार विमर्श—पृष्ठ ४५

३—नाट्यशास्त्र—पृष्ठ ५७

उनकी मान्यता थी कि यमुना के किनारे कलीकौतूहल बहुत हो चुका है ।[1] अतएव यथार्थ और पवित्र जीवन का चित्रण होना चाहिए । उन्होने तो कहा व्यग्य चित्र भी प्रकाशित किये जिससे काव्य विषय का विस्तार हुआ और उन पर अ ग्रेजी की व्यज्ञ प्रणाली का प्रभाव दिखाई देने लगा ।

कविता कर्तव्य नामक शीर्षक के अत मे उन्होने निम्नाकित निष्कर्ष प्रदान किये ।—"यदि आजकल की कविता मे नीचे लिखे गुण हो तो सभवत: वह लोक-प्रिय होगी ।

(क) कविता मे साधारण लोगो की अवस्था, विचार और मनोवृत्तियो का वर्णन हो ।

(ख) उसमे धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि गुणो के उदाहरण हो ।

(ग) कल्पना, सूक्ष्म और उपमाधिक अलकारो से गूढ न हो ।

(घ) भाषा सहज, स्वाभाविक और मनोहर हो ।

(च) छन्द सीधा, परिचित सुहावना और वर्णन के अनुकूल हो ।[2]"

वेर्डसवेर्थ ने छन्द रूढि का बहिष्कार किया । वे भाषा की तडक–भडक के विरोधी थे । और उन्होने ग्रामीण जीवन की सादगी को महता दी थी । वे भाव-सबलता, सवेदनशीलता, भाव प्रकटीकरण, पटुता और स्वाभाविक भाषा शैली के समर्थक थे ।[3,4] अतएव द्विवेदी जी के कथन पर अ ग्रेजी का वेर्डसवेर्थ का प्रभाव दिखाई देता है । उपरिकथित विषय विस्तार की भावना और सस्कृत के नियम से परे जाने की भावना पर वेर्डसवर्थ के प्रभाव के साथ एक और अन्य तत्व उल्लेखनीय है । द्विवेदी जी को इन बातो को अपनाने मे सामयिक परिस्थितियो और रीतिकालीन अति शृ गारिता तथा जीवन के विलासमय चित्रण की निकटता ने भी सहयोग दिया ।

१—रसज्ञर जन पृष्ठ ११

२—डॉ० रवीन्द्र सहाय वमा–पाश्चात्यालोचन मौर हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ ६३–१०० एव महावीर प्रसाद द्विवेदी रसज्ञर जन–पृष्ठ १९

३—वेर्डसवेर्थ थियोरी ओफ डिक्शन–पृष्ठ २,५,६ और ३५

४—शान्तिगोपाल–वेर्डसवर्थ के काव्यसिद्धान्त–पृष्ठ १,३,५

अग्रेजी आलोचना के प्रभाव स्वरूप हिन्दी मे भी ऐतिहासिक विवेचनापूर्ण ग्र थो का निर्माण प्रारम्भ हुआ था। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सेवाएँ इस दृष्टि से सराहनीय है। इसी मे साहित्यक और ऐतिहासिक सामग्री के समन्वय का प्रयास किया गया था।

द्विवेदी जी ने अ ग्रेज महानुभावो को हिन्दी समृद्ध बनाने की बाते भी लिखी उन्होने आर० पी० ड्यूहर्स्ट को एक पत्र मे लिखा कि—

"हमारे देशबन्धु अग्रेजी ऐसी क्लिष्ठ भाषा लिख कर साहित्य को तो गदला करते है पर अपनी मातृ भाषा के लिखने की चेष्टा नही करते। यह दुरभाग्य की बात है। क्या ही अच्छा हो तो यदि आप मातृ भाषा विषयक मनुष्य का कर्तव्य या इसी तरह के किसी और विषय पर हिन्दी मे एक लेख लिख कर इन लोगो को लज्जित करे। डॉ० ग्रीर्यसन से हमने प्रार्थना की थी उन्होने शालीनता पूर्वक उत्तर दिया कि हिन्दी मे उनकी यथेष्ठ गति नही है।[1] इससे ज्ञात होता है कि अग्रेजो ने हिन्दी भाषा की उन्नति मे भी सहयोग दिया।[2]

यह द्विवेदी जी के हिन्दी प्रेम का परिचय है कि वे हिन्दी की सेवा तो अ ग्रेजो से चाहते थे किन्तु स्वय कई वार अग्रेजी मे आये हुए पत्रो पर नो रिप्लै लिख देते थे। कालान्तर मे उन्होने अपनी इस धारणा मे परिवर्तन भी किया। फिर भी उनकी मान्यता थी कि अपनी भाषा की उन्नति से हमे परमानन्द होता है। एक ही प्रान्त के रहने वाले लोगो का अ ग्रेजी मे बातचीत करना भी उन्हे अखरता था। वे तो स्पष्ट लिख देते है कि अपनी मा को निस्सहाय, निरूपाय और निर्धन दशा मे छोड कर जो दूसरे मनुष्य की मा की सेवा करता है उसे प्रायश्चित करना चाहिये।[3]

१—६,३ १९०७ को लिखित द्विवेदीजी के पत्र सख्या ६४७ काशीनागरी प्रचारणी सभा कार्यालय।

२—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ ५९

३—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आनतुर अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष पद से द्विवेदी जी का भाषण—पृष्ठ २३

उनकी व्याबहारिक आलोचना मे वे किसी भी शास्त्रीय सम्प्रदाय को स्थान नही देते है। इस प्रकार का प्रतिपादन अ ग्रेजी साहित्य के अनुकूल है।

निबन्ध—

द्विवेदी जी के कई निबन्ध अ ग्रेजी निबन्धो के समान पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए। यही क्यो निबन्धो के रूप मे लिखी गई भूमिकाये निश्चित रूपेण अग्रेजी की भूमिका पद्धति से प्रभावित है। रघुवश, किरताअर्जु नीय और स्वाधीनता आदि की भूमिकाये इसकी पुष्टि करती है। इसी भाँति पुस्तकाकार निबन्धो का सकलन और उनका तन्त्र अ ग्रेजी के निबन्धो के सकलनो से प्रभावित दिखाई देते है। इसके साथ ही अ ग्रेजी का प्रभाव इनकी पत्रिका मे अ ग्रेजी से अनूदित किये गये अ शो के द्वारा प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता है।

पत्रिका में अनूदित अंश—

सरस्वती के प्रथम अ ग मे ही सिबलीन–शैक्सपीयेर का नाटक का अनुवाद किया गया था। यही क्यो प्रति मास यथा सम्भव अ ग्रेजी पत्रो से सकलित सामग्री भी इसमे प्रकाशित होती थी।[1] इसके साथ ही केरल कोकिले (मराठी), प्रवासी (बङ्गला) और मोर्डन रेवेव्यु का प्रभाव सरस्वति पर बहुत रहा है।[2] मोर्डन रेव्यू की चित्र प्रकाशन शैली ने इन्हे बहुत प्रभावित किया। उपरिकथित व्यग चित्र की प्रेरणा भी इन्हे उससे प्राप्त हुई। चित्रो की कल्पना तो युग सापेक्ष्य है किन्तु व्यग प्रहार की प्रवृति अ ग्रेजी साहित्य की देन है।[3] यहाँ यह भी कहना उपयुक्त होगा कि सरस्वति के कई व्यग चित्र तो मोर्डन रेव्यु से ही ले लिये गये प्रतीत होते है। उदाहरण के लिये सरस्वती के शिवाजी—सितम्बर १९०७ और रतिविलाप १९१५ क्रमश मोर्डन रेव्यू के मई और जून १९०७ से लिये गये है। द्विवेदी जी स्वय प्रसिद्ध पत्रो के अध्ययन करते थे और उनकी अच्छाईयो को अपनाने का भी प्रयत्न करते थे। सावत्सरिक सिहावलोकन इसका ज्वलत उदाहरण है।[4]

१—रसज्ञर जन–२७ से ४०

२—उदयभानुसिंह–आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ १८३

३—वही–पृष्ठ १८०

४—सरस्वती सख्या १२ भाग ५

निष्कर्ष—

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि द्विवेदी जी ने सस्कृत और अग्रेजी दोनो ही काव्यशास्त्रो से ज्ञानराशि प्राप्त की। उन्होने सस्कृत के अनुकूल जहाँ काव्य का उद्देश्य आनन्द माना वहाँ कविता मे सादगी, असलियत और दोष को भी मिलटन के अनुसार स्वीकार किया।

उनके निम्नाकित कथन इसकी पुष्टि करते है—

"जो सिद्ध कवि है वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करे, उनका पद्य अच्छा ही होता है, परन्तु सामान्य कवियो को विषय के अनुकूल छन्द योजना करनी चाहिये।"[1]

इस सम्बन्ध मे डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी की धारणा महत्वपूर्ण है— द्विवेदी जी और उनके अनुयाइयो का आदर्श यदि सक्षेप मे कहा जाय तो समाज मे एक साहित्यक भाव की ज्योति जगाना था। दीनता और दरिद्रता के प्रति सहानुभूति, समय की प्रगति का साथ देना, शृगार के लिये विलास वैभव का निश्रेय, ये सब द्विवेदी युग के आदर्श थे।[2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका के कई निबन्ध विषय की दृष्टि से सस्कृत ग्रथो पर आधारित थे। इसी भाति सरस्वती के निबन्ध भी प्राचीन भारतीय ग्रथो पर आधृत थे। द्विवेदी जी काव्य शास्त्रीय ग्रथो के प्रणयन की आकाक्षा रखते थे। वे चमत्कार और औचित्य के साथ अलकारो के सदुपयोग के समर्थक थे। काव्य की परिभाषा मे उन्होने भारतीय और मिल्टन की मान्यताओ का समावेश किया। उनकी काव्य की परिभाषा—

"कविता करने मे अलकारो को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिये। विषय वर्णन के झोके मे जो कुछ मुख से निकले उसे ही रहने देना चाहिये।"[3] पर वर्डसवर्थ की निम्नाकित परिभाषा का प्रभाव है—

१—रसज्ञ रंजन पृष्ठ २

२—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—

३—रसज्ञ रजन पृष्ठ ६

"पोइट्री इज दी स्पोण्टेनियस ओवर फ्लो आफ पोवरफुल फीलिंग"[1] इन्होंने अपने कवियो की जीवनियो मे डॉ० जोहसन की "लाइव्ज ओफ पोइट्स" से प्रेरणा प्राप्त की होगी।

वे हिन्दी को समुचित आदर प्राप्त करने न देख कर खिन्न भी होते थे। उन्होने व्यवहारिक आलोचना और व्यग चित्रो मे हिन्दी की उन्नति का प्रयत्न किया। सस्कृत काव्य शास्त्रो के अनुकूल द्विवेदी जी की लेखनी ने महेश शतक जैसे सूक्ति पद्धति के समान लेख प्रद्धति किये। उन्होने सस्कृत की खण्डन पद्धति और लोचन पद्धति को भी स्वीकार किया [2],[3] बेकन के निबन्धो के अनुवाद से आपने हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया।

अग्रेजी आलोचना के समान तुलनात्मक और एतिहासिक आलोचनाओ से इन्होने हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की। सम्पादक के रूप मे उनके द्वारा प्रकाशित व्यग 'मोर्डन रिव्यु' का स्मरण दिखाते है। द्विवेदी जी ने अग्रेजी की ब्लैक बर्स के समान सस्कृत के आधार पर भिन्न तुकान्त छन्दो को अपनाने की आकाक्षा प्रकट की। प्राचीन ऋषियो को नवीन दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया। भाषा के सुधार की ओर भी इन्होने ध्यान दिया। 'वड्सवर्थ के समान गद्य और पद्य के भेद को मिटाने की अभिलाषा भी इनमे थी। काव्य विषय विस्तार का आपने आदेश दिया और अग्रेजी पढे लिखे लोगो मे हिन्दी के प्रचार का कार्य किया। इस सम्बन्ध मे अग्रेजो को पत्र लिखे और उन्होने स्वय यथा सम्भव अग्रेजी भाषा मे पत्र व्यवहार नही किया। ज्ञान वृद्धि की दृष्टि से अग्रेजी आलोचना के अनुदित अशो तक को अपनी पत्रिका मे स्थान दिया। एतिहासिक और गवेषणात्मक आलोचना को भी इन्होने समुचित आदर दिया।

उस समय तक हिन्दी का सैद्धान्तिक निरूपण कवि शिक्षा से आगे तथ्य निरूपण की ओर बढ रहा था।[4] उसमे अग्रेजी आलोचना के चरम विकास तक

१—इगलिश क्रीटिकल एसेज–१६ वीं शदी, पृष्ठ ५

२—कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता मे प्रथम प्रकार की ओर नैशद चरित्र की

३—आलोचना में द्वितीय शैली प्राप्त होती।

४—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र–हिन्दी आलोचना उद्‌भव और विकास–पृष्ठ २७३

पहुँचने की आकाक्षा थी। वह चरम विकास तक पहुँचने का राही था, जिसमे लक्ष्य ग्र थो को विकसित करने और सस्कृत की आधार भित्ति को ग्रहण करने की कामना थी। तत्कालीन आलोचक एक और सुरुचि, रस, अलकार और शास्त्रीय नियमो को महत्व देते थे वही दूसरी ओर वे यथार्थ जीवन की गहराई, तुलना, तत्कालीन परिस्थितियो का दिग्दर्शन और साहित्यक सौन्दर्य आदि को भी महत्व देते थे। वे अपने को तटस्थ रखने का भी प्रयत्न करते थे—विभक्तियो के सघर्ष मे द्विवेदी जी का भाग न लेना इसका उदाहरण है। वे तो अपनी भाषा को समृद्ध बनाने चाहते थे और सहयोग उसमे सस्कृत तथा अग्रेजी दोनो का ही लेते थे। इस लिये कभी किसी साहित्य की विशेषता ग्रहण करते तो कभी किसी की। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि वे पद्धतियाँ जो दोनो मे उभयनिष्ट थी, अपनी जडे गहरी करने लगी। द्विवेदी जी तो सत्यनिष्ट और निर्भीक आलोचक थे। अतएव कई व्यक्ति उनके शत्रु तक बन गये।[1] वे परम्परागत भारतीय समालोचना को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और नवीन आलोचना प्रणाली को भी उचित आदर देते थे। जहाँ वे अ ग्रेजी पद्धति को अपनाते वहा वे पौर्वात्य अध्ययन को भी महत्ता देते थे। उदाहरण के लिये द्विवेदी जी ने दोषो का विवेचन तो परम्परानुकूल किया उसमे तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार भाषा दोष परिहार पर विशेष बल दिया।[2] इससे यह प्रतीत होता है कि द्विवेदी जी जागरुकता पूर्वक एक और जहाँ परम्परानुयायी हैं वहाँ दूसरी ओर बर्तमान आवश्यकताओ की पूर्ति का ध्यान रखते है। वे अन्धानुकरण को हेय समझते है बजोस्तुत्य है।

सर्व श्री मिश्र बन्धु (गणश, श्याम और सुखदेव विहारी)—

मिश्र बन्धुओ का प्रारम्भ काल द्विवेदी जी के समवृति काल १९०१ से माना जाना चाहिये। इन्हे अ ग्रेजी और सस्कृत का सम्यक ज्ञान था और इन्होने हिन्दी मे अंग्रेजी के अनुकूल शौद्धपरक ग्रथो का निर्माण करना चाहा। वे ऐतिहासिक समालोचना पद्धदि के मूलाधार थे। जिसके उद्भव का श्रेय अ ग्रेजी

१—डॉ० उदयभानु सिंह–आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ.४७

२—डॉ० मनोहर काले–आधुनिक हिन्दी मराठी काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ४६२।

समीक्षा सिद्धान्त की है। इन्होने हिन्दी साहित्य का विभाजन पूर्वारम्भिक, उत्तरारम्भिक, पूर्व माध्यमिक, प्रौढ माध्यमिक पूर्व आलकृत परिवर्तन काल तथा वर्तमान काल धामो से किया। इममे भी इन्होने सेनापति काल, भूषण काल, बिहारी काल, देव काल और रामचन्द्र काल आदि भेद किये। ये भेद अ ग्रेजी के इतिहास ग्र थो के समान है। उदाहरण के लिये अ ग्रेजी मे ओल्ड ऐज, मिडिरियल ऐज और मोड्रन ऐज आदि प्राप्त होते है। साथ ही इनके अन्तर्गत ऐज औफ चौसर ऐज ओफ शैक्सपियर और ऐज औफ ड्रईडन मिलते है। अतएव यह स्पष्ट रूप से इनके काल विभाजन पर अग्रेजी साहित्य का प्रभाव है। साथ ही उनके सिद्धान्त सस्कृत के लक्ष्य लक्षण ग्रंथो पर भी आधारित दिखाई देते है। उन्होने सस्कृत काव्य शास्त्रकारो के अनुकूल माना कि समालोचना मे मुख्य वर्णन कवि का हाना चाहिये और उसी की रचना के साथ जहाँ कही अच्छे सिद्धान्त निकले उनका सूक्ष्मता पूर्वक विवरण लिख देना चाहिये। तरक के अभाव मे दी गई आलोचक की सम्मत्ति का भी ये विरोध करते है।[1] इन्होने अपने तर्क, अनुभव और अध्यय नके आधार पर आलोचना के मान दण्ड स्थापित किये जिनकी आलोचना शुक्लजी और द्विवेदी जी ने की।[2] मिश्र बन्धुओ ने दोषो की अपेक्षा गुणो को अधिक महत्व दिया फिर भी इनकी रचनाओ मे द्विवेदी जी की परिचयात्मक और निर्णयात्मक पद्धति के दर्शन होते है। साथ ही नागरिक प्रचारिणी सभा की ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक पद्धति भी इनकी आलोचना मे पाई जाती है।[3] इमसे हम कह सकते है कि इनकी आलोचना मे सस्कृत के शास्त्रीय तत्व भी दिखाई देते है। इन्होने रस अलँकार छन्द और शब्द शक्ति के आधार पर सस्कृत काव्य शास्त्रो के उदाहरण देकर अपनी आलोचना को पुष्ठ बनाया। उदाहरण के लिये निम्नांकित कथन देखिये—देव की आलोचना करते समय इन्होने कहा है कि यह रूप घनाक्षरी छन्द है। जिसमे ३२ वर्ण होते है और प्रथम यति सोलहवे वर्ण पर होती है। "इसमे मृग लोचनी मे धर्मोपमा, लुप्तोमा

१—मिश्र बन्धु विनोद, चतुर्थ भाग–प्रथमा वृत्ति–सवत् १९९१ पृष्ठ १६५

२—डॉ० बैकट शर्मा–आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास पृष्ठ २१५

३—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास– पृष्ठ २७७

है। गोरौ–गोरौ मुख आजु औरो सो बिलानु जात मे गौणी सारोपा प्रयोजन वति लक्षणा एवम् पूर्णोप्मालकार है। रति भाव इसके शृ गार रस का मूल है। यहाँ मुग्धा कल्हानतरिता नायिका है।[1]

इन्होने शैक्सपियर की भी रस की दृष्टि से आलोचना की है। जिसमे टीकाओ की सी गन्ध आती है। रीति कालीन कवियो की आलोचना मे शास्त्रीय पद्धति को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। मिश्र बन्धु विनोद की भूमिका मे रस गुण, अलकार, पिगल, गण–गण और शब्द शक्तियो का विवेचन किया गया है। वे रस को ही काव्य की आत्मा मानने के पक्ष मे है।[2] इन्होने मम्मट, पण्डित राज और विश्वनाथ प्रभृति सस्कृत आचार्यो की परिभाषाएँ भी दी है। ये भाषा के गुण और अलकारो के निर्देश सस्कृत शास्त्र कारो के अनुकूल देते है। उदाहरण के लिये निम्नाकित कथन देखिये—

प्रसाद समता, माधुरी सुकमारता, अर्थ व्याप्ती, समाधि, कान्ती और उधारता नामक गुण देव की रचना मे पाये जाते है। कही–कही ओज का भी चमत्कार है। पर्यायोक्ति, शुद्धिमिता, सुशब्दता, सक्षिप्तता, प्रसन्नता आदि गुणो की आपकी रचना मे बहार है।[3]

कवियो की विशेषता का निरूपण करते समय इन्होने शास्त्रीय आधार ग्रहण किया है। भाषा के गुण और अलकार का विवेचन करते हुए पूर्व ध्वनि कालीन एवम् परवर्ती कलाकारो का आधार लिया है। इनका निर्णय शास्त्रीय सिद्धान्तो पर आधारित होता है। निर्णय मे सर्वदा सिद्धान्तो को महत्ता दी जाती है। तुलना करते हुए भी यह निर्णय की ओर बढते है। मिश्र बन्धुओ ने अलकारो की अनिवार्य स्थिति पर बल दिया है। इनकी मान्यता है कि—जी नही चाहता कि जहाँ केवल अलकार होगा वहाँ भी काव्य ही होगा।[4] अलकारो के वर्गीकरण को

१—मिश्र बन्धु विनोद–पृष्ठ ३६,४२

२—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र–हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास–पृष्ठ २८५।

३—हिन्दी नव रत्न–पृष्ठ २०० से ३११।

४—साहित्य पारिजात–पृष्ठ ४६ एवम् ४२।

ये दुषाध्य मानते है। इन्होने कहा है—"अलकारो के वर्गीकरण का भी प्रयास किया गया है। और हमने भी इस पर श्रम किया किन्तु यह ठीक बैठना नही क्योकि एक अलकार के विविध भेद हैं और कही–कही वही अलकार पृथक वर्गो मे पडने लगता है।[१]

इनकी आलोचना मे निम्नाकित अग्रेजी प्रभाव भी प्राप्त होता है। कृष्ण बिहारी मिश्र का चन्द्रावली चमत्कार अग्रेजी के भूमिका का सा प्रतीत होता है।

मिश्र बन्धुओ ने उत्तर नूतन काल मे छाया बाद को भी विवेचन की सामग्री बनाया है। इन्होने अग्रेजी साहित्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि हमारा साहित्य पिछडा हुआ है और उसकी समृद्धि आलोचना को प्रौढ बनाकर करनी चाहिये। इनकी मान्यताएँ तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर स्थित प्रतीत होती है।[२] इनका नव रत्न अग्रेजी पुस्तको के समान भूमिका से विभुवित है। प्रत्येक कवि का जीवन परिचय भी दिया है जो अग्रेजी के जीवनी साहित्य के अनुकूल दिखाई देता है। ऐसा जीवनी पर विवेचन सस्कृत साहित्य मे नही किया जाता था। हिन्दी मे भी इतनी सागो–पागो विवेचना और इतनी समयक व्याख्या पहले नही हुई थी।

मिश्र बन्धुओ ने जो कवियो का श्रेणी विभाजन किया उसका भी कारण सम्भवत यह हो सकता है कि अग्रेजी मे शैक्सपियर को प्रथम श्रेणी का कवि कहा जाता है। अग्रेज आलोचको ने सस्कृत के कवियो मे, भी कालीदास को फष्ट रेट पोयट् कहा है। ग्रियर्सन ने तुलसी की महत्ता वैसी ही शैली मे प्रतिपादित की। इससे मिश्र बन्धुओ ने हिन्दी कवियो को वैसे ही क्रम मे रखने का प्रयत्न किया। कवियो की सख्या मे जो सख्या वृद्धि हुई उस पर भी अनुमानत. सलेक्टेड वर्क्स ओफ १६ वी शताब्दी जैसी रचनाओ ने प्रभाव डाला होगा। इन्होने आलोचना मे समिलित प्रभाव को—जिसे टोटेलिटी ओफ इफेक्ट का अनुवाद कहा जा सकता है को स्थान दिया। आलोच्य वस्तु के सन्देश और अभिव्यक्ति शौष्ठव को इन्होंने समीक्षा का आधार माना। इन्होने हिन्दी कवियो और कालो की अग्रेजी के

१—साहित्य पारिजात–पृष्ठ ६६।

२—मिश्र बन्धु–हिन्दी नव रत्न की भूमिका–पृष्ठ ३२।

कवियो और कालो से तुलना की है। उदाहरण के लिये भक्ति काल की तुलना अ ग्रेजी के रिनेसैन्श और रिफोरमेशन से की। रीति काल को आगष्टन ऐज कहा। चन्द और चौसर की तथा शैक्सपीयर और तुलसी की भी आलोचना की। सरस्वती मे इनकी आलोचना को अग्रेजी आलोचना से प्रभावित बताया गया।

नव रत्न मे की गई आलोचना ठीक वैसी ही समालोचना है।[1] जैसी अग्रेजी समालोचको द्वारा की गई शैक्सपियर मिल्टन और इत्तर कवियो के काव्य की समालोचनाएँ है। आज भी यह कहा जाता है कि मिश्र बन्धुओ का हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे अग्रेजी प्रभाव को लेकर यह पहला प्रयास था।[2] उनका कथन यह था कि गद्य मे विचारो को भावो की अपेक्षा अधिक महत्ता दी जाती है। इस कथन पर भी अग्रेजी का प्रभाव परिलक्षित होता है।[3] इतिहास लेखन की परम्परा मे इन्होने पूरा सहयोग दिया। मिश्र बन्धु विनोद के प्रारम्भ मे सक्षिप्त इतिहास प्रकरण को स्थान दिया गया है। हिन्दी नवरत्न का सम्बन्ध भी ऐतिहासिक अध्ययन से है। मिश्र वन्धु विनोद को प्रथम ऐतिहासिक अनुशीलन कहा गया है।[4]

निष्कर्ष—

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन्होने सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल गुण, अलकार, रस, भाव छन्द, नायक, नायिका आदि की दृष्टि से कवियो का विवेचना किया। साथ ही सस्कृत की शैली के अनुकूल इन्होने रस को महत्ता दी। अ ग्रेजी आलोचना के समान इन्होने काल विभाजन किया, पुस्तको के प्रारम्भ मे भूमिकाये लिखी और तुलनात्मक दृष्टिकोण को अपनाया। इस प्रकार इन्होने हिन्दी की अपूर्व सेवा की। हिन्दी की ऐसी ही सेवा करने वाले अन्य विद्वान आलोचक थे। डॉ० श्याम सुन्दरदास।

१—सरस्वती–पृष्ठ १३०–सन् १९१२

२—डॉ० विश्वनाथ मिश्र–हिन्दी भाषा और साहित्य पर अ ग्रेजी प्रभाव पृष्ठ २५०

३—डॉ० भगवत स्वरूप–हिन्दी आलोचना सद्भव और विकास–पृष्ठ २८६

४—डॉ० विश्वनाथ मिश्र–हिन्दी भाषा और साहित्य पर अ ग्रेजी का प्रभाव–पृष्ठ ३५०।

डॉ० श्याम सुन्दर दास—

सन् १९२१ से ये काशी विश्वविद्यालय मे हिन्दी का अध्यापकत्व करते रहे। वहाँ इन्होने एम० ए० कक्षाओ के छात्रो के लिये नोट्स बनाये जो मुद्रित रूप मे साहित्यालोचन बने। इसमे इन्होने सस्कृत और अ ग्रेजी ग्रन्थो की पूरी-पूरी सहायता ली।[1] इन्होने अ ग्रेजी आलोचना के अनुकूल मौलिकता को विचार और शैली दोनो मे पाया है।[2] वे ज्ञान के विस्तार मे योगदान को मौलिकता मानते है। इस पर जहा पाश्चात्य प्रभाव है वहाँ सस्कृत का भी आधार है। माधुरी पत्रिका मे एक सज्जन ने तो साहित्यालोचन को साहित्य दर्पण का साराश तक कह डाला है।[3] डा० नगेन्द्र का यह कथन सत्य है कि तत्कालीन आलोचना की साहित्यालोचन को चर्म परिणती कहा जा सकता है।[4] आज भी साहित्यालोचन द्वारा आलोचना के विद्यार्थियो की ज्ञान पिपासा शान्त होती है। उन्होने अपना उद्देश्य भूमिका मे व्यक्त करते हुए लिखा—

"मेरा उद्देश्य इस ग्र थ को लिखने का यह रहा है कि भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानो ने आलोचना के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा उसके तत्वो को लेकर इस रूप मे सजा दू कि जिसमे हिन्दी के विद्यार्थियो को किसी ग्र थ के गुण दोष की परख करने और साथ ही ग्रन्थ निर्माण या काव्य रचना मे कौशल प्राप्त करने अथवा दोषो से बचने मे सहायता मिल जाय। इस दृष्टि से मै कह सकता हूँ कि इस ग्र थ की समस्त सामग्री मैंने दूसरो से प्राप्त की है। परन्तु सामग्री को सजाने, विषय को प्रतिपादित करने तथा उसे हिन्दी भाषा मे व्यजित करने मे मैंने अपनी बुद्धि से काम लिया है। अतएव मैं कह सकता हूँ कि एक दृष्टि से दूसरे ग्र थो का निचोड है।

इन्होने तुलना करते समय सस्कृत और अग्रेजी के ज्ञान को प्रदर्शित किया है।

१—साहित्यालोचन-प्रथम सस्करण की भूमिका पृष्ठ २,१२।

२—वही-पृष्ठ ३।

३—वही-सशोधित सस्करण की भूमिका सन् १९३७-पृष्ठ ७

४—डॉ० नगेन्द्र-विचार और विवेचन प्रथम सस्करण पृष्ठ ७८

संस्कृत प्रभाव—

साहित्यालोचन मे नाटको का विवेचन नाट्य शास्त्र और साहित्य दर्पण से प्रभावित होता है वहाँ रूपक रचना, प्रेक्षा ग्रह और अभिनय का विवेचन किया गया है। साहित्यालोचन का काव्य सम्बन्ध विवेचन भी सस्कृत से प्रभावित है क्योकि काव्य कृतियो के समग्र सग्रह को वे साहित्य की संज्ञा देते है और फलत सगृहीत साहित्य को वे फलत काव्य घोषित करते है। उन्होने काव्य को कविता का ही परिर्याय न मान कर उसमे गद्य का भी सन्निवेश किया है। काव्य मे रस सौन्दर्य, रमणीयार्थ और अलकारो का अस्तित्व उन्होने आवश्यक माना है। काव्यकार की साधना मे उन्होने अपने मौलिक भावो को अभिव्यक्त किया है। वे कला पक्ष के और भाव पक्ष के समन्वय पर बल देते है। सस्कृत काव्यशास्त्र के विभिन्न मतो का उल्लेख भी साहित्यालोचन मे किया गया है। जैसे रस की विवेचना करते हुए उन्होने भरत और उसके व्याख्याताओ भट्ट लोलट, शकुक भट्ट नायक और अभिनद गुप्त के सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण किया है। इन्होने मधुमनि भूमिका की भी व्याख्या की है। यह रस को परप्रत्यक्ष, गम्य मानते है। शैली के विवेचन को शक्ति गुण और वृत्त को स्थान दिया गया है। कला को इन्होने नैतिक दृष्टि से भी देखा है। उन्होने कल्या की भावना को मैथ्यु आरनोल्ड के अनुकूल पाया है।[१] उन्होने यह भी कहा कि कल्पना को भी महत्व देना चाहिये और नैतिकता की दृष्टि से कला का गला नही घोट देना चाहिये। केशव प्रसाद मिश्र के समान वे साधारणी करण का सम्बन्ध मधुमति भूमिका से मानते है। इस प्रकार हम देखते है कि इन्होने अग्रेजी आलोचको और आलोचना शैली को भी अपनाया था।

अंग्रेजी के परिपार्श्व में—

डॉ० श्याम सुन्दर दास की रुचि अग्रेजी की ओर पूरी–पूरी रही है। उन्होने अपने पाठ्य क्रम की पुस्तक एड्स ओफ कन्टेटमेंट नामक निबन्ध के आधार पर सन्तोष नामक निबन्ध लिखा था। इनका अलकारो का वर्गीकरण प्रोफेसर ब्रेन के अनुसार है। शैली के विवेचन मे ये लिखते है—"किसी कवि या लेखक की शब्द योजना, व्याकाशो का प्रयोग, वाक्यो की बनावट और उसकी ध्वनि आदि

१—साहित्यालोचन–पृष्ठ ७०, ७४, ११२।

का नाम शैली है। शैली को विचारो का परिधान न कह कर उनका बाढ और प्रत्यक्ष रूप कहना बहुत कुछ सगत होगा। अथवा इसे भाषा का व्यक्तिगत प्रयोग कहना भी ठीक होगा।[1] साहित्यालोचन मे किया गया कला का वर्गीकरण और उसके आधार पर अमूता आधार पर काव्य को श्रेष्ठ मानना ही गेल के प्रभाव का परिचायक है। अंग्रेजी सम्पर्क से उत्पन्न व्याख्यात्मक शैली को इन्होने भारतेन्दु हरीशचन्द्र और आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास मे अपनाया।[3] इन्होने प्रयोगात्मक एवम् विश्लेषणात्मक दोनो ही शैलियो का समुचित उपयोग किया। काव्य मे कल्पना तत्व को ऐडिसन और मनोवैज्ञानिको के समान महत्ता प्रदान की। परिज्ञान, स्मरण, कल्पना विचार और सहज ज्ञान नामक ज्ञान की दशाये मानी है। परिज्ञान (परशेप्सन) और स्मरण (मैमोरी) के सयोग से कल्पना (इमेजीनेशन) का उदय पाश्चात्य मानस शास्त्रियो के अनुकूल है।

अंग्रेजी के परिपार्श्व में—

साहित्यालोचन की प्रतिपादन की शैली पर हड्सन के इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ओफ लिट्रेचर का प्रभाव दिखाई देता है। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि साहित्यालोचना की आत्मा भारतीय है। हड्सन ने जहाँ केवल अंग्रेजी अथवा यो कहिये पाश्चात्य साहित्य पर ही दृष्टि रखी है वहा बाबू साहब ने पाश्चात्य और पौरवत्य दोनो ही साहित्य विधाओ को आखो से ओझल नही होने दिया। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि श्याम सुन्दरदास जी ने छात्रो के उपयोग के लिये दोनो ही समीक्षा सिद्धान्तो से बहुत कुछ ग्रहण किया है। उदाहरण के लिये वर्षफोर्ड के जजमेट इन लिट्रेचर की शैली के अनुकूल कला का विवेचन किया। फ्रायड के सिद्धान्त और कला–कला के लिये वाले सिद्धान्त को भी व्याख्या का विषय बनाया। फिर भी उन्होने अपनी मान्यताएँ स्पष्टत अकित कर दी है। इनका अभिमत है ...... "फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त को कलाभिव्यक्ति के मूल मे स्वीकार करने पर तथा यथार्थ वाद के नाम पर समस्त साहित्य विधाओ को ग्रहण करने पर

१—साहित्यालोचय पृष्ठ २४६।

२—डॉ० रवीन्द्र सहाय वर्मा–पाश्चात्य काव्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव–पृष्ठ १६०।

उनका जीवन के सदाचार पक्ष से सम्बन्ध घट जाता है।[१] इन्होने क्रोचे के अभिरजना वाद का भी विवेचन किया है। किन्तु साथ ही कला के वर्गीकरण को भी मान्यता प्रदान की है। इतना होते हुए भी साहित्य दर्शन की व्याख्या करते समय उसमे आत्म-अनात्म भाव का मुक्त मोद स्वीकार करना सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है।[२] डिक्वन्सी के अनुसार किये गये साहित्य के भेद—लिट्रेचर ओफ नोलेज तथा लिट्रेचर ओफ पावर वाले सिद्धान्त को इन्होने मान्यता प्रदान की है।

नाटको के विवेचन मे अग्रेजी के अनुकूल कथा वस्तु पात्र, सवाद् भाषा शैली और उद्देश्य विवेचन की सामग्री रहे है। सकलन का उल्लेख युनानी नाट्य-कला के अनुकूल किया गया है। आख्यायिका की व्याख्या मे हड्सन के सिद्धान्त इन्हे मान्य है। निबन्धो का उल्लेख अग्रेजी के परिपार्श्व मे हुआ है। रस की व्याख्या की भी उन्होने आधुनिक मनोविज्ञान के सदर्भ मे की है।[३] ये साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते है।[४] यह मैथ्यु आरनोल्ड के सिद्धान्त से अक्षरस: प्रभावित है। आलोचना को सैद्धान्तिक (स्पेकुलेटिव—व्याख्यात्मक इन्डक्टिव) और निर्णयात्मक (जुडिश्यल) भेद अग्रेजी के अनुकूल है। साथ ही शुद्ध सिद्धान्तो और प्रयोगात्मक आलोचना का भी उल्लेख किया गया है। शुद्ध सिद्धान्तो के निरूपण मे इन्होने काव्य प्रकाश और साहित्य दर्पण जैसे ग्रन्थो को रखा और दूसरी श्रेणी मे कवियो की आलोचना की।

पारिभाषिक अग्रेजी शब्दो के हिन्दी परिर्याय भी प्रदान किये गये है। उन्होने अग्रेजी आलोचक के समान पूर्वाग्रह को हेय बनाया है। भाषा विज्ञान पर भी आपने लेखनी चलाई। कबीर ग्रथावली और भारतेन्दु नाटकावली जैसे ग्रथो का आपने कुशल सम्पादन किया और उनकी भूमिकाये भी लिखी। साहित्य और समाज तथा चन्दवरदाई पर भी अग्रेजी आलोचना सिद्धान्तो का प्रभाव दिखाई देता है। पृथ्वीराज रासो के विवेचन मे उन्हे पृथ्वीराज का चरित्र इगलैण्ड के राजा औथर के समान दिखाई देता है।[५] इस पर हड्सन के तथा वर्स फोर्ड के प्रभाव

१—साहित्यालोचन-परिवर्धित सस्करण-सवत् १९९४ पृष्ठ ३।
२—वही- पृष्ठ २६,२७
३—साहित्यालोचन-पृष्ठ २३५-३७।
४—वही- पृष्ठ २६७।
५—डॉ० हीरालाल सम्पादक गद्य कुसुमावली पृष्ठ १९६।

परिलक्षित होता है।[1,2] इन्होने काव्य मे बुद्धि, कल्पना, भाव और शैली तत्वो का सनिवेस किया है जो अग्रेजी के आलोचना सिद्धातो से अनुकूल है।

निष्कर्ष—

अतएव निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि डॉ० साहब ने भारतीयो को पाश्चात्य साहित्यालोचन से परिचित कराया और साथ ही हमे सस्कृत ज्ञान से भी लाभान्वित किया है। इनकी साहित्यालोचन एक महत्व पूर्ण कृति है जिसके द्वारा पाठक उपमण्डूकता से निकल कर आधुनिक ज्ञान राशि से परिचित हो जाता है।

पं० पद्मसिंह शर्मा—

बिहारी सतसई के भाष्य मे शर्माजी ने तुलनात्मक आलोचना को स्थान दिया है। उसे समीक्षा क्षेत्र मे सर्व प्रथम श्रृखलाबद्ध, तुलनात्मक, समालोचना कहा जा सकता है।[1] तुलना के सम्बन्ध मे इनका मत पठनीय है ·· ···"तुलनात्मक समालोचना का उद्देश्य भारतीय साहित्य के विधाता सस्कृत कवियो का अपमान करना नही है उन पर लेखक की बिहारी से भी अधिक पूज्य बुद्धि है, सस्कृत कवियो के भाव के साम्य को ही वह बिहारी के काव्योत्कर्ष का कारण समझता है। सस्कृत कवि उपमान है। बिहारी उपमेय"[2]।

सतसई के उद्भव और विकास के बारे मे लिखा गया इनका निबन्ध खोज पूर्ण है। इन्होने ध्वन्या लोक और काव्य मीमासा से भी पूर्व परिचलित ज्ञात की छाया बना कर सतसई के सौन्दर्य को अकलकित प्रतिपादित किया है। इस विवेचन मे उन्होने' काव्य शास्त्रीय शब्दो का भी उपयोग किया है। उनका कथन है कि जिन कवियो मे सरस और प्रतिमान अर्थ पूर्ण कविता करने की क्षमता हो वही महा कवि है। इस मत पर ध्वन्या लोक की छाया दिखाई देती है।[3] इन्होने खण्डन मण्डन की प्राचीन प्रणाली को प्रमुख स्थान दिया है। पद्म पराग

१—पण्डित कृष्ण बिहारी मिश्र–देव और बिहारी–पृष्ठ १२।
२—पण्डित पद्मसिंह शर्मा–बिहारी की सतसई–पृष्ठ २७३।
३—ध्वन्या लोक की पचम कारिका की लोचन टीका–पृष्ठ २१।

इनके निबधो का सग्रह है। इनमे इनके मौलिकता सम्बन्धी विचारो पर सस्कृत के सिद्धान्तो और ग्र थो का प्रभाव दिखाई देता है। कालीदास और राज शेखर व आनन्द वर्धनाचार्य की मान्यताओ का भी उल्लेख किया गया है।[1] इन्होने सस्कृत के श्लोक उद्धरित करके उसकी व्याख्या भी की है।[2] इनकी आलोचना से इनका सस्कृत के गम्भीर ज्ञान का प्रत्यक्ष परिचय हो जाता है। इन्होने रीतिकालीन शृ गाकिता का समर्थन करते हुए वेदो से और राज शेखर तथा रुद्रठ के मतो से शृ गारिक चित्रण की पुष्टि की है।[3] शर्माजी ने वक्रता वादी आचार्यो—भामह आदि के समान अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति को पर्याय मान कर उन्हे समस्त अलकार प्रपच का मूल माना है। इन्होने रस, ध्वनि वादी लेखको को ही महा कवि पद का अधिकारी माना है।[4]

अंग्रेजी प्रभाव—

पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने कई शास्त्रीय शब्दो के अर्थ मे विस्तार किया है। इस अर्थ विस्तार का कारण अ ग्रेजी प्रभाव है। इनकी मान्यता थी कि एक युग के कलाकारो को दूसरे युग के समकक्ष रख कर आकना अनुपयुक्त है। इस धारणा पर अग्र जी की ऐतिहासिक आलोचना पद्धति का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इनके साहित्यक मूल्याकन के बारे मे कहा जाता है—हमारे कितने ही नये समीक्षक ज्ञात या अज्ञात रूप से शर्माजी के ही रास्ते पर चल रहे हैं। नये कवियो के उदाहरण देकर कुछ नपे तुले वाक्यो मे प्रशसा कर देने पर ही उनकी समीक्षा सीमित है। शर्माजी से वे किसी भी अर्थ मे आगे नही बढ सके है।[5]

निष्कर्ष—

अतएव निष्कर्षत कहा जा सकता है कि श्री शर्माजी ने दोनो ही शैलियो को अपनाते हुए हिन्दी साहित्य को प्रौढ तुलनात्मक शैली प्रदान की है।

१—बिहारी सतसई—पृष्ठ २६,२७,२९।
२—वही—पृष्ठ ८,९।
३—वही—पृष्ठ ७।
४—डॉ० नगेन्द्र—हिन्दी वक्रोक्ति जिवित।
५—डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी—आलोचक रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ ५३।

पंडित कृष्ण बिहारी मिश्र—

मिश्र जी ने देव को बिहारी की अपेक्षा अच्छा कवि सिद्ध किया। इसमे सस्कृत के और अ ग्रेजी के उदाहरणो द्वारा उन्होने अपनी मान्यताओ की पुष्टि की। निष्पक्ष भाव से किसी वस्तु के गुण दोषो की विवेचना को समालोचना नाम से अभिहित किया।[१] अग्रेजी आलोचको के समान उन्होने कहा कि—

"हमारी समझ मे किसी ग्र थ की समालोचना करते समय तद्गत विषय का प्रत्येक ओर से निरीक्षण होना चाहिये। ग्रंथ का गौण विषय क्या है तथा प्रयोजनीय क्या है, वास्तविक वर्णन क्या है तथा भराव क्या है आदि बातो का जिस समालोचना मे विचार किया जाता है, उससे पुस्तक का हाल वैसे ही विदित हो जाता है जैसे किसी मकान के मान चित्र आदि से उस ग्रह का विवरण ज्ञात हो जाता है।[२] साथ ही उन्होने काव्य का उद्देश्य आनन्द प्रदान करना माना है जो सस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल है।[३] मतिराम ग्रथावली की भूमिका मे भी तुलना को स्थान दिया गया है। वहाँ सस्कृत और अग्रेजी के ज्ञान का समुचित उपयोग किया गया है। निम्नाकित विवेचन इसे स्पष्ट कर देता है। मतिराम ग्र थावली मे बँधी हुई रीति या प्रणाली के आधार पर आलोचना न करके आलोच्य कृति के ही गुण दोष बतलाने का प्रयत्न किया गया है।[४] इसमे इन्होने ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक, व्याख्यात्मक और निर्णयात्मक आलोचना पद्धतियो को अपनाया है।[५]

संस्कृत के परिपार्श्व में—

प्रारम्भ मे ही इन्होने व्यक्त किया है—"वह वाक्य जिसकी शब्दावली या अर्थ अथवा शब्द और अर्थ दोनो ही साथ साथ मिलकर रमणीय पाया जाय काव्य कहा जायेगा।[६] इस पर रमणीयार्थी, प्रतिपादिक शब्दम् काव्य की छाया है।"

१—कृष्ण बिहारी मिश्र-देव और बिहारी—भूमिका।

२—वही-पृष्ठ ३४।

३—वही-पृष्ठ ६२-६३।

४—मतिराम ग्रन्थावली-परिचय

५—वही-

६—मतिराम ग्रन्थावली-प्राक्कथन पृष्ठ ६।

आगे यह कहते है कि रसात्मक वाक्य मे बडी ही सुन्दर कविता का प्रादुर्भाव होता है। यह वाक्य रसात्मक काव्य के अनुकूल है। मम्मट के अनुसार ये कहते है—"कवि की वाणी जिम सृष्टि का सृजन करती है ..... एक मात्र आनन्द है .. नव रस मई होने के कारण यह परम रुचिरा है।"[१] ये कविता की कसौटी रस अलकार भाषा गुण दोष लक्षण और व्यजना को मानते है। इस प्रकार ये सिद्धान्त प्रतिपादित करते रहते हैं और उनके अनुकूल आलोचना करते चलते है।[२] इन्होने शृगार रस की महत्ता, रसोद्रेक और स्थाईभावो का विवेचन आदि करते हुए मतिराम के काव्य की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।[३] साहित्य दर्पणकार के अनुसार इन्होने हास्य की व्याख्या की और उसके छ भेदो का विवेचन किया। इम प्रकार हम देखते है कि उक्तियो को ग्रहण करने मे, सिद्धान्त प्रतिपादन मे और निर्णयात्मक शैली मे इन पर काव्यशास्त्र का प्रभाव दिखाई देना है। साथ ही ये अग्रेजी प्रभाव से भी अछूते नही रह सके है।

अंग्रेजी के परिपार्श्व में—

मिश्र जी ने अपनी मान्यताओ और धारणाओ की पुष्टि अग्रेजी से भी की है। स्थान स्थान पर पाद टिप्पणियोके रूप मे ये अग्रेजी के उदाहरण देते चलते है।[४] इन्होने कहा है ..... अग्रेजी साहित्य ससार के दिग्गज विद्वानो ने कविता के मुख्य उद्देश्य मे आनन्द का स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे इनका हौरेस की उक्ति की कविता को आनन्द और उपदेश देना चाहिये का ज्ञान प्रकट होता है।[५] इन्होने बर्डस् वर्थ और कालरिज के सिद्धान्तो का भी उल्लेख किया है।[६] अग्रेजी समालोचना साहित्य की और इगित कर ये हिन्दी आलोचको को उत्साह दिलाते है—अग्रेजी साहित्य मे समालोचना की बहुत बडी उन्नति हुई है। एक-एक कवि पर हजारो पृष्ठो के समालोचना ग्रथ लिखे गये है। ..... अपने कवियो पर अभी हमारा प्रेम कहाँ है। हम तो उनसे घृणा करते है।[७]

१—मतिराम ग्रन्थावली-प्राक्कथन पृष्ठ १४।
२—वही-पृष्ठ १६ से २१।
३—वही-पृष्ठ २५।
४—वही-पृष्ठ ६ से १२।
५—डॉ० सैन्ट्स बरी-हिस्ट्री ओफ इंगलिश क्रिटीसीज्म अध्याय १,२।
६—मतिराम ग्रन्थावली-पृष्ठ १५,१६।
७—वही-२०।

इन्होंने संचारियो की तुलना हैनरी न्यूमैन के उद्धरण से की और शृंगार रस की श्रेष्ठता प्रतिपादित की।[१] टैनिसन और लेहट के उद्धरण भी ये देते है।[२] बाइरन का उदाहरण देकर मतिराम के काव्य मे प्राप्य अश्लीलता को ये क्षम्य सिद्ध करते है। इनकी व्याख्या भी बहुत सुन्दर है।[३]

मिश्र जी ने शेक्सपियर की नायिका से भी मतिराम की नायिका की तुलना की और दोनो मे एक ही प्रकार के भावों का प्रदर्शन बताकर मतिराम को श्रेष्ठ कवि घोषित किया है। वास्तव मे उनकी तुलना अत्यन्त उपयुक्त है। यथा शेक्सपीयर कहते हैं—"आहा, प्रियतमा, कैसे अपने हाथो पर कपोल रखे हुए है। क्या ही अच्छा होता। मैं उन हाथों का दस्ताना ही होता, जिसमे मुझे कपोल स्पर्श सुख तो नसीब होता"।[४] और मतिराम लिखते हैं—

> **"होते रहे मन यों मतिराम, कहूँ बन जाय बड़ौ तप कीजै,**
> **ह्वै बन माल ये लागिये, अरु ह्वै मुरली अधरा रस लीजै।"[५]**

इन्होने एतिहासिक पद्धति को भी अपनाया है। एतिहासिक स्थानो और व्यक्तियो को, जो मतिराम के ग्रथो मे प्राप्त होते है, उन्हे विस्तार पूर्वक समझाया है।[६]

निष्कर्ष—

अतएव यह सहज ही कहा जा सकता है कि इन पर अंग्रेज आलोचको और कवियो का प्रभाव दिखाई देता है। इन्होने सस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी और बगला प्रभृति भाषाओ के लेखको और कवियो के मत उद्धृत कर अपने कथन की पुष्टि की है। तदनन्तर इन्होने अपना सारांश प्रस्तुत किया है। इसमे इन्होने प्राच्य और

१—मतिराम ग्रंथावली–पृष्ठ २८,२९।
२—वही–पृष्ठ ६८,१४७।
३—वही–पृष्ठ ११०।
४—वही–पृष्ठ १९५।
५—वही।
६—वही–पृष्ठ २०७।

पाश्चात्य समीक्षा के सिद्धान्तो के आधार पर मतिराम मे प्राप्य सौन्दर्य की व्याख्या की है। इस प्रकार इनकी आलोचना मे प्रयोगात्मक और सैद्धान्तिक समालोचना का समन्वय हुआ है।

लाला भगवानदीन—

आलोचना साहित्य मे लाला भगवानदीन का नाम भी अग्रगण्य है। लालाजी मे रचनात्मक, विचारात्मक, कारयित्री एवम् भावयित्री प्रतिभाओ का समावेश था। इनके साहित्य मे शास्त्रीय खण्डन-मण्डन प्रणाली के दर्शन होते हैं। इनकी रचनात्मक प्रतिभा के दर्शन इनके सम्पादित ग्रथो मे होते है। सूर पचरत्न, केशवपचरत्न, तुलसी पचरत्न प्रभृति आदि ग्रंथो मे इनकी व्याख्यात्मक आलोचना प्रणाली के दर्शन होते है।

लक्ष्मी के सम्पादन काल मे उनकी आलोचनाये क्रम से निकलती रही। उनकी आलोचनाओ का विशिष्ट अग टीका साहित्य है। उसमे भी सस्कृत तथा अग्रेजी पद्धतियो का समन्वय दिखाई देता है। अलकार, छन्द, शब्द आदि की विवेचना के साथ आपने तुलनात्मक दृष्टि कोण को भी अपनाया है। इनके केशव कौमुदी, प्रिया प्रकाश, मानस टीका, बिहारी बोधिनी, दोहावली, कवितावली अथवा छत्रसाल नामक प्रसिद्ध टीका ग्र थ है। सस्कृत को आधार बनाकर अग्रेजी साहित्य के अलकारो की विशेषता ग्रहण करते हुए हिन्दी साहित्य सृजन कर ज्ञान निधि मे अपनी ओर से मौलिक रूप से महत्व पूर्ण योगदान दिया है।

संस्कृत प्रभाव—

अलकार मजूषा और व्यायार्थ मजूषा मे काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तो का निरूपण किया गया है। सस्कृत को आधार बनाकर टीका पद्धति का अनुसरण कर हिन्दी आलोचना साहित्य की अभिवृद्धि के प्रमाण स्वरूप 'देव और बिहारी' का नाम लिया जा सकता है अलकार मजूषा मे इन्होने प्राचीनो से मत भेद और अपनी स्वतन्त्र सम्पत्ति भी लिखी है।[1] इन्होने अग्रेजी अलकारो के साथ हिन्दी अलकारो का समन्वय भी दर्शाया है।

१—अलकार मजूषा-पृष्ठ २।

निष्कर्ष—

इस प्रकार प्रतीत होता है कि इन्होने सस्कृत के आधार पर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने का प्रयत्न किया है, जिसमे अग्रेजी का भी सहयोग लिया गया है। भारतीय अलकारो की अग्रेजी के अलकारो से तुलना भी की गई है।[1]

रत्नाकर जी ने रमणीय काव्य को काव्य की सज्ञा दी है। इनकी आधुनिक धारणा है कि रस, अलकार, रीति, ध्वनि, तथा वक्रोक्ति के समन्वय द्वारा रमणीयता का प्रतिपादन ही काव्य का प्राणतत्व है। इस प्रकार ये युग के अनुकूल सस्कृत आधार पर सामन्जस्य की कामना प्रकट करते है। आलोच्य काल मे तुलनात्मक पद्धति के भी दर्शन होते है।

तुलनात्मक पद्धति—

धन्नूलाल द्विवेदी कृत 'कालिदास और शेक्सपीयर' में निन्दा, स्तुति और नम्बर देकर ऊपर नीचे बताने की प्रवृत्ति नही है। इन्होने कालिदास के वाह्य वर्णन (external) को सुन्दर घोषित किया है तथा शेक्सपीयर के आन्तिरिक (ınternal) भाव सौन्दर्य को श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है। तुलनात्मक पद्धति के कारण हिन्दी साहित्य की ग्राह्य शक्ति को बल मिला है। इस युग मे बगला से अनूदित ग्रथो ने भी अँग्रेजी प्रभाव ग्रहण करने मे सहायता दी। इसे अग्रेजी का परोक्ष प्रभाव कहा जा सकता है।

बंगला से अनूदित ग्रंथ और अंग्रेजी का परोक्ष प्रभाव—

द्विवेन्द्रलाल राय कृत 'कालिदास और भवभूति' का रूपनारायण पण्डित कृत अनुवाद हमारे कथन के प्रमाण स्वरूप उल्लेखनीय है। यह एक अविरल अनुवाद है। इसमे सस्कृत व अग्रेजी सिद्धान्तो का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। इसी प्रकार पूर्णचन्द्र सु लिखित 'साहित्य चिता' का बगला से रामदहिन कृत हिन्दी अनुवाद भी इसका एक ज्वलत उदाहरण है जिसमे सैद्धान्तिक समालोचना को स्थान मिला है। इसमे पौर्वात्य तथा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तो की

१—अलकार मजूषा पृष्ठ २।

तुलना कर पौर्वत्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार बंगला भाषा से अनुदित ग्रथो ने अग्रेजी प्रभाव को ग्रहण करने मे सहायता दी है।

यहाँ एक तथ्य उल्लेखनीय है कि इस युग मे सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल शास्त्रीय धारा क्षीण और मन्द किन्तु अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती रही थी। श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु के काव्य शास्त्रीय ग्रथ इसके उदाहरण हैं।

जगन्नाथ प्रसाद भानु—

इनके काव्य की परिभाषा साहित्य दर्पण के अनुकूल स्पष्ट और सरल शब्दो मे है। जगन्नाथ प्रसाद भानु की निम्नाकित पुस्तके काव्य शास्त्रीय ग्रथो के उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है। जैसे—हिन्दी काव्यालकार सूत्र। अलंकार प्रश्नोत्तरी, रस रत्नाकर, नायिका भेद शब्दावली और छन्द प्रभाकर आदि। उपरोक्त पुस्तको मे 'काव्य प्रभाकर' नामक ग्रंथ साहित्य जगत को एक महत्वपूर्ण देन है। इसमे इन्होने वैज्ञानिक प्रणाली को अपनाया है। आलोचको ने इसे काव्य शास्त्र का कोश सा कहा है।[1] इसमे इन्होने उपलब्ध शास्त्रीय सामग्री का समुचित उपयोग किया है। इनकी परिभाषाये रोचक है यथा—

"मत्तवरण, मतिगति नियम अतहिं समतावाद, जो पद रचना मे मिले, भानु मनत सुइ छन्द"।

इन्होने अपने ग्रंथ मे नायिका वर्णन के साथ ही साथ गद्य की व्याख्या भी दी है। इसी भाँति इन्होने विभाव, अनुभाव, तथा दोषादि (वर्णन) की सामग्री के साथ पूर्ण विवेचन किया है। इन्होने कुवलयानन्द के समान १०० अलकारों का भी विवेचन किया है।

अंग्रेजी प्रभाव—

इन्होने एकादश मयूख मे काव्य निर्णय ग्रथ के अन्तर्गत अपनी मौलिकता का पूर्ण परिचय दिया है। इनके साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव भी रहा है। इन्होने ग्रथ मे अग्रेजी के अनुकूल भूमिका प्रदान की है। इसी भाँति स्पष्टीकरण मे

१—डॉ० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १६६।

अनभूमिका, सूचना, प्रश्नोत्तर तथा फुटनोट को भी स्थान दिया है। इन्होने अपने साहित्य मे अ ग्रेजी शैली की उक्त विशेषता का अनुसरण करते हुए गद्यात्मक विशेषताओ को भी अपनाया है।

निष्कर्ष—

इस प्रकार इन्होने काव्य शास्त्रीय धारा को अक्षय बनाये रखने का प्रयास किया है। इन्होने अपने साहित्य मे वैज्ञानिकता और अ ग्रेजी शैली अपने आधुनिक साहित्य सृजन मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन्होने तो कई बार आधुनिक गद्य मे उदाहरण भी प्रस्तुत किये है—यथा–उल्लेखालकार—

',हमारे तो डिपुटी कमिश्नर, कमिश्नर, चीफ कमिश्नर और लाट साहब आप ही है।"

सीताराम शास्त्री साहित्य सिद्धान्त

संस्कृत परिपार्श्व—

शास्त्री जी ने एक ग्र थ साहित्योपदेश की रचना सस्कृत मे की। इसके ही आधार पर इन्होने हिन्दी मे साहित्य सिद्धान्त की रचना की। अतएव यह सस्कृत का ही रूपान्तिरित रूप है। इसमे भागवत, अग्निपुराण, भरत, और विश्वनाथ प्रभृति सस्कृत के विद्वानो के ज्ञान का समुचित उपयोग किया गया है। ग्र थ मे सस्कृत के अनुसार काव्य, शब्द, अर्थ, वृत्ति, गुण, दोष, अलकार, रस, भाव, विभाव, अनुभाव और सचारियो का सम्यक शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

अंग्रेजी परिपाश्व—

इसमे अंग्रेजी के प्रभाव के दर्शन गद्य के अनुसरण मे दिखाई देते है। इसमे गद्य को समुचित स्थान दिया गया हैं। अतएव निष्कर्षतत्र कहा जा सकता है कि यह ग्रंथ सस्कृत काव्य शास्त्र के हिन्दी मे प्रचलन का प्रौढ प्रतीक है। इसी भाति केडियाजी ने भी हिन्दी की सेवा की है।

अर्जुनदास केडिया

भारती भूषण इनकी अलकारो की सुन्दर पुस्तक है। इसमे इन्होने अपनी मौलिकता और अपने खोज पूर्ण तथ्यो को पाद टिप्पणिओ मे व्यक्त किया है। अतएव यह ग्र थ शास्त्रीय आधार को ग्रहण करता हुआ अंग्रेजी की तर्क प्रणाली

और खोज प्रवृति से परिपूर्ण है। इसमे अलकारो के लक्षण गद्य मे दिये गये है। इस युग के प्रौढ लेखक है श्री अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध।

हरिऔधजी रसकलश

रस कलश के सम्बन्ध मे यह सहज ही कहा जा सकता है कि,—

"रस को कलश है, कलश रस कौ।"

इसमे साहित्यिक अगो पर शास्त्रीय दृष्टि से समयानुकूल प्रकाश डाला गया है। यथा इन्होने विषादन अलकार का देश कालानुसार सुन्दर उदाहरण दिया है —

"स्वतन्त्रते, मै तुझे खोजता था जब सौख्य सदन में।
तब तू मेरे लिये छिपी थी कारागार गहन में॥
सोचा था मैंने तू होगी सच-मुच सम्राट शरण में।
पर तू तो निरास करती थी विद्रोहीगण में॥"

रस कलश मे शास्त्रीय तत्वो पर तर्किक और सरस ढग से प्रकाश डाला गया है। इसमे अग्रेजी के अनुकूल भूमिका दी गई है जिसमे खडी बोली के माधुर्य को प्रतिपादित किया गया है। वही अग्निपुराण और अन्य शास्त्रीय ग्रथो के आधार पर शृ गार रस को रसराज बताया है। इस ग्र थ के आधार सस्कृत के काव्य शास्त्रीय ग्र थ हैं और साथ ही अग्रेजी के ग्र थ और अग्रेजी की विवेचना शैली भी। इन्होने अग्रेजी ग्र थो से अभिसारिका और अन्य नायिकाओ के उदाहरण दिये है। हरिऔधजी ने प्रगतिवादी कवियो की अश्लीलता का दिग्दर्शन कराकर सस्कृत के साहित्य का समर्थन किया है।

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रस कलश काव्य शास्त्र का प्रौढ और पुष्ट ग्र थ है जिसमे आधुनिक विशेषताओ का भी सुन्दर समावेश किया गया है।

बिहारीलाल भट्ट

हरिऔधजी के समान बिहारीलाल भट्ट ने हमे साहित्य सागर प्रदान किया है। इसमे इन्होने साहित्य का विवेचन शास्त्रीय आधार पर करते हुए आधुनिक प्रश्न, उसका मर्म क्या है, साहित्य क्या है आदि पर प्रकाश डाला है। इनकी व्याख्याएँ करते समय इन्होने सस्कृत की दृष्टि से व्युत्पत्ति मूलक अर्थ भी प्रदान किये है। इनकी परिभाषाओं पर भी सपुकृत का प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा—

"वाक्य रसात्मक काव्य है, सरस अलंकृत जोय।
वृत्ति रीति लक्षरण सहित, काव्य कहावत सोय ॥"

एवम्

"देय अर्थ रमणीय अति, जाको शब्द स्वरूप।
ऐसीं रचना को कहत, कविजन काव्य अनूप ॥"

इन पर साहित्य दर्पण और रस गगाधर के लक्षणो का प्रभाव स्पष्ट है। इन्होने रसो मे नवीन रसो की सख्य, दास्य और वात्सल्य की भी स्वीकृति दी है। इसी भाति इन्होने नायिकादि के विवेचन मे देश कालानुसार नवीनता का समावेश किया है। इनकी एक बिशेषता यह भी है कि इन्होने परिभाषाये पद्य मे ही हैं।

ब्रजेश ने शास्त्रीय धारा मे रस रसाग निर्णय द्वारा सहयोग दिया है। इसमे रस पर पडितराज जगन्नाथ का अनुसरण किया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि काव्य शास्त्रीय ग्र थो की परम्परा द्विवेदी काल तक अक्षण्ण रही हैं। डॉ० रामशकरजी शुक्ल 'रसाल' ने अलकार पीयूष द्वारा इसे बल प्रदान किया है। इनमे मौलिकता के अश सुखद और स्तुत्य है। आधुनिक आलोचक और शास्त्रीय विचारक इनकी मान्यताओ से आगे नही बढ सके है। अतएव इन्हे आधुनिक युग के विवेचन मे विवेचन की सामग्री बनाया जायेगा। इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस काल मे अग्रेजी के आलोचना सिद्धान्तो तथा सस्कृत के काव्य शास्त्रीय तत्वो को प्रभावित किया है। काव्यशास्त्र के स्थान पर आलोचना और समालोचना नाम ही अ ग्रेजी प्रभाव का परिचायक है। साथ ही उक्त युग की आलोचना का आधार सस्कृत के शास्त्रीय तत्व रस अलकार और वक्रोक्ति आदि रहे हैं।

चतुर्थ प्रकरण

आधुनिक युग

(संवत् १९८७ से २०२० तक)

सामान्य परिचय—

द्विवेदी युग के आलोचना सिद्धान्तो मे परीक्षण प्रणाली का आभास प्राप्त होता है। कभी आलोचक सस्कृत नियमो को अपनाते थे तो कभी अ ग्रेजी नियमो को, सम्भवत. वे अग्रेजी के आलोचना सिद्धान्तो का परीक्षण कर रहे थे। सस्कृत काव्य शास्त्र जिसे वे आधार स्वरूप ग्रहण किये हुए थे उसका भी उन पर गहरा प्रभाव था। आलोच्य काल मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० हरबशलाल जी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० रामचन्द्र जी, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ० रामशकर जी शुक्ल 'रसाल', डॉ० भागीरथ मिश्र, डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० रामकुमार वर्मा डॉ० सरनामसिह जी, एव भावक आलोचको ने एक सुनिश्चित राह का निर्माण किया। आज का आलोचक समन्वय की जागरूक आकाक्षा रखता है। वह न तो पुरातन सभी नियमो को ही अपना लेने की इच्छा प्रकट करता है और न नवीन नियमो के अन्धानुकरण की आकाक्षा रखता है। वह हिन्दी मे अपनी निजी आलोचना शैली को देखने की कामना करता है। फिर भी कतिपय आलोचक सस्कृत नियमो के समर्थक मिल जायेगे, तो कुछ अग्रेजी के भक्त भी। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अन्धानुसरण को हेय घोषित किया है।[1] यहा डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के निम्नाकित अभिमत को ध्यान मे रखना उचित है—

'अ ग्रेजी सस्कृति के सम्पर्क से आज हिन्दी साहित्य प्रगति कर रहा है, किन्तु जन साधारण ने प्राचीन परम्पराओ को छोड दिया है, इसलिये यह गतिशीलता सदा उचित दिशा की ओर ही नही है।"[2]

१—विचार धारा पृष्ठ २०६।

२—हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ १३५।

अधिकांशत: यही माना जाता है कि आलोचक का कार्य किसी रचना मे निहित सम्पूर्ण मूल्यो के प्रति पाठक को सचेत और सम्वेदनशील बनाना है और एक ही आलोचक अथवा एक आलोचना पद्दति इसके लिये पर्याप्त नही है, इसलिये विभिन्न युगो मे विभिन्न दृष्टियो और पद्धतियो से एक ही महान रचना के मूल्यो का उद्घाटन करते है। साहित्य के मूल्यांकन का प्रयत्न और उसका निर्णय व्यापक जीवन सापेक्ष होना चाहिये।[१] एक ओर आज संस्कृत के काव्य शास्त्र से ज्ञान प्राप्त कर उसकी विशेषताओ को स्पष्टत अंकित करने का प्रयत्न किया जाता है तो दूसरी ओर अंग्रेजी के नियमो को समझने-समझाने की चेष्टाये की जाती है।[२] डॉ० रविन्द्र सहाय वर्मा और डॉ० एस: पी खत्री आदि के विवेचन हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। आज संस्कृत के उद्धरण देकर भी अपने मतव्य को स्पष्ट किया जाता है।[३] इस प्रकार हम कह सकते है कि आज की आलोचना संस्कृत काव्य शास्त्र से प्रभावित है और अंग्रेजी आलोचना सिद्धान्तो से भी। आगामी विवेचन इसे स्पष्ट कर देगा। युग के लेखको की कृतिया और उनके सिद्धान्त हमारे कथन की प्रमाणिकता प्रकट करते है।

संस्कृति प्रभाव—

आज भी कतिपय शास्त्रवेत्ता साहित्य की व्याख्या पुरातन अर्थात संस्कृत काव्य शास्त्रीय, शब्दावली मे प्रस्तुत करते है यथा, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत की मान्यता है कि—"आज का लेखक समुदाय साहित्य सर्जना प्राय: 'अर्थकृते ही करता है।[४] डा० दशरथ ओझा ने वाह्य समीक्षा मे संस्कृत के नाट्य सिद्धांतो का विस्तृत विवेचन किया है। डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने संस्कृत के आचार्यो के मत स्थान-स्थान पर उद्धृत किए है—

१—श्री शिवदानसिंह चौहान—आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ १८५।

२—डॉ० रविन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ १५, २५, ३५।

३—बृज मोहन शर्मा—बालकृष्ण भट्ट पृष्ठ ७७।

४—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—साहित्य समीक्षा के सिद्धान्त—प्राक्कथन पृष्ठ ख।

"सस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थो मे दी गई साहित्य की परिभाषाये.. श्राद्ध विवेक... इस ग्रन्थ के रचियता रुद्रधर ने साहित्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है........

शब्द शक्ति प्रकाशिका इस ग्रन्थ मे तुल्य देव क्रियान्वयित्वम् बुद्धि विषयित्वम् साहित्यम्........"[1] आदि ।

विभिन्न विधायें—

हिन्दी की परिभाषाओं और शाखाओ पर सस्कृत की परिभाषाओ का प्रभाव दिखाई देता है । उदाहरण के लिए साहित्य को ही लीजिए । साहित्य की परिभाषा देते हुए सस्कृत से उसकी पुष्टि की जाती है । कभी उसे राज शेखर, मुकुल भट्ट और प्रतिहारेन्दु राज[2] के समान काव्य के अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है तो कभी उसे शाब्दिक अर्थ मे । उसके शाब्दिक अर्थ को सस्कृत की व्युत्पत्ति के आधार पर समझाने का प्रयत्न किया जाता है । डा० गुलाबराय साहित्य को इसी भाँति- "हितेन सह सहित तस्य भाव: साहित्यम्" बताते है । हिन्दी साहित्य कोष्ठक मे भी इसी प्रकार का प्रयत्न किया गया है । प्रो० भारत भूषण सरोज ने अपने "साहित्यिक निबन्ध" है इसी शैली का अनुकरण किया है । साहि य की व्याख्या के समान उसकी प्रेरक शक्तिया भी सस्कृत से ही ग्रहण की जाती है ।

साहित्य की प्रेरक शक्तियाँ—

साहित्य की प्रेरक शक्तियो का उल्लेख करते समय भी पुरातन सस्कृत ग्रन्थों और शास्त्रो के मत उधृत किये जाते हैं । उदाहरणार्थ—"वृहदारण्यकोपनिषद् य उन प्रेरणाओ का विस्तार से उल्लेख किया गया है··· पुत्रिषणा, वितिषणा लोकेषणा" ।[3] डा० गुलाब राय ने भी इन एषणाओ को साहित्य की मूल प्रेरक

१—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत–साहित्य समीक्षा के सिद्धांत–प्राक्कथन पृष्ठ २ ।
२—वही पृष्ठ ६ ।
३—डा० गोविन्द त्रिगुणायत–समीक्षा शास्त्र के सिद्धान्त पृष्ठ ८ ।

शक्तियाँ कहा है ।[1] और इस सम्बन्ध मे भामह का मत उधृत कर, मम्मटकी निम्नाकित धारणा अधिकाशत प्रस्तुत की जाती है—

> "काव्य यशसेर्थ कृते व्यवहार विदे शिवेत रक्षसये ।
> सद्यः परनिवृ त्तये कान्ता सम्मति तयोपदेश युजे ॥"[2]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने मौलिक ढग से काव्य के प्रयोजन पर प्रकाश डाला है । वे साहित्य को मनुष्य की ही दृष्टि से देखना चाहते है । उन्होने जीवन मे आदर्श को महानता दी है और वे साहित्य को भी केवल मनोरजन का साधन नही मानते है । काव्य के प्रयोजन के समान साहित्य का विवेचन करते समय सस्कृत वागमय के आधार पर उसकी कला से भिन्नता प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया जाता है ।

साहित्य और कला—

साहित्य और कला के सम्बन्ध मे भी भारतीय मत उधृत किऐ जाते है और भर्तृहरी का श्लोक—साहित्य सगीत कला विहिन साक्षात् पशु पुच्छ द्विषाण हीनः ।' को प्रस्तुत किया जाता है । यहाँ वागमय के भेद भी वताये जाते है ।[3] सस्कृत काव्य शास्त्रो के उदाहरण देकर दण्डी के मत के आधार पर कहा जाता है कि साहित्य और काव्य को कला से उच्च स्तरीय माना जाना चाहिये । मम्मट के अनुसार काव्य को ब्रह्मानन्द सहोदर भी माना जाता है । काव्य सम्बन्वी धारणाओ ने काव्य के विवेचन को भी प्रभावित किया है । काव्य का विवेचन करते समय सस्कृत के विभिन्न आचार्यो —भोज, भट्ट तात, राज शेखर, भट्ट गोपाल, वैदिक साहित्य, अभिनव गुप्ताचार्य और वक्रोक्तिकार तक के मते प्रस्तुत किये जाते है । काव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे राज शेखर की कथा को प्रस्तुत किया जाता है ।[4] अन्य कई ग्रन्थो मे ऐसा ही विवेचन

१—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत–समीक्षा शास्त्र के सिद्धान्त पृष्ठ ८ ।

२—वही एव काव्य प्रकाश]।२

३—वही पृष्ठ ३२ एव वांगमय बिमर्श—प्राक्कथन एव पृष्ठ ३०–३५ ।

४—डा० एस० के० डे०, हिस्ट्री ओफ सस्कृत पोलिटिक्स –१ ।

प्राप्त होता है जिसमे डा० गोविन्द त्रिगुणायत के शनस्त्रीय समीक्षा के सिद्धात उल्लेखनीय है वहाँ शैली पर भी सस्कृत की दृष्टि से विचार किया गया है।

शैली—

शैली का विवेचन करते समय सस्कृत शास्त्रकारो की उक्तियो और धारणाओ को स्थान दिया जाता है। "राज शेखर ने साहित्य बधु की वेष-भूषा से प्रवृति की, उसके विलास से वृत्ति की और वाणी विन्यास से रीति की उत्पत्ति हुई।"[1] कुन्तक के मार्ग मे भी इसकी तुलना की जाती है। काव्यालकार सूत्र मे विशिष्ठ पद रचना रीति कहा गया है।[2] हिन्दी मे रीति और शैली की तुलना आपस मे भेद-प्रभेद बताये जाते हैं। डा० गोविन्द त्रिगुणायत का मत है कि— "अत सस्कृत का रीति शब्द पारिभाषक होते हुए भी ... .. किसी भी रचना के तमाम तत्वो के विवेचन को समेट सकता है जो शेली के अन्तर्गत आते है। [3]रीति के विवेचन मे अलकार महत्वपूर्ण स्थान रखते है और शब्द शक्तियाँ उनसे सम्बन्धित है। अत शब्द शक्तियो को भी यत्र-तत्र विवेचन का विषय बनाया जाता है। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि अग्रेजी के प्रभाव के कारण अधिकाशत शब्द शक्तियो का विवेचन शास्त्रीय ग्रथो या पाठ्यक्रम के लिए लिखी गई छात्रोपयोगी पुस्तको मे ही स्थान प्राप्त करते है। सामान्यत साधारण आलोचक अपनी आलोचना मे उन्हे कम ही स्थान देते है। आज तो सौदर्य निर्देशन मे पाठक अपने दृष्टिकोण से काव्य का विवेचन करता है और उसमे बँधी-बधाई परिपाटी को कम ही स्थान दिया जाता है। सस्कृत के प्रभाव के कारण काव्य शास्त्री ग्रथो का प्रणयन भी होता रहता है।

काव्य-शास्त्र—

अधिकाशत पाठ्यक्रम के लिए अलकारो और काव्य शास्त्र पर पुस्तको का

१—वेश विन्यास क्रम प्रवृत्ति विलास विन्यास, क्रमोवृत्ति वचन विन्यास क्रमोरीति।

२—१।२।७—८।

३—डा० मनोहर काले रीति सम्प्रदाय का विवेचन। आधुनिक हिन्दी मराठी मे काव्य शास्त्रीय अध्ययन तथा डा० नगेन्द्र—हिन्दी काव्यालकार सूत्र वृत्ति भूमिका पृष्ठ ५६।

प्रणयन किया जाता है। इनमे सरल रूप मे शास्त्रीय वादो, सम्प्रदायो और अलकारो को समझाने के प्रयत्न किए जाते है। अलकारो की ऐसी पुस्तको मे बहुधा उन अलकारो को उपयोग मे लिया जाता है जो पाठ्यक्रम मे निर्धारित होते हैं। डा० शभूनाथ पडिय कृत रस अलकार पिंगल इसका ज्वलन उदाहरण है उन्होने भूमिका मे कहा है कि पुस्तक विद्यार्थियो के लिए बनाई गई। उसके सशोधित सस्करणो मे भी इसी बात का ध्यान रखा गया है। भारतीय सिद्वान्तो को समझाने का प्रयत्न सुधाशुजी ने भी किया है। इस सम्बन्ध मे मौलिकता और प्रगाढ पूर्ण ग्रन्थ है डा० रामशकरजी शुक्ल रसाल के। आपने मौलिकता और गवेषणा पूर्ण विधि से अलकारो पर अलकार पियुष-पूर्वाध और उत्तरार्ध मे, प्रकाश डाला है, वहाँ पर शास्त्रीय दृष्टि से भारतीय अलकारो पर विद्वता पूर्ण दृष्टि से काम लिया गया है। डाक्टर साहब ने विषय पर अत्यन्त गहराई से स्लागनीय विचार किया है जिससे ये ग्रन्थ साहित्य की अमूल्य निधि बन गए हैं। डा० भागीरथ मिश्र ने काव्य शास्त्र के विकाश पर मौलिकता पूर्ण विचार प्रकट किए है।

कई विद्वानो ने पारिभाषिक शब्दो को सरल और सुबोध शब्दो मे समझाने का प्रयत्न किया है। राजेन्द्र द्विवेदी कृत साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक श द कोश इसका प्रमाण है। इसमे लेखक ने शास्त्रीय शब्दो के अर्थ देकर उदाहरण प्रस्तुत करने का सुन्दर प्रयास किया है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसमें यथा सम्भव हिन्दी के-अधिकाशत: जहाँ तक बन पडा आधुनिक हिन्दी के उदाहरण दिए गए है। इसके साथ ही सस्कृत अ ग्रेजी और अन्य भाषाओ का भी इसमे समुचित उपयोग किया है।

सस्कृत का प्रभाव कभी कभी तो नाम लिखने की शैली पर तक दिखाई देता है। उदाहरण के लिए लिखा जाता है—श्री युत् आई ए० रिचर्डस, श्री युत् कौन वृक आदि इसके उदाहरण है। जब नाम भी इस प्रणाली मे ढाले जाते है तो छन्द पर इस शैली का प्रभाव अवश्यभावी है।

छंद विवेचन—

हिन्दी मे काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों मे सस्कृत के मात्रिक और वर्णित छन्दों

साहित्यिक विद्याएँ

आलोचनाएँ—

साहित्य की ओर साहित्य की विभिन्न विद्याओ की आलोचना करते समय सस्कृत वागमय का महारा लिया जाता है। विभिन्न माहित्यिक विद्याओ और प्रयोगो को रस, गुण, दोष, चुनी ध्वनि और वक्रोक्ति आदि की दृष्टि से देखा जाना है। साथ ही इन सब से प्रबल रूप रहना है भारतीय आदर्श और नैतिकता का। जो वस्तु व्यापार और तथ्य हमारी सस्कृति और साहित्य के प्रतिकूल होते है, उन्हे हेय और अनुपयुक्त माना जाता है। उदाहरण के लिए मच पर नायिका का चुम्बन या सस्कृति के प्रतिकूल हा-भाव प्रदर्शन आदि।

कविता—

कविता की आलोचनाओ मे भी रम आदि का उल्लेख किया जाता है, कहीं-कही तो रस-अलकार आदि के उदाहरण विस्तार पूर्वक दिए जाते है।[1] पण्डित धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने 'महा कवि हरिऔध और प्रिय प्रवास' मे सस्कृताचार्यो के शास्त्रीय लक्षणो का विवेचन कर उन तत्वो पर कवि और काव्य का परिक्षण किया है। शास्त्रीय दृष्टि से शब्द की व्याख्या भी की जाती हैं– "कविता रमीणायार्थ प्रतिपादक"[2] काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो का प्रभाव इस रूप मे भी देखा जाता है कि अलकार सम्बन्धी ग्रन्थो के सभी के मत उधृत करने का प्रयास किया जाता है।

भाव—

जिम प्रकार डाक्टर श्यामसुन्दर दाम ने साहित्यालोचन में सस्कृत आचार्यो द्वारा दी गई भाव की परिभाषा को प्रस्तुत किया, उसी प्रकार सेठ कन्हैया लाल पोद्दार ने भाव के सम्बन्ध मे साहित्य दर्पण के आधार पर अपने विचार व्यक्त किए।[3] डॉ० गुलाबराय ने भी साहित्यिक भाव को "इमोशन" से भिन्न माना है।

१—पण्डित रामनरेश त्रिपाठी–अलकार निरुपण।

२—राजेन्द्र द्विवेदी–साहित्य शास्त्र कोश पृष्ठ ६५।

३—डा० गोविन्द त्रिगुणायत– शास्त्रीय आलोचना सिद्धान्त भाग १ पृष्ठ ८०।

जो सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है।[१] वे कहते है—

"साहित्य के भाव मनोविज्ञान के भावो से भिन्न होते है। ये भाव मन के उस विकार को कहते है जिसमे सुख-दुखात्मक अनुभव के साथ क्रियात्मक प्रवृत्ति भी रहती है।"

जिस प्रकार से भावो का विवेचन किया जाता है, उसी प्रकार से स्थाई भाव भी आलोचना की सामग्री रहे है।[२]

स्थाई भाव—

इस युग मे भी स्थाई भावो, आलम्बन और उद्दीपन विभावो, साहित्य आदि अनुभावो और सचारियो का विवेचन मिलता है। आधुनिक भाषाओ मे इनका तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया जाता है। ये अग्रेजी प्रभाव के कारण दब अवश्य गए है किन्तु पूर्ण रूपेण मिट नही गए है।

अनुभाव—

सस्कृत साहित्य मे अनुभाव को कायिक, मानसिक आहार्य और सात्विक भेदो मे विभाजित किया गया है। रामदहिन मिश्र और अन्य कई परीक्षोपयोगी पुस्तके लिखने वालो ने इन्हे ज्यो का त्यो स्वीकार किया है।

संचारी—

पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सचारियो को सस्कृत के अनुकूल व्यापक अर्थ मे ग्रहण किया है। उन्होने परम्परागत सचारियो को मनोविकार नही माना है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक शब्दावली से शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दो की भिन्नता परम्परा पालन की प्रतीक है। इनका विवेचन करते हुए सस्कृत के उदाहरण बहुतायत से दिए जाते है।

१—डॉ गुलाबराय – सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ २१५।

२—डॉ मनोहर काले—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ८५।

रस --

कन्हैयालाल पौद्दार तथा रामदहीन मिश्र ने मम्मट, विश्वनाथ और अभिनव गुप्त के अनुसार रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा है । पण्डित केशव प्रसाद मिश्र ने मधुमति भूमिका और साधारणीकरण का स्पष्टीकरण करते हुए रस को परप्रत्यक्ष की स्थिति के कारण आनन्द परक ही माना है । डॉ० श्यामसुन्दर दास ने भी रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा है । डॉ० भगवान दास ने रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए संस्कृत काव्यशास्त्र का आधार लिया है । डॉ नगेन्द्र ने रस और भावों की भिन्नता प्रकट करते हुए रसास्वादन से उत्पन्न आनन्दानुभव को स्पष्ट किया है यहाँ यह उल्लेखनीय है कि डॉ० नगेन्द्र ने आनन्दानुभूति का जो विश्लेषण किया है वह तर्कसगत और वैज्ञानिक है । डॉ० गुलाब राय भी आनन्द दायक रस के समर्थक है । आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने हृदय की मुक्त अवस्था को स्पष्ट करते हुए रस को ब्रह्मानन्द सहोदर सिद्ध किया है । इन आचार्यों मे शुक्ल जी की विवेचन प्रणाली सस्कृत काव्यशास्त्र की भावमय परम्परा के अनुकूल है जो रस को भाव का पर्याय मानती है । इनके अतिरिक्त डॉ० भगवानदास, डॉ० नगेन्द्र और डॉ० गुलाबराय प्रभृति आलोचक रस को भाव से भिन्न मानते है । यह परम्परा आनन्द वर्धन, अभिनव, मम्मट तथा विश्वनाथ के अनुकूल है । इन आचार्यो ने सस्कृत की रस निष्पत्ति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है जिसमे इनकी मौलिकता, स्पष्टीकरण और विषय विवेचन मे दिखाई देती है ।

रस- "सुख-दुखात्मक" —

डॉ० मनोहर काले ने संस्कृत के उद्धरण उद्धृत करते हुए यह बताया है कि सस्कृत शास्त्रो द्वारा रस का स्वरूप सुख-दुखात्मक माना गया था और अभिनव गुप्त या आनन्द वर्धन से रस की आनन्द वादी परम्परा का उदय हुआ ।[1] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नाट्य शास्त्र के उद्धरणो[2] से यह तो सिद्ध होता है कि नाटक सुख-दुख समन्वित स्वरूप को प्रदर्शित करते है, किन्तु यह सिद्ध नही होता कि फलागम होने पर, रस निष्पत्ति होने पर भी ब्रह्मानन्द सहोदर

१—डॉ० मनोहर काले—आधुनिक हिन्दी मराठी काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ९९–१०० ।

२—वही ।

रस प्राप्त नही होता था। इनका विवेचन सस्कृत उद्धरणो पर अवलबित अवश्य ही है। इस प्रकार ये सस्कृत काव्यशास्त्र के प्रभाव से मुक्त नही है।

रस सिद्धा त की व्यापकता और उसके महत्व की आज भी प्रतिपादित अवश्य ही किया जाता है। इसके साथ ही केवल बौद्धिक काव्य को कई आलोचको ने काव्य की सख्या नही दी है।[१]

रस संख्या--

इस युगमे जबकि रस सख्यामे वृद्धि होने लगी, श्री जगन्नाथ भानु ने तब भी परम्परागत रसो को ही मान्यता दी थी। विहारीलाल भट्ट ने उनमे पर म्परा से चले आने वाले भक्ति रस को ही जोडा है। ये कुछ उदार से बन गये है। कन्हैया लाल पोद्दार ने रस मजरी मे नौ रसो को ही मान्यता दी थी किन्तु समय के साथ वे भी परिवर्तिन हुए और हिन्दी साहित्य कोश मे उन्होंने भक्ति को प्रथक रस माना। आचार्य श्यामसुन्दर दास ने परम्परा का ही निर्वाह किया—उन्होंने शान्त रस सहित नौ रस माने है। इन्होने समयानुकूल आन्तरिक विकास किया है यथा—रती या राग मे प्रकृति प्रेम, अतीत का प्रेम, आचार्य के प्रति श्रद्धा, पिता के प्रति प्रेम, देश प्रेम और मित्र प्रेम को भी स्थान दिया है। डॉ० गुलाबराय भी परम्परा के अनुकूल रहने का प्रयत्न करते है किन्तु साथ ही ये वात्सल्य रस को भी स्वीकार कर लेते है। इन आचार्यो ने रसास्वाद पर भी अपने विचार व्यक्त किए है। रसास्वाद का विवेचन इन्हे परम्परानुकूल घोषित करता है।

रसास्वाद—

श्री कन्हैयालाल पौद्दार, श्री रामदहिन मिश्र और पण्डित केशव प्रसाद मिश्र ने रस निष्पत्ति का विवेचन शास्त्रानुकूल किया है। श्री कन्हैया लाल

१—डॉ आनन्द प्रकाश दीक्षित – रस सिद्धान्त : स्वरूप और विश्लेषण।

२—रस मीमांसा पृष्ठ २७१, २७५।

अभिनव गुप्त और मम्मट की मान्यताओ के समर्थक रहे है। इन्होने रसानुभूति को आनन्दमय माना है।[1] रामदहिन मिश्र और केशव प्रसाद मिश्र ने रस को आनन्द स्वरूप कहा है। शुक्लजी ने परम्परागत भावो को ग्रहण करते हुए अपनी मौलिक मान्यताएँ स्थापित की हैं। उन्होने साधारणीकरण का अर्थ आलम्बन के प्रति सभी सामाजिको मे एक ही भाव की निष्पत्ति माना है।[2] आश्रय और सहृदय के भावो का पूर्ण तादात्म्य साधारणीकरण की अवस्था मे होता है।[3] आचार्य श्याम सुन्दर दास जी ने मधुमति भूमिका के सहारे साधारणीकरण का विवेचन किया है।[4] डॉ० नगेन्द्र ने रस स्वरूप आनन्दमय माना है। इनका रसास्वादन को भाव से भिन्न मानना इनकी अपनी मान्यता है।

रस सिद्धान्त के विभिन्न पक्षो का विवेचन भी आज किया जाता है। उदाहरणार्थ—रस सिद्धान्त का आरम्भ और विकास दिखा कर उसके अन्तर्गत उठने वाले प्रश्नों का समाधान किया जाता है।[5] अतएव ये शास्त्रीय समीक्षा के अनुकूल है। परम्परागत दृष्टि से हिन्दी साहित्य को ध्यान मे रखते हुए कतिपय आलोचको ने भक्ति को रस स्वीकार किया है। इसे भी उसी प्रकार आलम्बन, उद्दीपन आदि भाव-अनुभावो की कसोटी पर कसा जाता है। डॉ० गुलाब राय ने भक्ति रस का समर्थन किया है।[6]

रसाभास संस्कृत के परिपार्श्व में—

संस्कृत शास्त्रो के अनुसार आज भी रस के गुण और दोषो की जहाँ

१—रस मन्जरी—पृष्ठ १७४, १७६।
२—चिन्तामणि—पृष्ठ २४६।
३—वही—पृष्ठ २३०।
४—साहित्यालोचन—पृष्ठ २३८।
५—डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित—रस सिद्धान्त : स्वरूप और विश्लेषण —प्राक्कथन।
६—सिद्धान्त और अध्ययन एवं डॉ० भागीरथ मिश्र, विरचित काव्यशास्त्र पृष्ठ २६१—२७७।

चर्चा होती है वहाँ रसाभास भी स्थान प्राप्त करना है। गुण और दोषो की चर्चा बहुधा छात्रोपयोगी पुस्तको मे की जानी है। रसाभाम के बारे मे भी उसी प्रकार से अधिक सूक्ष्म विवेचन प्राप्त नही होना है। रमाभास के मबन्ध मे दो मत प्रचलित है—

क—रस उत्पति मे बाधा
ख—पूर्ण रसोद्क न हो

बहुधा हिन्दी मे आलोचक मानते दोनो को ही हैं किन्तु एक स्थान पर एक बात को मानते है और दूसरे स्थान पर दूसरी को। यह आलोचना की निर्वलता है। एक स्थान पर रसाभास को औचित्योलघन माना जाता है तो दूसरी ओर से विरोधी बात कह दी जानी है। मत दोनो ही शास्त्र सम्मत हैं किन्तु विवेचनात्मक प्रणाली उपयुक्त नही दिखाई देती है।[1]

अलंकार संस्कृत के परिपार्श्व में—

अलकार का विवेचन भी सस्कृत पद्दति के अनुकूल किया जाता है। इनका विवेचन करते हुए वेदो, गार्ग्य और यास्क, बादरायण सूत्र, भरतमुनि, भट्टि काव्य, दण्डी उद्भटट, वामन, रुद्रट, भोजराज, मम्मट और रुइयक आदि के मत उधृत किए जाते है। सस्कृत के अनुकूल इनके व्युत्पत्ति पर भी विचार किया जाता है। परिभाषा देते हुए सस्कृत काव्यशास्त्रो का स्मरण किया जाता है। उदाहरण के लिए कन्हैयालाल पोद्दार, मिश्र बन्धु, रामदहिन मिश्र और डॉ० मनोहर काले का तद्विषयक विवेचन देखा जा सकता है। आज हिन्दी मे इसी प्रकार का विवेचन अधिकाशत: प्राप्त होता है। श्री कन्हैयालाल पोद्दार ने अलकार मजरी के प्रारम्भ मे रुइयक निरूपित अलकारो की विस्तृत व्याख्या की है।[2] उन्होने सस्कत शास्त्रकारो के समान अलकारो के सूक्ष्म भेदो-प्रभेदो

१—डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित—(हिन्दी) रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ २३०, २५०, २५१, २५४, २५६।

को भी अपनाया है।[1] डॉ० मनोहर काले ने अलकारो के विवेचन की चर्चा करते हुए सस्कृत आचार्यों के समान वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति को प्राय: सभी अलकारो के मूल मे माना है।[2] हिन्दी मे सस्कृत के अनुकूल सकर समृष्टि और उभयालकारो का भी विवेचन किया गया है।

सस्कृत आचार्यों के समान हिन्दी मे भी अलकारो के अन्तर्भाव का प्रयत्न किया गया है। ऐसा कार्य मुरारी-दान ने भी किया था। इसी भाँति जगन्नाथ प्रसाद भानु मे भी अन्तर भाव की प्रवृत्ति दिखाई दी।[3] मिश्र बन्धुओ ने भी कई अलंकारो की सख्या को कम करने का आदेश दिया। उन्होने सस्कृत के साथ ही अग्रेजी के तर्क को भी अपनाया। ये कहते है कि चमत्कारहीन और व्यग प्रधान अलकारो को हटा देना चाहिए।[4] अर्जुनदास केडिया और उत्तमचन्द भण्डारी ने भी अलकारो को कम करने का प्रयत्न किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तमचन्द भण्डारी ने अलकार आशय[5] में वैण सगाई को नवीन अलकार की सज्ञा दी, किन्तु यह तो राजस्थानी का अत्यन्त प्रिय और प्राचीन अलकार रहा है। इसके सम्बन्ध मे कहा जाता है—

"वैण सगाई वालियो पोखीजे रस पोख,
होम हुता सत बोल में दीखे हेक न दोष।'

हिन्दी मे अलकारो की वैज्ञानिक और ऐतिहासिक एव अधिकार पूर्ण सस्कृत पृष्ठभूमि पर आधृत विवेचना डॉ० रामशंकर जी शुक्ल रसाल ने अपने अलकार पीयूष मे की है। उन्होने अलकारो के शास्त्रीय विवेचन को स्थान दिया है।

इस प्रकार हम देखते है कि आधुनिक युग मे भारतीय विद्वानो ने अलकारों का सम्यक विवेचन किया है।

१—अलंकार मजरी—पृष्ठ ४३७—४४२।
२—डा० मनोहर काले—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ३३४।
३—काव्य प्रभाकर—पृष्ठ ५२२ नवम् मयूख।
४—साहित्य पारिजात भूमिका—पृष्ठ ३३।
५—भारती भूषण—पृष्ठ १४।

रीति विवेचन और शैली—

बिहारी लाल [१], कन्हैयालाल [२], सीताराम [३], मिश्र बन्धुओ [४] और रामदहिन मिश्र [५] ने सस्कृत के परिपार्श्व मे रीति विवेचन किया। डॉ० गुलाब राय, आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी और नगेन्द्र तथा सुधान्शुजी ने सस्कृत रीति सिद्धान्त की स्टाइल से तुलना भी की। बिहारीलाल भट्ट ने साहित्य दर्पण की सी परिभाषा दी और कहा—

> **"कविता में पद अर्थ की, संगटना अति होय,**
> **तौ न सरस समुदाय को रीति कहत कवितोय।[६]**

कन्हैयालाल पोद्दार ने विशेष प्रकार की माधुर्यादिगुण युक्त पदो वाली रचना को रीति की सज्ञा देकर वामन के प्रभाव की सूचना दी।[७] रामदहिन मिश्र ने कहा है कि शब्दार्थ शरीर काव्य के आत्मभूत रसादि का उपकार करने वाली जो विशिष्ट रचना है उसे रीति कहते है। इस पर "शब्दार्थ और शरीरम्" और "विशिष्ट पद रचना रीति" का प्रत्यक्ष प्रभाव है। आलोचको ने इसे वामन और ध्वनि रस वादियो की परिभाषाओ का समन्यवय कहा है। [८] आचार्य राभचन्द्र शुक्ल ने रीति का सम्बन्ध नाद से ठहराया है और रसो के अनुकूल वर्ण चयन की ओर भी सकेत किया है। [९]

१—साहित्य सागर।

२—रस मंजरी एव सस्कृत साहित्य का इतिहास।

३—साहित्य सिद्धान्त।

४—साहित्य पारिजात।

५—काव्य दर्पण।

६—साहित्य सागर—पृष्ठ ३४३।

७—सस्कृत साहित्य का इतिहास—पृष्ठ १०७।

८—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन—पृष्ठ ४२१।

९—चिन्तामणि द्वितीय भाग—पृष्ठ ४२५।

इसमे भरत, वामन, रुद्रट आदि की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। रस के अनुकूल रीति का वर्णन किया गया है ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आज रामदहिन मिश्र और शुक्ल जी की इन विशेषताओ को विवेचन करते हुए यह कहा जाता है कि—

"परन्तु इन्होने (मिश्रजी) इस तथ्य पर प्रकाश नही डाला कि 'रीति' रस की उपकारक किस प्रकार से बनती है।[1]

एव—

कोमल और कठोर वर्णो से किस प्रकार कोमल, श्रृंगार, करुण आदि तथा कठोर–रौद्र, भयानक आदि रसो की परिपुष्टि होती है, इसका इन्होने अपनी परिभाषा मे स्पष्टीकरण नही किया है।[2]

तथ्य यह हैं कि रामदहिन और शुक्लजी प्रभृति आलोचक संस्कृत की जिन बातो को सर्व सम्मत या सुस्पष्ट मानते थे उनका उल्लेख वे नही करते थे। उपर्युक्त तथ्यो पर मिश्रजी और शुक्ल जी का प्रकाश न डाला जाना इस बात की पुष्टि करता है। उन्होने सम्कृत के आचार्यो द्वारा दिए गए तर्को का पिष्ट-पेषण नही किया है। श्री बलदेव उपाध्याय एवं आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी तथा डॉ० सुधान्शुजी ने भी सस्कृत रीति का एतिहासिक विवेचन किया है।[3] अधिकाशत कई आलोचको ने रीति को ध्वनि रसवाद मे पर्यवसित दिखाया है। आज शास्त्रज्ञ ही नही, अन्य आलोचक भी सस्कृत के विस्तृत गुणो का विवेचन करते हैं। कही कही पाद टिप्पणियो मे भी इन पर प्रकाश डाला जाता है। रीति की भाँति गुण विवेचन भी आलोचना के विषय रहे हैं।

गुण विवेचन—

अधिकाशत: गुण विवेचन मे भी विवेचको ने संस्कृत नियमों को

१—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन –पृष्ठ ४२१।

२—वही –पृष्ठ ४२२।

३—नया साहित्य नये प्रश्न–पृष्ठ १०९-११२।

अपनाया है। वे उन्हे बहुधा ज्यो का त्यो ग्रहण कर लेते है जिस पर कई बार आपत्ति भी उठाई जाती है।[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गुण और रस का अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध स्थापित किया है।[२] डॉ० श्यामसुन्दर दास ने शास्त्रीय गुणो का विवेचन करते हुए उन्हे तर्क की दृष्टि से रीति और वृत्तियो के साथ सम्बन्धित बताया है।[३] डॉ० गुलाबराय ने गुण विवेचन मे सस्कृत और अ ग्रेजी दोनो ही काव्य शास्त्रो पर दृष्टि रखी है। बलदेव उपाध्याय ने सस्कृत के आचार्यों की धारणाओ का उल्लेख करते हुए अपना मत प्रदान करने का भी प्रयत्न किया है। हिन्दी मे भामह, आनन्द वर्धन, अभिनव गुप्ताचार्य और मम्मट के अनुकूल ओज, माधुर्य और प्रसाद को ही स्वीकार किया है। डॉ० नगेन्द्र ने उपर्युक्त तीनो गुणो को समझाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार हम देखते है कि आधुनिक काल मे गुण विवेचन भी आलोचना की सामग्री रहे है जो हि दी आलोचना पर सस्कृत के प्रभाव के प्रतीक है। गुणो के समान दोषो की ओर भी आलोचको ने दृष्टिपात किया है।

दोष विवेचन—

अधिकाशत: दोषो का विवेचन करते समय सस्कृत के दोषो का विवरण मात्र सा दिया जाता है। कन्हैयालाल पोद्दार, अयोध्यासिह उपाध्याय और राम दहिन मिश्र के ग्रथ इसके साक्षी हैं। आचार्य श्री नन्द दुलारे वाजपेयी ने गुणमत व्याख्यान के साथ दोषो की विवेचना करते हुए सस्कृत आचार्यो की प्रवृत्तियों का सुन्दर और सुगम रूप से उल्लेख किया है।[४] श्री बलदेव उपाध्याय ने भी सस्कृत के दोष विवेचन पर दृष्टिपात किया है। डॉ नगेन्द्र ने काव्यशास्त्र के अन्य अ गो के समान दोषो की भी मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है।[५] [६] इन्होने मूल रूप मे

१—आधुनिक हिन्दी मराठी मे काव्य शास्त्रीय अध्ययन–पृष्ठ ४३१।

२—वही –पृष्ठ ४३२।

३—साहित्यलोचन –पृष्ठ २५८, २५९।

४—नया साहित्य नये प्रश्न–पृष्ठ ११२।

५—हिन्दी काव्यालकार सूत्र–पृष्ठ २४ से ८४।

६—भारतीय साहित्य [illegible] स्त्र-पृष्ठ ७१।

में रस और गौण रूप से शब्द और अर्थ के आकर्षक तत्वो को दोष सज्ञा मे अभिहित किया है।

ध्वनि

संस्कृत के परिपार्श्व में—

कन्हैयालाल पोद्दार ने और रामदहिन मिश्र ने सस्कृत आचार्यो के अनुकूल ध्वनि विषयक विवेचन प्रदान किया है। रामदहिन मिश्र पाश्चात्य शास्त्रकारो के भी मत उद्धृत किए हैं। इन्होने ध्वनिकार की धारणाओ को उपयुक्त सिद्ध किया है। शुक्लजी ने रस को व्यजना का परिणाम माना है। डॉ० गुलाबराय ने ध्वनि का शास्त्रोक्त विवेचन किया है। इन्होने ध्वनि की कल्पना का अन्तर मात्र दिखाया है। ये अग्रेजी से आये हुए सामन्जस्य के परिपार्श्व मे कल्पना का प्रभाव है। डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी ने ध्वनि विवेचन सस्कृत के अनुकूल किया है। डॉ० नगेन्द्र ने इस पर मनोविज्ञान की छाप बनाई और कल्पना तत्व को भी महत्व दिया। डॉ० भोला शकर व्यास ने सस्कृत आचार्यो की मान्यताओ का स्पष्टीकरण किया। इन्होने व्यजना को काव्य की कसौटी माना और आचार्य जगन्नाथ के अनुकूल रस ध्वनि को ही उत्तमोत्तम घोषित किया है।[1]

जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि रामचन्द्र शुक्ल ने वाक्यार्थ मे काव्य की रमणीयता सिद्ध की है।[2] उन्होने वाक्यार्थ के अनुपन्न और अयोग्य होने की अवस्था को लक्षणा और व्यजना की जननी माना है। अतएव शुक्लजी के मत मे जहा अर्थ के अनुपन्न और अयोग्य होने की वे बात कहते हैं वहा लक्ष्यार्थ और व्यगार्थ की स्थिति स्वत सिद्ध है। यह तो कथन का अन्तर मात्र है जैसा कि प्रसाद जी ने जनमेजय का नाग यज्ञ मे दिन के अभाव को ही रात्रि कहा है। यहा यह उल्लेखनीय है कि शुक्लजी की यह धारणा परम्परागत व्यगार्थ और लक्ष्यार्थ विरोधिनी न हो कर उनके सत्य की खोज के प्रयास की द्योतक है। उन्होने एक महामत्य के द्वारा कि अभिधा से वाक्यार्थ और उसके अभाव मे लक्ष्यार्थ और

१—ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त—पृष्ठ ३५४।

२—चिन्तामणि—द्वितीय भाग—पृष्ठ १८३।

व्यगार्थ की स्थिति रहती है, इसकी जागरूकता पूर्वक अभिव्यक्ति की है।[1] डा० गुलाबराय ने अभिधा, व्यजना, और लक्षणा मे चमत्कार की सम्भावना प्रकट की है। डा० नगेन्द्र ने ध्वनि और रस के परस्पर सम्बन्ध को अविछिन्न सिद्ध किया हैं। इन्होने मनोवैज्ञानिक और अ ग्रेजी आलोचना के कल्पना तत्व को महत्व देकर ध्वनि को कल्पना से और रस को अनुभूति से सम्बन्ध सिद्ध किया हैं। ध्वनि की भाँति वक्रोक्ति सिद्धान्त भी आलोचना का विषय रहा है।

वक्रोक्ति सिद्धांत

वक्रोक्तिवादी आचार्य भामह ने वक्रोक्ति को अलकारो का मूल माना था। रीतिवादी वामन ने वक्रोक्ति को एक अलकार मात्र कहा है। रुद्रट ने भी इसे एक अलकार मात्र कहा है और काकु वक्रोक्ति और भग वक्रोक्ति नामक भेदो मे बाँटा हैं। आचार्य कुन्तक ने भी इसे व्यापक धरातल पर स्थापित किया और वक्रोक्ति काव्य जीवित की स्थापना की। इन्होने रस का स्थान वक्रता का ही प्रकार माना। इनके पश्चात् मम्मट, विश्वनाथ आदि ने इसे केवल अलङ्कार ही माना। मम्मट ने शब्दालंकार कहा तो रुइक और अपयदीक्षित ने अर्थाल कार। सस्कृत के रसवादी आच.र्यों के समान हिन्दी मे वक्रोक्ति को अलकार माना जाता है। कविराज मुरारी-दान, जगन्नाथ प्रसाद भानु, केडिया जी, मिश्रबन्धु और रामदहिन मिश्र ने इसे एक अल कार ही माना हैं। भूषण और जसवन्त सिहजी ने इसे अर्थालकार माना हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रस को महत्ता दी है। साथ ही शुक्ल जी ने क्रोचे के अभिव्यजनावाद के साथ इसका विवेचन भी किया है। डा० नगेन्द्र ने इसका विवेचन मनोविज्ञान के सन्दर्भ मे किया है। सुधान्शुजी ने अभिव्यजनावाद और वक्रोक्तिवाद के भेद को स्पष्ट किया है।[2] डा० नगेन्द्र ने तो स्पष्ट रुप से कहा है कि रस मे वक्रता और विशेष रुप से कुतक प्रतिपादित वक्रोक्ति का अभाव हो ही नहीं सकता। इस प्रकार इन्होने सस्कृत की धारणाओ को हिन्दी मे उपयुक्त स्थान दिया

१—डॉ० रामलालसिंह—आचार्य शुक्ल की समीक्षा सिद्धान्त–पृष्ठ २३१।

२—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन–पृष्ठ ५४३, ५७४ ५७५।

हैं । अब तो यह भी कहा जाता है कि उपमा आदि अलकार, माधुर्य आदि गुण, गौडी पाँचाली आदि रीतिया श्रृगारादि रस और औचित्य बधनादि सभी तत्वक वक्रता के ही प्रकार है । इतने सर्व व्यापी सिद्धाँत की कुतक ने प्रतिष्ठापना की है । [१]

निष्कर्ष—

अतएव हिन्दी मे अधिकाशत: वक्रोक्ति का विवेचन रसवादी आलोचको के समान ही किया गया है, फिर भी कभी कभी उसकी व्यापकता पर भी दृष्टिपात किया जाता है । साथ ही अ ग्रेजी प्रभाव के कारण तुलना की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है और क्रोचे के अभिव्यजनावाद से इसका साम्य, वैषम्य भी दिखाकर जाता है । इसके विवेचन मे अ ग्रेजी के कार्य व्यापार का भी उपयोग किया जाता है । डॉ० नगेन्द्र ने रस को काव्य की आत्मा मानते हुए कुतक की वक्रोक्ति के अभाव मे रस निष्पत्ति संदिग्ध मानी जाती है । [२] इन्होने पाश्चात्य काव्यालोचन मे प्रचलित कल्पना तत्व को भी हिन्दी मे स्थान दिया है । इसके समान ही औचित्य सिद्धात भी विवेचन की सामग्री रहा है ।

औचित्य सिद्धान्त

औचित्य सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक थे, आचाय क्षेमेन्द्र । भरत मुनि ने भी लोक चति के अनुकूल रहने का आदेश दिया । [३] आचार्य क्षेमेन्द्रने वस्तु स्वरूप के तत्सदृश चित्र को ही उचित घोषित किया । [४] रस के लिए उन्होने औचित्य को अनिवार्य घोषित किया । आनन्द वर्धन ने क्षेमेन्द्र से पूर्व ही यह घोषणा कर दी थी कि अनौचित्य से बढ कर कोई काव्य रस भग नही है । [५] महिम भट्ट ने अनौचित्य दोष को दो भागो मे बाटा है ।

१—काव्यालोचन—पृष्ठ १०६ ।

२—डा० नगेन्द्र—वक्रोक्ति विवेचन-पृष्ठ ५५६ ।

३—नाट्य शास्त्र अध्याय १४ श्लोक ७०।८२, अध्याय २६ श्लोक ११३–११६ ।

४—औचित्य विचार चर्चा—७

५—ध्वन्यालोक—३।७–६ ।

क—अन्तरगा.—रम भावो से सम्बन्धित ।

ख—बहिरग :—शब्दो से सम्बन्धित ।

क्षेमेन्द्र का कथन है कि रम से काव्य मिद्ध होता है और औचित्य उसमे चिर स्थाई जीवन प्रदान करता है श्रृगार आदि रसो से भरपूर काव्य का औचित्य वैसे ही जीवन है ………… .. ….. .. ।[१]

हिन्दी मे बलदेव उपाध्याय और डा० मनोहर लाल गौड ने इसका सर्वांगीण अध्ययन किया है। डॉ० नगेन्द्र ने भी औचित्य और वक्रोक्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया है। बलदेव उपाध्याय ने पाश्चात्य आलोचना के साथ औचित्य का एतिहासिक विवेचन किया है। इन्होने रस की चारुता का का कारण औचित्य को माना है, जो सस्कृत की शास्त्रीय धारा के अनुकूल है।[२] औचित्य को जब हम अन्तरग और बहिरग दोनो ही दृष्टियो से देखते है तब यह पाश्चात्य आलोचना से आये हुए 'रियेलिज्म' के अनुकूल ही नही अपितु उमसे भी अधिक गहरा दिखाई देता है। पाश्चात्य जगत मे तो वह केवल पुरातन को तोड मरोड कर अथवा निम्न वर्ग को अपना कर ही सामने आता है, परन्तु भारतवर्ष मे शताब्दियो पूर्व औचित्य सिद्धान्त ने जीवन के अनुकूल रहने की शिक्षा दी। इसमे औचित्य का ध्यान कवि और सामाजिक दोनो की दृष्टियो से रखा जाता है। 'जोडन' ने सौदर्य को 'मैथोडिकल', 'लौजिकल' और 'एप्रोप्रियेट' नामक भागो मे विभाजित किया है। भारतीय औचित्य सिद्धान्त इन तीनो का समन्वित स्वरूप कहा जा सकता है। डॉ० बलदेव गौड ने औचित्य की अन्य सम्प्रदायो से तुलना की है।[३]

अतएव निष्कर्षत कहा जा सकता है कि भारतवर्ष मे आज भी औचित्य सिद्धान्तका अध्ययन किया जाता है और यदि उसका पालन किया जाय तो साहित्यिक दृष्टि से हमे लाभ होगा—साहित्य निम्न वर्ग का ही प्रतिनिधि मात्र बनने से बच जायेगा।

१—डॉ० मनोहर लाल गौड़—आचार्य क्षेमेन्द्र, औचित्य विचार चर्चा पृष्ठ ३।

२—डा० बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य शास्त्र, द्वितीय भाग पृष्ठ ३१ से ३७।

३—आचार्य क्षेमेन्द्र—औचित्य विचार चर्चा—पृष्ठ २८, ३०, ५८, ५६।

अंग्रेजी परिपार्श्व में—

जिस प्रकार से संस्कृत आलोचक वर्गीकरण की आकाक्षा रखता था और सूक्ष्म वर्गीकरण हमारी प्राचीन आलोचना पद्धति की मेरुदण्ड की उसी प्रकार मे अंग्रेजी प्रभाव के कारण आज का आलोचक वर्गीकरण को हेय मानता है। [१] [२]

अंग्रेजी आलोचको के समान हिन्दी आलोचक भी अदम्य मौलिक और पूर्ण रूपेण नवीन वस्तु या विद्या की आकाक्षा रखते है। नई आलोचना के समर्थक पाठको पर यह आतक जमाना चाहते हैं कि एक दम नई और अभूतपूर्व वस्तु प्रदान कर रहे हैं। [३] आधुनिक आलोचना मे इस तथ्य की ओर सकेत भी किया जाता है। यह कहा जाता है कि साहित्य और कला की परख का दायित्व भी दिन-दिन विशिष्ट होता जा रहा है, क्यो कि देश की बहुमुखी प्रगति हो रही है और ऐसे समय इस दायित्व को न समझना और उसको स्थगित कर देना एक प्रकार का विश्वासघात होगा। [४] अब तो यह स्वीकृत सा हो गया है कि स्थायित्व आये हुए दृष्टिकोण से साहित्य की न तो प्रगति हो सकेगी और न उसका मूल्याकन ही किया जा सकेगा। [५]

अंग्रेजी भाषा के माध्यम से अन्य भाषाओ—रूसी, जर्मन, फ्रैंच, इटावली, यूनानी आदि के काव्य शास्त्र का ज्ञान प्राप्त हुआ। यथा आज सैंट व्यूव, टेन, हिगेल, गोर्की, टोल्सटोय, चेखव और अन्य आलोचको का नाम अधिकाँशत: लिया जाता है। [६]

अंग्रेजी आलोचना ग्रन्थो का प्रभाव कई आलोचना ग्रंथो पर स्पष्ट दिखाई देता है। साथ ही लेखको की मौलिक मान्यताएं और अन्य ग्रन्थो मे ली गई

१—डॉ० एस० पी० खत्री—आलोचना इतिहास और सिद्धान्त-पृष्ठ ८ एव शिवदान सिंह चौहान—आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ १७०।

२—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य कोष—डॉ० बच्चनसिंह कृत नाट्य वस्तु विवेचन।

३—शिवदान सिंह चौहान—आलोचना के सिद्धान्त-पृष्ठ १७६, १८०।

४—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त—पृष्ठ ८।

५—वही पृष्ठ ३०३।

६—आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ १००, १६५।

सहायता भी वहाँ स्पष्ट हो जाती है । श्री शिवदान सिंह चौहान की पुस्तक आलोचना के सिद्धान्त इसका प्रमाण है । उसमे किया गया अ ग्रेजी, फ्रैंच और जर्मनी आलोचको का अध्ययन, 'दी मेकिंग आफ लिटरेचर' पर आधारित है । साथ ही उनकी साम्यवादी लेखको—चेर्नाविस्की आदि की विवेचना रूसी ग्रन्थो के अ ग्रेजी अनुवाद पर आधारित है । किन्तु यहाँ यह मानना ही होगा कि यथा स्थान किया गया मत प्रतिपादन उनकी अपनी आलोचना का परिणाम है—पुस्तक मे उनकी अपनी धारणाएँ भी विद्यमान है । उदाहरण के लिए नई आलोचना को हेय मानना देखा जा सकता है अ ग्रेजी के प्रभाव के कारण व्याख्यात्मक पद्धति, एतिहासिक पद्धति, मनोवैज्ञानिक पद्धति, आगमन पद्धति और रचनात्मक पद्धति आदि साहित्य मे काम मे ली जाती है ।

आधुनिक युग मे अ ग्रेजी प्रभाव के कारण सस्कृत काव्य शास्त्र को भी अग्रेजी समीक्षा सिद्धान्तो के समकक्ष रखा गया और आलम्बन, उद्दीपन, स्थाई भाव और अनुभाव आदि का नवीन दृष्टि से परीक्षण किया गया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रामदहिन मिश्र और आधुनिक शोध कर्ताओ के ग्रन्थ उदाहरण स्वरूप पढे जा सकते है । यहाँ एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि हिन्दी मै अभी अ ग्रेजी मनोवैज्ञानिक और अन्य शब्दो के स्थिर प्राप्य नही है । एतदर्थ एक ही भाव को भिन्न-भिन्न रूपो मे लिखा जाता है । यथा सैटीमेट को ही कही स्थिर वृत, कही भाव कोष कही मनोवृत्ति कह दिया जाता है ।[1] ऐसी ही अवस्था अन्य शब्दो की होती है ।[2] अलकारो की भी यही अवस्था है–'ओनोमोटोपिया' को कही ध्वन्यानुकारी कहा जाता है तो कही अनुनादन ।[3] इससे अधिकाशत: समझने में सुविधा नही होती है और एक ही पुस्तक मे यह शब्दावली विचित्र भी है । कई बार सस्कृत के अनुवाद किए जाते हैं किन्तु उनकी भूमिकाएँ अग्रेजो द्वारा लिखी जाती है । गुप्तजी कृत स्वप्न वासवत्ता के अनुवाद की भूमिका जेशरीफ ने लिखी है । इसी भाँति कई पुस्तको की आलोचनाएँ अग्रेजी मे अथवा अग्रेजो द्वारा लिखी जाती हैं ।

१—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन–पृष्ठ २८ व ३२ ।

२—वही–पृष्ठ २८ से ७६ ।

३—वही–पृष्ठ ३७१ से ३७४ ।

अंग्रेजी के प्रभाव के कारण कई नवीन आलोचना शैलियो का प्रादुर्भाव हुआ। मार्क्सवादी मनोविश्लेषण वादी, अभिव्यजना वादी, प्रभाववादी और ऐतिहासिक तथा जीवनचरित मूलक समीक्षा पद्धतियाँ। प्रकृतिवादी समीक्षा शैली के विवेचन मे थीसिस, एन्टीथीसिस और सिन्थेसिस का भी उल्लेख किया जाता है यथा-अवस्थान प्रत्यावस्थान तथा साम्यावस्थान की कथा दुहराई जाने लगती है और इसी प्रकार थीसिस एन्टीथीसिस तथा सिन्थेसिस की क्रिया मे जगत का विकास होना रहता है। विकास के मूल मे यह द्वयव विद्यमान रहता है अतएव यह प्रणाली द्वन्तात्मक कही जाती है। इस प्रकार परिवर्त्तन ही विकास का चिन्ह है। विकास का चिन्ह माने तो कहेगे कि इसी प्रकार वस्तु सदैव उन्नति की ओर धावित होती है। उसमे क्रमश: अधिकाधिक प्रौढता और उत्तमता आती जाती है। यही कारण है कि इसे प्रगतिवाद की सज्ञा दी जाती है।[1]

सामूहिक भाव और साधारणीकरण की तुलना भी की जाती है। कोडवेल के कलेक्टीव इमेजिनेशन और अन्य आलोचको की धारणाओ को भी व्यक्त की जाती है। उदाहरणार्थ निम्नांकित कथन देखिए-सामूहिक भाव से कोडवेल का अभिप्राय उस भाव कोष से है जो परिस्थितियो तथा सस्कारो के कारण किसी देश काल मे विशाल जनसमाज के हृदय मे अपनी स्थिति बना लेता है।[2]

फ्रायड के मनोविज्ञान एवं अडलर और युग का विवेचन भी किया जाता है। डॉ० देवराज उपाध्याय कृत आधुनिक कथा साहित्य मे मनोविज्ञान और डा० राकेश गुप्त कृत साइकोलजिकल स्टडीजओफ रसास इसके उदाहरण हैं। अंग्रेजी के प्रभाव के कारण निम्नांकित आलोचनाये भी सामने आयी। जैसे पाठोलोचन। प्रारम्भ मे यह कार्य अंग्रेज विद्वानो द्वारा किया गया जिसे कालान्तर मे भारतीय विद्वानो ने इसे अपनाया। डॉ० माताप्रसाद का रामचरित मानस और जायसी ग्रन्थावली का सम्पादन इसका उदाहरण है। तुलनात्मक अध्ययन को भी विदेशी आलोचना से बल प्राप्त हुआ और शोध ग्रन्थो के अतिरिक्त भी इसे स्थान दिया गया। शची रानी गुर्टू का साहित्य दर्शन इसका उदाहरण है।

१—डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित——रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृष्ठ ३९६-९७।

२—नयी समीक्षा—पृष्ठ २२।

आधुनिक आलोचक अंग्रेज आलोचको के उद्धरण प्रस्तुत कर उनके द्वारा अपने मत की पुष्टि करते है। वे अंग्रेजी के माध्यम से अन्य भाषाओ के आलोचको के मत भी प्रकट करते है। अरस्तु का केथारसिस[1] और लनजाइनस के ओन दी सबलैम आदि के विवेचन इसके उदाहरण है।

भरत ने पाचाली, अवन्ती उद्मॉगधी और दक्षिणावंत प्रवृत्तियो का विवेचन किया। भामा के समय मेप्रादेशिक साहित्य की शैलियाँ निश्चित भी हो गई थी। अतएव प्रादेशिक साहित्यिक कृतिया भारत के लिए नवीन नही थी। फिर भी अंग्रेजी साहित्य मे प्रादेशिक उपन्यास पाये गये तब हिन्दी मे भी ऑचलिक उपन्यासो की रचनाये की जाने लगी। हिन्दी आलोचको ने उसे एक नवीन विद्या के रूप मे स्वीकार किया। इस प्रकार प्राचीन भारतीय शैली नें पाश्चात्य से स्वीकृति प्राप्त कर नवीन रूप धारण किया।

इस युग मे सस्कृत की शास्त्रीय विधाओ की अंग्रेजी से तुलना की जाने लगी और सस्कृत की शब्दावली के साथ अंग्रेजी की शब्दावली को भी स्थान दिया जाने लगा जैसे—अलकार सिद्धान्त की कल्पना का आधार कालरिज की ललित कल्पना (फेन्सी) है और वक्रोक्ति सिद्धात की कल्पना का आधार कालरिज की मौलिक कल्पना (प्राइमरी इमेजिनेशन) है।[3] आजकल प्राचीन आलोचको के मूल्याकन की भी प्रवृति बलवती होती जा रही है। सस्कृत और अंग्रेजी के शास्त्रीय सिद्धान्तो की तुलनाये भी की जाती है। वक्रोक्ति और अभिव्यजनावाद की तुलना इसका उदाहरण है।[4]

आज आलोचना के जागरूक और देश काल सापेक्ष प्रयास किए जाते है। आलोचना करना दायित्व माना गया है—यहाँ पहले शास्त्रीय विवेचन साहित्य विधुधो और सहृदय सामाजिको के लिए होता था वहाँ आज आलोचनात्मक साहित्य सृजन देश के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया है।[5] देशप्रेम की इस धारणा पर पाश्चात्य प्रभाव सहजही दिखाई देता है। एक तथ्य यह भी है कि आलोचना की महत्ता प्रतिपादित करते समय अंग्रेजी आलोचना के मूल्यो की ओर सकेत किया

१—आधुनिक हिन्दी मराठी काव्यशास्त्रीय अध्ययन–पृष्ठ १११।
२—आलोचना के सिद्धान्त–पृष्ठ ५ से २५।
३—हिंदी वक्रोक्ति जीवित भूमिका।
४—डॉ० एस० पी० खत्री–आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त।
५—आलोचना सिद्धान्त और अध्ययन–पृष्ठ १८।

जाना है और लिख दिया जाता है कि अंग्रेजी साहित्य में तो आलोचना और आलचको की महत्ता अन्य देशो से कही अधिक महत्वपूर्ण दिखाई दे रही है और प्रायोगिक तथा ऐतिहासिक आलोचना का विस्तार अत्याधिक बढ गया है और आलोचना ससार मे एक नवीन स्फुरण हो रहा है।[1] इतना ही नही अंग्रेजी, यूनानी और रोमन आलोचको का हिन्दी मे ऐसा वर्णन किया जाता है मानो कि वो ही हिन्दी आलोचना के आधार हो।[2] जैसाकि पहले कहा जा चुका है पाश्चात्य आलोचना से ही खोज साहित्य का उद्भव हुआ जिसके कारण आलोचको और शोधार्थियो मे मौलिकता का आग्रह बढा। यथार्थ का आग्रह भी अंग्रेजी आलोचना शैली के कारण मान्य हुआ। जब यथार्थवादी साहित्यिक विधाओ का समर्थन किया जाने लगा, डॉ० लक्ष्मीनारायन लाल ने अपनी रचनाओ द्वारा निम्न और विमत्सरसोद्रेक कार्य घटनाओ का दिग्दर्शन कराया और भूमिका मे उनका समर्थन भी किया।

अब तो नायक के स्थान पर सभी पात्र महत्वपूर्ण होने लगे। यही अवस्था स्त्री पात्रो की भी हुई। नाटको मे—पुरातन नाटको को तो एकपात्रीय दर्शन कहा जाने लगा। ऐसे भी नाटक हुए जिनमे कि सामाजिक सघर्ष ही नेता के रूप मे सामने आया। यही अवस्था प्रादेशिक उपन्यासो मे प्रादेशिक वातावरण की हुई। इस प्रकार साहित्य मे व्यक्तियो के स्थान पर वातावरण ने प्रमुखता प्राप्त की। इसका समर्थन आलोचना द्वारा किया गया। कई आलोचक तो बर्नार्ड शॉ के समान अपने वाद का प्रचार करने लगे।

अंग्रेजों की प्रेरणा और उनके कार्य

सस्कृत ग्रन्थो के अंग्रेजी मे अनुवाद किए गए जिनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजो ने सहायता और प्रेरणा देकर भारतीय काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो के हिन्दी मे अनुवाद कराये, यथा श्री सुशील कुमार डे का ध्यान वक्रोक्ति काव्य जीवितम् की ओर इन्डिया आफिस लाईब्रेरी के पुस्तकालय के अध्यक्ष, प्रोफेसर एस०डब्ल्यू० टोमस ने आकर्षित किया।[3] तदुन्तारन्त बर्न विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जकोबी ने डे महोदय को बुलाया और दोनो ने मिलकर इसके

१—आलोचना सिद्धान्त और अध्ययन—पृष्ठ १०।
२—वही—पृष्ठ १२।
३—हिन्दी वक्रोक्ति काव्य जीवित आमुख—पृष्ठ १२।

दो उन्मेशो का अनुआद किया। इस प्रकार उक्त पाश्चात्य महानुभावों का इसके सम्पादन मे विशेष हाथ रहा है।

दृष्टिकोण और भावना पर प्रभाव—

इस युग मे अंग्रेज आलोचको की आलोचनाओ को स्वीकार किया गया अथवा उनकी प्रतिक्रिया हुई किन्तु साहित्य पर अंग्रेज लेखको और आलोचको की कृतियो की मान्यताओ और उक्तियों का प्रभाव अवश्य दिखाई देता है। इन धारणाओ मे हमारी देश कालीन परिस्थितियो और हमारे साहित्य ने भी सहयोग दिया। कई बार तो हमारी मान्यता भी परिवर्तित हो गई। यथा ब्राउम ने रामचरित मानस के अनुवाद मे कहा—दरबार से लेकर झोपडी तक यह ग्रन्थ (रामचरित मानस, जिसे ब्राउस ने रामायण कहा) सब के हाथों में है, और प्रत्येक वर्ग के हिन्दुओं द्वारा वे चाहे बडे हो या छोटे, धनी हो या निर्धन, बालक हो अथवा बुड्ढे, पढा जाता है, सुना जाता है और भलीभाँति समझा जाता है।[1] डाक्टर ग्रियर्सन ने भी लिखा है कि —भारतीय लोग इनको (सूरदास को) कीर्ति के सर्वोच्च गवाक्ष मे स्थान देते है, पर मेरा विश्वास है कि यूरोपीय पाठक आगरा के अन्धे कवि की अत्याधिक माधुरी की अपेक्षा तुलसी दास के उद्भट चरित्रो को अधिक पसन्द करेगा।[2] इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी मे तुलसीदास का समर्थन किया गया और उसे अन्य कवियो से श्रेष्ठतर सिद्ध किया गया।[3] अब तो स्वीकार कर ही लिया गया कि हिन्दी मे ग्रियर्सन ने सूर सूर तुलसी शशी की मान्य परम्परा को अपनी आलोचना से बदल दिया। उन्हे सूर की अपेक्षा तुलसी ईसाई मत के अधिक निकट जान पडे।[4]

डॉक्टर ग्रियर्सन ने कहा कि जहाँ तक शैली का सम्बन्ध है वे (तुलसीदास)

१—श्री किशोरी लाल गुप्त कृत ग्रियर्सन के साहित्य का अनुवाद—पृष्ठ ६६

२—क—वही – पृष्ठ १०७ ख— भारत के इतिहास में तुलसी दास का महत्व जितना भी आंका जाता है, वह अत्याधिक नहीं है .. .. हिन्दुस्तान की अधिकाश जनता के लिये.. ... . चरित्र का एकमात्र प्रति मान तुलसी कृत रामायण है। वही—पृ० १३७

३—शुक्ल जी कृत तुलसी दास –पृ० १५, २२

४—श्री किशोरी लाल गुप्त कृत ग्रियर्सन के साहित्य का अनुवाद—पृ० २३

सरलतम प्रवाह पूर्ण वर्णनात्मक शैली से लेकर जटिलतम साकेतिक पद्य प्रणाली के आचार्य थे।[१] हिन्दी मे अ ग्रेजी की कई परिभाषाएँ अपना ली गई —

हिन्दी में अंग्रजी की परिभाषायें—

अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वानो की काव्य, साहित्य, नाटक, उपन्यास, गद्य-पद्य, ...प्रभृति की परिभाषाएँ हिन्दी मे बहुतायत से दी जाती है। अंग्रेजी मे जो परिभाषाएँ है उनका विवेचन किया जाता है। उदाहरणार्थ साहित्य की व्याख्या करते हुए प्राप्त होता है—अंग्रेजी मे साहित्य का निरूपण.........इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटानिका की परिभाषा......हैनरी हडसन......मैथ्युआर्नेल्ड'' 'एम० जी० माटे '.....।[२] इसी भाति काव्य की परिभाषा मे भी पाश्चात्य विद्वानो के मत उधृत किये जाते हैं।[३] युरोपीय भाषाओ के साहित्य भी चर्चा,विवेचना और तुलना के विषय बनते है। कहानी की बात कहते समय जब तक एडगर एलन पो की परिभाषा नही दी जाती है यब तक विवेचन अधूरा ही समझा जाता है। नाटकों के सम्बन्ध मे एलार्डिश निकल और आलोचना मे आई० ए० रिचर्डस के नाम अवश्य ही लिए जाते है। इस प्रकार अ ग्रेजो की परिभाषाएँ और अ ग्रेज आलोचको के सिद्धान्तो ने हिन्दी आलोचना को प्रभावित किया है।

साहित्यि की विभिन्न विधाएँ

अंग्रेजी प्रभाव—

हिन्दी की विभिन्न विधाओ की आलोचना करते समय अंग्रेजी की विधाओं उनकी तुलना की जाती है और उनके स्वरूप निर्धारण पर भी अंग्रेजी का प्रभाव दिखाई देता है। उदाहरणार्थ साहित्य को ही लीजिए। डॉ० श्याम सुन्दर दास ने साहित्य शब्द को दो अर्थो मे प्रयुक्त किया है—(क) छपी हुई रचना के अर्थ मे। (ख) कलामय पुस्तको के रूप मे।

१—किशोरी लाल गुप्त कृत ग्रियर्सन के साहित्य का अनुवाद पृष्ठ—१४२

२—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत–शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पहला भाग–पृष्ठ ५

३—प्रोफेसर भारत भूषण सरोज–साहित्यिक निबन्ध–पृष्ठ १७–२५

यह अवश्य ही अ ग्रेजी के लिट्रेचर से प्रभावित है । अ ग्रेजी मे साहित्य को इन्ही दो अर्थो मे विभक्त किया जाता है—(क) लिट्रेचर ओफ नौलेज, (ख) लिट्रेचर ओफ पोवर । मुन्शी प्रेमचन्द ने साहित्य को जीवन की व्याख्या माना है। यह मैथ्यु-आरनल्ड की परिभाषा–लिट्रेचर इज दी क्रिटीसिज्म ओफ लाइफ का अनुवाद प्रतीत होता है । साहित्य शब्द के समान साहित्य की प्रेरक शक्तियाँ भी अ ग्रेजी से प्रभावित दृष्टिगोचर होती है ।

प्रेरक प्रवृत्तियाँ—

क—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने साहित्य की प्रेरक प्रवृत्तियो का विवेचन करते हुए डिकन्सी और हडसन के मत उधृत किए है ।[२] साथ ही बहुधा लेखक क्रिस्टोफर काडवेल और रेल्फफाक्स आदि के नाम भी ले लेते है । फ्रायड, एडलर और यू ग की परिभाषाए भी इस सम्बन्ध मे उधृत की जाती है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आत्माभिव्यक्ति को प्रेरक तत्व माना जाता है । इस दृष्टि से डा० नन्द दुलारे वाजपेयी डॉ० नगेन्द्र, डॉ० राम शकरजी शुक्ल रसाल, डॉ० सरनामसिह जी शर्मा और डॉ० राम कुमार वर्मा का ज्ञान उल्लेखनीय है । साहित्य के समान काव्य सम्बन्धी धारणाओ पर भी अ ग्रेजी प्रभाव दिखाई देता है ।

काव्य—

प्रसाद जी काव्य के बारे मे कहते हैं—आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था, जो श्रम सत्य को उसके मूल चारुत्व मे ग्रहण कर लेती है, काव्य मे मूल सकल्पात्मक अनुभूति कही जायेगी । यह भवभूति की निम्नाकित उक्ति अमॆताmात्मनः कलाम ।[३] एवम् बृहदारण्य कोप निषद के अय आत्मा वागमय कथन से तुलनीय हैं । महादेवी ने कहा है—कविता कवि विशेष की भावनाओ का चित्रण है

४—कुछ विचार –पृष्ठ ६

२—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त–पृष्ठ ७, पृष्ठ ३४ पहला भाग ।

३—उत्तरराम चरित्र । (क) आत्माभिव्यक्ति वह मूल तत्व है जिसके कारण कोई व्यक्ति साहित्यकार और उसकी कृति साहित्य बन पाती है । विचार और विवेचन ।

और वह चित्रण इतना ठीक है कि उसमे वैसी ही भावनाये किसी दूसरे के हृदय मे आविर्भूत होती है। इस पर रस और साधारणीकरण से सम्बन्धी भावनाओ का प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही यह कहना भी असगत न होगा कि दूसरो के हृदय मे वे ही भावनाएँ उत्पन्न करने की कामना पर टाल्सटाय का प्रभाव है जो अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त हुआ है। डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने विभिन्न अंग्रेजी और पाश्चात्य आलोचको के मत इस सम्बन्ध मे प्रस्तुत किए है।[1] ऐसी ही अवस्था काव्य के भेदो की है।

काव्य के भेद—

अंग्रेजी मे जिन साहित्यिक विधाओ का समर्थन हुआ वे तो हिन्दी मे स्थायित्व ग्रहण करने लगी और अन्य काव्य भेद विस्मृत से कर दिए गए। यथा आचार्य भामाने वस्तु को(क)देवादिक वृत सम्बन्धी,(ख)उत्पाद्य,(ग)कलाश्रित और(घ,शास्त्राश्रित भेद किए।[2] इन भेदो को हिन्दी मे केवल उत्पाद्य मिश्रित और प्रख्यात नायक भेदो मे ही स्वीकार किया गया, क्योकि अंग्रेजी मे एडीसन ने ऐसे ही भेदो को मान्यता दी है।[3] इसी भाँति सगबद्ध, अभिनय, आख्यायिका, कथा और अनिबद्ध मे से प्रबन्ध काव्य, नाटक, उपन्यास, मुक्तक और निबन्ध प्रभृति अंग्रेजी के सम्पर्क मे अधिकाशत उसके सदर्भ मे अपनाये गए। प्रबन्ध मे भी अनुमान लगाया जाता है कि प्रबन्ध काव्य के स्थान पर महा काव्य और खण्ड काव्य नामो का विशेष प्रचलन अंग्रेजी के इपिक और एपीसोड के प्रभाव का परिणाम हो सकता है। अग्नि पुराण के प्रकीर्ण काव्य का तो विस्मरण ही हो गया। इस भाति वामन कृति गद्य,पद्य और चम्पू तो अपना लिए गए परन्तु उनके द्वारा बताये गए गद्य के भेद—वृत गन्धी, चूर्ण और उत्कलिका [4] का ज्ञान आज शास्त्रवेताओ तक ही सीमित हो गया है। यही अवस्था ध्वन्या लोक की लोचन टीका मे दिए गए भेदो की है। ये तो किसी अन्य भाषा के काव्य भेदो के समान सुनाई देते है। समय के साथ मम्मटकृत चित्र काव्य

१—डॉ०गोविन्द त्रिगुणायत—समीक्षा शास्त्र के सिद्धात—पृष्ठ ७४—७६ भाग पहला।
२—काव्यालकार-१।१६।
३—स्पैक्टेटर पेपर्स।
४—एक। २८, २६, ३०।

भी आज बीते युग की वात हो गए है । आचार्य विश्वनाथ द्वारा बताये गए भेद भी आज शास्त्रीय ग्रन्थो की ही शोभा बढाते है ।[1] साथ ही अ ग्रेजी ने हमे नये काव्य भेद प्रदान किए है जिनमे से बहुत से तो बहुत ही प्रचिलित हो गए है । जैसे वीरगीत, एकाकी, रेडियो रूपक और आलोचना के विभिन्न वाद हमारे मत की पुष्टि करते है । यही अवस्था काव्य के विषयो की हुई है ।

काव्य के विषय—

वैसे तो सस्कृत मे नाट्य शास्त्रकार[2], भामह,[3] और धनञ्जय[4] प्रभृति का आदेश है कि हर वस्तु काव्य के रसोद्रेक का कारण बन सकती है । सस्कृत साहित्य मे प्रबन्ध काव्य और नाटक[5] आदि रचनाओ के लिए सूक्ष्म भेद-प्रभेद बताये गए थे । अ ग्रेजी प्रभाव के कारण वे नियम लुप्त हो गए और काव्यकार स्वच्छन्दता चाहक बनने लगे । जहा रीतिकाल तक मे आप्त वाक्य नियम से थे, अब नियमोलघन ही एक विशिष्ट प्रवृत्ति बन गया ।

अब काव्य पर अ ग्रेजी प्रभाव बताया जाता है । डॉ० रविन्द्र सहाय कृत अ ग्रेजी काव्य पर अ ग प्रभाव और डॉ० विश्वनाथ कृत्य हिन्दी भाषा और साहित्य पर अ ग्रेजी प्रभाव हमारे कथन की पुष्टि करते है । इनमे भारतेन्दु, प्रसाद और आधुनिक कवियो व उनकी कृतियो पर अ ग्रेजी प्रभाव प्रदर्शित किया जाता है । कवियो के दृष्टिकोण पर पडे हुए अ ग्रेजी के प्रभाव का भी मूल्याकन किया जाता है ।

पश्चिम के बुद्धिवादी दृष्टिकोण ने भी हिन्दी कविता को प्रभावित किया है । अयोध्यासिह उपाध्याय के प्रिय प्रवास मे यह प्रभाव दृष्टव्य है, उसमे कृष्ण की अवतारणा दैवी विभूति के रूप में नही, वरन लोक मगल की भावना से समन्वित महा

१—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त-पृष्ठ १७३ ।

२—१।१७ ।

३—काव्यालकार सूत्र ५।४

४—दशरूपक ५।८५ ।

५—देखिए लेखक की (प्रकाशाधीन कृति) सस्कृत अ ग्रेजी नाटक—प्रथम खण्ड ।

मानव के रूप मे हैं।[1] यहा यह कहना सामयिक ही होगा कि अब विषय विस्तार हो गया है। हर व्यक्ति, वस्तु और स्थान काव्य के उपादान बन सकते है। यही क्यो कई बार तो प्रतिक्रिया स्वरूप जीवन के हेय और कुत्सित अगो और समाज के निम्न वर्ग का ही चित्रण किया जाता है। यथार्थवाद इसे बल प्रदान करता है। अब कोई भी पुरुष काव्य का नायक हो सकता है।

नायक-नायिका—

अ ग्रेजी प्रभाव के कारण अब नायक नायिका का सस्कृत काव्य शास्त्रो के समान सूक्ष्म विवेचन नही किया जा सकता है। काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो और शास्त्रीय कोषमे ही वे प्राप्त हो सकते है। उदाहरणार्थ डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा प्रभृति के ग्रन्थ इसके साक्षी है। किन्तु साधारणतया आलोचना मे इनका उल्लेख नही किया जाता है।[2] [3] अब तक हर व्यक्ति नायक होने का अधिकारी हो चुका है। यही नही साधारण श्रेणी के नायको की सख्या आज बहुतायत से प्राप्त होती है। अ ग्रेजी के समान आज तो बिना नायक के नायिका प्रधान ग्रन्थ भी प्राप्त होते है अथवा नायिका का नायक की विवाहिता पत्नी होना आवश्यक नही माना जाता है।[4] पहले के से नायिकाओ के सूक्ष्म भेद-विभेद अब विरले ही स्थानो पर मिलते है।[5] यही अवस्था विरह, सयोग, मान, उपालम्भ और अन्य भाव विभावोकी हो गई है। शैली भी इसका अपवाद नही है।

शैली—

शैली के विवेचन मे पाश्चात्य विद्वानो के मत उधृत किये जाते हैं। डॉ०

१—डॉ० विश्वनाथ मिश्र–हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव—पृष्ठ २५८।

२—हिन्दी साहित्य शास्त्र–पृष्ठ २३६–२३८।

३—हिन्दी साहित्य कोष–नायक नायिका विवेचन।

४—हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन—आधुनिक नाटकों का विवेचन।

५—वर्णन निमित्त देखिये—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत का शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त–पृष्ठ २२४–२४३।

त्रिगुणायत ने मिडल्टन मरे के अनुसार शैली मे व्यक्तित्व उसकी वैधानिक विशेपताओं और उसके विकास की स्थितियो का उल्लेख किया है ।[1] यह स्पष्ट कर देता है कि हिन्दी मे शैली विवेचन अग्रेजी के आधार पर किया जाता है और शैली ही व्यक्तित्व है, भी कहा जाता है । यह स्टाइल इज दी मैन से प्रभावित प्रतीत होता है । इसमे यथार्थता, स्पष्टता और उपयुक्तता भी क्रमश प्रिसीजन, ल्यूसीडिटी, प्रोप्राइटी के अनुदित रूप हैं जो हडसन से लिए गए है । इसी भाँति शैली मे फोर्स, एनर्जी, सजेस्टीवनेस, म्यूजिक, ग्रेश, ब्यूटी और चार्म भी अग्रेजी से आये है ।[2] कला पक्ष और भाव पक्ष भी इस प्रभाव मे नही बच सके है ।

कला पक्ष और भाव पक्ष—

अग्रेजी प्रभाव के कारण काव्य को कला पक्ष और भाव पक्ष मे बाटा जाता जाता है । यह प्रत्यक्षत फोर्म और मैटर का अनुवाद है । अग्रेजी मे यह विवाद युगो तक चलता रहा आज भी कभी कभी वे इसका स्मरण कर लेते है । कोई कहता था वाट ओफन वाज थौट, बट नेवर सो वैल एक्सप्रेस्ड ।[3] इसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप मे कहा जाने लगावाट ओफन वाज एक्सप्रेस्ड बट नेवर सो वैल थौट । अठारहवी शताब्दी के कवियो ने फोर्म को महत्व दिया है तो रोमेन्टिक कवियो ने मैटर को । आज सतुलन की ओर अधिक झुकाव है और यदि बाध्य होकर तुलना करनी ही पडती है तो भावो को कला से अधिक महत्व दिया जाता है । आई० ए० रिचर्डस और टी०एस० इलियट इसके समर्थक है । हिन्दीमे भी यही मत प्रचलित है । फिर भी यह उल्लेखनीय है कि कला पक्ष के विवेचन मे हिन्दी मे अग्रेजी के सिद्धान्तो को महत्व दिया जाता है । अधिकाशत. दोनो का सुखद समन्वय ही कला का उद्देश्य माना जाता है किन्तु जो सिद्धान्त सस्कृत और अग्रेजी मे उभयनिष्ठ होते है वे तो स्थायित्व प्राप्त कर लेते है और केवल सस्कृत के गुण बहुधा छोड़ दिये जाते है और अग्रेजी की तत्व अधिकाशत ग्रहण कर लिये जाते है । कला पक्ष के विवेचनमे शैली

१—वर्णन निमित्त देखिये—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत का शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—पृष्ठ २४२—२४३ ।

२—वही पृष्ठ—९८—९९ ।

३—पोप-नव्य शास्त्र वादी कवियों और आलोचकों की मान्यताये ऐसी ही थीं ।

को भी महत्व दिया जाता है । इसका विवेचन यथा स्थान किया जा चुका है । यहाँ इतना ही कहना सगत होगा कि शैली मे लेखक का व्यक्तित्व अवश्य ही सम्मिलित कर लिया जाता है । इसमे विषय प्रतिपादन कौशल का विशिष्ट हाथ रहता है । यद्यपि रीति शब्द मे व्यक्ति तत्व के मिश्रण के अस्तित्व की ओर भी आलोचक सकेत कर देते है किन्तु सामान्यत शैली के रूप मे अ ग्रेजी से आया हुआ स्टाईल का समानार्थी शब्द ही प्रयुक्त होता है और गौडी, वैदर भी और पाचाली आदि रीतियाँ या अन्य मार्ग अथवा प्रवृतियाँ स्थान नही प्राप्त करती है । रीति कहने से सस्कृत का आभास प्रकट होता है और शैली कहने पर आधुनिक मतव्य प्रकट होता है । कलापक्ष और भाव पक्ष के परिपार्श्व मे जहाँ आधुनिक शैली को स्थान दिया गया वहाँ परम्परानुगत उद्देश्य मे भी परिवर्तन हो गया ।

उद्देश्य—

पाश्चात्य शास्त्रो मे काव्य की रूप वैधानिकता चरित्र चित्रण, वस्तुनिरूपण सवाद, भाषा शैली और उद्देश्य को महत्व दिया गया है । वहाँ काव्य का उद्देश्य ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द प्रदान करना न होकर विचारोत्तेजक सामग्री प्रदान करना माना गया है । वे बहुधा जीवन का यथा तथ्य चित्रण करना, किसी विचार धारा को प्रति पादित करना अथवा यौन सम्बन्धो या आर्थिक बाधाओ को प्रकट करना भी साहित्य का उद्देश्य मानते है । मनोवैज्ञानिको ने मनोविश्लेषण द्वारा उन्हे और भी सबल बनाया है । हिन्दी मे भी उपर्युक्त तत्वो के अनुसार उद्देश्य मे परिवर्तन हो गया है । अब जीवन की व्याख्या करना और यर्थाथ चित्रण प्रस्तुत करना भी उद्देश्य माने जाते है ।

काव्य और कला—

काव्य और कला के सम्बन्ध पर भी अ ग्रेजी प्रभाव दिखाई देता है । अंग्रेजी प्रभाव के कारण काव्य को कला के अन्तर्गत माना जाता है । पन्त निराला और महादेवी ने ऐसा ही किया है । डॉ० गोविन्द त्रिगुणायन भी कहते हैं कि साहित्य को अब भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान कला ही मानते है । [1] इससे उन पर अ ग्रेजी

१—डा० त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—पृष्ठ १० ।

प्रभाव परिलक्षित होता है । उन्होने कला सम्बन्धी बिभिन्न पाश्चात्य विचारको के मत भी उदरित किए हैं ।[1] शुक्ल जी ने एक की अनुभूति को दूसरे तक पहुँचाने को कला कहा है ।[2] इस पर टालसटाय का प्रभाव है । गुप्तजी ने अभिव्यञ्जनावाद से प्रभावित हो अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति को कला कहा है । साथ ही वे उसे केवल मनोरजन हित देखना नही चाहते है ।[3] इसी भाँति डॉ० त्रिगुणायत कला को अनुभूति सौन्दर्य के सजीव पुनर्विधान की सज्ञा देते है ।[4] इस पर क्रोचे के अभिव्यजनावाद का प्रभाव है । क्रोचेने इम्प्रैशन,सप्रेशन और सजेशन,फोर एक्प्रेशनको अभिव्यजना कहा है । डॉ० त्रिगुणायत ने इम्प्रेशन को अनुभूति सौन्दर्य और अन्य शब्दो को पुनर्विधान से ध्वनित किया है । हिन्दी मे अग्रेजी के निम्नाकित कला सम्बन्धी विचारो को भी स्थान दिया गया है —

क—कला कला के लिए, ख—कला जीवन के लिए, ग—कला अपने ही लिए, घ—कला सर्जन की अदम्य आवश्यकता के रूप मे, च—कला जीवन से पलायन-हेतु और छ—कला जीवन मे प्रवेश-हेतु आदि ।

इनमे से अधिकाश को कई आलोचना पुस्तको मे स्थान मिल जाता है । मुख्य रूप से कला जीवन के लिए और कला कला के लिये सिद्धान्तो को मान्यता प्रदान की जाती है ।

सौष्ठववादी आलोचना—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भूमिकाओ मे अपने दृष्टिकोण को प्रकट करना अंग्रेजी प्रभाव का परिणाम है । यह शैली आधुनिक कविमाला मे पूर्णरूपेण

१—डॉ० त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—पृष्ठ ३७ ।

२—काव्य में रहस्यवाद—पृष्ठ १०४ ।

३—"हो रहा है जो जहां सो हो रहा—यदि वही हमने कहा तो क्या कहा,
किन्तु होना चाहिए कब क्या वहां—व्यक्त करती है कला यह यहाँ ।
...मानते है जो कला के अर्थ ही, स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही ।
वह तुम्हारे और तुम उसके लिए, चाहिए पारस्परिकता ही प्रिये ।
—साकेत प्रथम सर्ग ।

४—डॉ० त्रिगुणायत—साहित्य समीक्षा के सिद्धान्त—पृष्ठ ५० ।

मुखरित हुई है। द्विवेदी कालीन इति वृतात्मकता की प्रतिक्रिया मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अवश्यमभावी थी। साथ ही साहित्य स्वय गतिशील है और अ ग्रेजी साहित्य हिन्दी को इस समय तक अधिक आकर्षित करने लगा। समाज मे अ ग्रेजी का पठन पाठन और प्रचलन बहुत बढ गया। अतएव ऐसे समय मे नवीन छायावादी सृष्टि स्वाभाविक थी।[१] इस मे देश की राजनीतिक स्थिनि ने भी सहयोग दिया।[२]छायावाद के विकाश मे क्रोचे के अभिव्यजनावाद का भी हाथ रहा। साथ ही सस्कृत के वे वाद जो अ ग्रेजी के रोमेन्टीसिसम से मिलते जुलते थे उन्होने भी इसके विकास मे शक्ति प्रदान की प्रसादजी कहते हैं—धन्यात्मकता, लाक्षणिकता सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ सहानुभूति की प्रवृत्ति छायावाद की विशेपताये है।[३] इन विशेषनाओ मे प्रथम दो भारतीय काव्यशास्त्र के अनुकूल है और सौन्दर्यमय प्रतीक विद्यमान रोमेन्टीसिसम का आधार है। अन्तिम दो दोनो मे उभयनिष्ठ है। इस प्रकार छायावाद मे नवीनता का आग्रह था और उसे स्वीकार किया गया भारतीय धरातल पर। छायावाद के सम्मुख प्रारम्भसे ही किस ओर की समस्या विद्यमान थी? पल्लव की भूमिका में पन्तजी ने इसे अभिव्यक्त भी किया। यहाँ यह स्मरणीय है कि उस समय तक अर्थात् पल्लव की भूमिका लिखने तक पन्तजी और सामाजिक छायावाद नाम से परिचित नही थे। यह नाम बाद मे दिया गया है।[४] पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी प्रारम्भ से ही छायावाद के स्वस्थ पक्ष के समर्थक रहे हैं।

शुक्लजी ने छायावाद की कटु आलोचना की। श्री वाजपेयी जी ने काव्य को बँधी बँधाई परिपाटी की रचना न मानकर जीवनकी उन्मुक्त स्वच्छन्द व सरस अभिव्यक्ति माना है। इस श्रेणी के आलोचको ने काव्य को अपना आधार माना और आलोचना सिद्धान्तो का एक प्रायोरी अनुकरण नही किया है।

डॉ॰ नन्दुलाल वाजपेयी ने तो विशेष रूप से निगमनात्मक शैली को अपनाया है। पन्तजी, प्रसादजी और अन्य कवियो की कई आलोचनाओ पर अ ग्रेजी कवियो

१—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य-पृष्ठ ५९।

२—आधुनिक हिन्दी साहित्य (वाजपेयी जी बिरचित)—पृष्ठ ३७१।

३—काव्य और काव्य कला तथा अन्य निबन्ध-पृष्ठ १२८।

४—पल्लव की भूमिका।

५—श्री सुमित्रानन्दन पन्त—६० वर्ष एक मूल्यांकन।

का प्रभाव दिखाई देता है। पन्तजी लिखते है कविता हमारे प्राणो का सगीत है, छद हृदयकम्पन कविता हमारे परिपूर्ण क्षणो की वाणी है, हमारे जीवन का पूर्ण रूप। हमारे अन्तरतम प्रदेश का सूक्ष्माकाशी सगीतमय है उत्कृष्ट क्षणो मे हमारा जीवन ही बहने लगता है। उसमे एक प्रकार की सपूर्णता, स्वरैक्य तथा सयम आ जाता हैं।[1] ऐसे ही विचार वर्डसवर्थ ने लिरिकल वेलटम की भूमिका मे व्यक्त किये थे। इस शैली के आलोचको ने अग्रेजी की नवीन समीक्षा पद्धति, वस्तु सकलन, चरित्रचित्रण, भाव, अनुभूति, कल्पना, सवेदनात्मक, अनुभूति व्यञ्जना और ध्वन्यात्मकता को लेकर बाहीय और आन्तरिक पक्ष को देखा। इनका विवेचन करते समय आलोचक अग्रेजी के विभिन्न ग्रन्थो का आधार लेते है, जो हिन्दी आलोचना पर अग्रेजी का प्रभाव का द्योतक है। यथा डॉ० भगवत स्वरूप ने इनके विवेचन मे विभिन्न अग्रेजी आलोचको के मतों का उल्लेख किया है।[2]

गगाप्रसाद पाण्डे ने कला मे बाहीय जीवन सबधी आरोप चाहे वह धार्मिक हो चाहे नैतिक, को अनुचित माना है। बन्दन को छोडने की इस भावना पर भी वर्डसवर्थ का प्रभाव है। इस शैली के आलोचना के प्रारम्भिकनया इन्दु के सम्पादकीय मे प्राप्त हो सकते है। पल्लव की भूमिका मे इसका प्रत्यक्ष विकास दिखाई देने लगा। छायावादी कवियो ने अपनी भूमिकाओ मे इसे और भी सबल बनाया। इस पर कतिपय विभूधानो ने स्वतत्र पुस्तकें भी लिखी।

उपर्युक्त भूमिकाओ मे इन आलोचको ने अपने हृदय को खोल कर रखा है। वहाँ काव्य के उपकरणो, उनकी अनुभूति के कारणो और काव्य को समझने के उपयुक्त तत्वोका विश्लेषण किया गया है। यामा,दीप शिखा आधुनिक कवि और पल्लव प्रवृत्ति के आलोचनात्मक अश इस कथन की सच्चाई प्रकट करते है। यह अभिव्यक्ति वेर्डसवर्थ और कालरिज से प्रभावित दिखाई देते हैं। साथ ही वर्नाडशा और टी० एस० लियेट की आलोचना पद्धति ने भी इसके विकास मे—तर्क को अपनाने मे, सहयोग दिया।

१—पल्लव की भूमिका।

२—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उदभव और विकास—पृष्ठ ४३० से ४६०।

यहाँ अभिप्राय यही है कि अंग्रेजी के लेखको, कवियो और नाटककारो के भूमिका लेखन ने आधुनिक हिन्दी के लेखको की इस प्रवृत्ति को सबल बनाया। इसके दर्शन प्रसादजी की आलोचना मे भी होते हैं।

जयशंकर प्रसाद—

प्रसादजी सामान्यत सैद्धान्तिक निरूपण के पक्ष मे रहे है। उन्होने भारतीय साहित्य के सिद्धान्तो और दर्शधाराओ के समन्वय का प्रयत्न किया। रस के बारे मे उनके विचार इस को स्पष्ट कर देते हैं। आनन्दवर्धन भी काशमीर के थे और उन्होने वहाँ के आगमानुयायी आनन्द सिद्धान्त के रस को तार्किक अलकार मत से सम्भव किया। किन्तु महेश्वराचार्य अभिनव गुप्त ने इन्ही की व्याख्या करते हुए अभेद मय आनन्द पथ वाले शैवा द्वैतवाद के अनुसार साहित्य मैं रस की व्याख्या की।[1] इनकी धारणाये शास्त्रीय और दार्शनिक पृष्टभूमिपर आधारित है। कला सम्बधी विवेचन मे इन्होने विभिन्न भारतीय पण्डितो के मतो का उल्लेख किया है। उन्होने कला और आत्मानुमूति को दो भिन्न सतहो के रूप मे स्वीकार किया है। इसी भाँति रहस्यवाद की चर्चा करते समय भी उन्होने विभिन्न भारतीय शास्त्रवेत्ताओ के मतो का उल्लेख किया है। उन्होने भारतीय चिन्तन में रहस्यवाद का प्रमुख स्थान माना है। उन्होने रस विषयक विवेचन भी प्रस्तुत किया है। इसमे शैवदर्शन का पूरा-पूरा उपयोग किया गया है। भारतीय शास्त्रीय दृष्टि से उन्होने अलकार वक्रोक्ति आदि का परीक्षण कर अपने निर्णय प्रदान किए है।[2] इनकी निम्नाकित धारणा इनके मौलिक चिन्तन का प्रतीक है।— "प्रगतिशील विश्व है किन्तु अधिक उछलने मे स्खलन का भय हैं। साहित्य मे युग की प्रेरणा भी आदरणीय है, किन्तु इतना ही अलम नही है। जब हम समझ लेते है कि कला को प्रगतिशील बनाये रखने के लिए—हमको वर्तमान सभ्यता का—जो सर्वोत्तम है–अनुसरण करना चाहिए तो हमारा दृष्टिकोण भ्रमपूर्ण हो जाना है। अतीत और वर्तमान को देखकर भविष्य का निर्माण होता है। इसलिए हमको साहित्य मे एकागी लक्ष्य नही रखना चाहिए ' ' पश्चिम मे भी अपना सब कुछ छोड कर नये को नही अपनाया गया है।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसादजी ने छाया

१—काव्य कला तथा अन्य निबन्धन—पृष्ठ ७४ से ७६।

२—वहीं–पृष्ठ ७५, ७६।

३—वही–पृष्ठ १०८।

वादी प्रणाली का भारतीयता से सामजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। वे कहते है कि सौदर्य की अनुभूति के साथ ही साथ हम अपने सवेदन को आकार देने के लिए उनका प्रतीक बनाने के लिए वाध्य होते है। इसलिए अमूर्त सौदर्य बोध कहने का कोई अर्थ नही रह जाता।[1]

श्री सुमित्रा नन्दन पन्त—

पन्तजी ने छायावाद का समर्थन किया। पल्लव की भूमिका इसकी साक्षी है कि ये भाव से बुद्धि की ओर और बुद्धि से यथार्थ की ओर प्रगति करते रहे है। उक्त भूमिका इस बात का प्रमाण है कि कवि आलोचक के रूप मे आ गया है और वह काव्य की मूल प्रेरणाओ का अध्ययन प्रस्तुत कर रहा है। पन्तजी कहते है '........ मेरा उद्देश्य केवल ब्रज भाषाके अलकृत काल के अन्तर्देश मे अन्तर्निहित उसका व्यार्श को वृहत चुम्बक की ओर इगित भर कर देने का रहा है, जिसकी ओर आकर्षित होकर उस युग की अधिकाश शक्ति और चेष्टाएँ काव्य की धाराओ के रूप मे प्रवाहित हुई हैं।[2] आधुनिक कवि भाग दो मे पर्यालोचन करते समय इन्होने अपने विकास पर प्रकाश डाला है। युगवाणी के दृष्टिपात मे इन्होने युग दर्शन सापेक्ष कला पक्ष का विवेचन किया है। तत्पश्चात् उत्तरा, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि और युगान्त मे भी उन्होने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। इन्होने अलकारो को भावो के लिए आवश्यक माना है। वे कहते है कि अलकार केवल वाणी की सजावट के लिए नही, वे भाव की विशेष अभिव्यक्ति के द्वार हैं। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव है।[3] पन्तजी ने रस गगाधर की प्राचीन शैली को पुराना बताया है।[4] इन्होने समय के साथ प्रगति की और छायावादी कविता को कालान्तर मे अतिवैयक्तिक, बौद्धिकता, दुरूहता, सघर्ष, अवसाद और निराशा की प्रतिक्रिया माना।[5] उन्होने तुलनात्मक प्रवृति को भी स्थान दिया है। अग्रेज आलोचको के समान इन्होने अपने साहित्यिक जीवन का पयवेक्षण भी किया है।[6] इन्होने बताया है कि वे उपहार

१—काव्य कला तथा अन्य निबन्धन —पृष्ठ ३५।
२—पल्लव की भूमिका–पृष्ठ ८।
३—गद्य प्रवेश–पृष्ठ १७।
४—गद्य पथ प्रवेश–पृष्ठ ४१।
५—वही–पृष्ठ ५७।
६—साठ वर्ष–एक रेखांकन।

स्वरूप अंग्रेजी की पुस्तके प्राप्त किया करते थे। इन्होने यह इंगित किया कि प्रारम्भिक दिनो मे इनकी पीढ़ी की कविताओ को छायावादी नही कहा जाता था। सम्भवतः यह नाम पीछे से आरोपित किया गया। इसी हेतु इन्होने पल्लव की भूमिका मे छायावाद का उल्लेख नही किया। इन्होने स्वय स्वीकार किया है कि उन्हे कविता सम्बन्धी प्रेरणा अंग्रेज कवियो से मिली। इनकी आलोचना करते हुए कोई कह देता था "प्रेटी नोन् सैन्स" और कोई "यू आर दी फ्यूचर पोइट ओफ इण्डिया"।[1] इस प्रकार हम देखते है कि पन्तजी की शैली पर अंग्रेजी का प्रभाव है। पन्तजी के समान महादेवी वर्मा ने भी छायावाद का समर्थन किया।

महादेवी वर्मा—

महादेवी वर्मा ने अपनी भूमिकाओ और लेखो मे अपने मन्तव्य को स्पष्ट किया है। वे काव्यानन्द को मंगलमय मानती है। अंग्रेजी की काव्य पुस्तको के समान उनकी काव्य रचनाओ के प्रारम्भ मे भूमिकाएँ प्राप्त होती है। यामा, दीप शिखा, सान्ध्य गीत, आधुनिक कवि, प्रथम भाग और चाँद तथा साहित्य सदेश के लेखो मे इनकी भावनाएँ मुखरित हुई है। उन्होने अंग्रेजो के समान काव्य को सर्वोत्कृष्ट कला माना है जिनका लक्ष्य है सत्य और सौन्दर्य है साधन। इस धारणा पर पाश्चात्य जगत के सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का प्रभाव दिखाई देता है। काव्य को आत्म विषयक दृष्टि से देखना भी उन पर अंग्रेजी प्रभाव सिद्ध करता है। इन्होने साहित्यिक वादो की मौलिक व्याख्याएँ की है।[2] अतएव ये छायावाद को बाह्य वस्तु नही मानती है। इन्होने अंग्रेज आलोचको के समान काव्य की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी की है जिसमे भारतीय साधारणीकरण और पाश्चात्य मनोविज्ञान की सन्तुलित विवेचना के दर्शन होते है। यथा—

छायावाद का काव्य अनुभूतिमयी रचना पर आश्रित है। अतः व्यापक करुणा भाव और व्यक्तिगत विषाद के बीच की रेखा और भी अस्पष्ट हो जाती है। गीत मे गाया हुआ पराया दुख भी अपना हो जाता है और अपना भी सबका इसी से व्यक्तिगत हार से उत्पन्न यथा एक समष्टिग करुण भाव मे एक रस जान पडती है।[3]

१—साठ वर्ष–एक रेखांकन।

२—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य–पृष्ठ ६०, ६१।

३—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य–छायावाद—पृष्ठ ६७।

ये भारतीय आदर्श और पाश्चात्य यथार्थ के समन्वय की आकाक्षा रखती है।[१] इसलिये इनके छायावाद सम्बन्धी वचनो को आप्त वचन के समान का आदेश दिया गया है।[२] महादेवी जी के समान भूमिकाये लिखने, मनोवैज्ञानिक चित्रण को स्थान देने और आलोचना की पाश्चात्य शैली को अपनाने के कारण निरालाजी पर भी अंग्रेजी आलोचना का प्रभाव दिखाई देता है।

निराला.--

छन्द, भाव, भाषा और उद्देश्य के सम्बन्ध मे महामना निरालाजी पूर्ण स्वच्छन्दता के चाहक है। वे कला केवल वर्ण छन्द, अनुप्रास, रस, अलकार या ध्वनि की सुन्दरता को नही मानते किन्तु इन सभी के सम्बन्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा के प्रभाव को मानते है।[३] इस पर पोप के कथन की छाया है वे भी सुन्दरता को विभिन्न अगो के सम्मिलित प्रभाव की सज्ञा मानते है। इन्होने तुलनात्मक, निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक शैली को अपनाया है।[४] निरालाजी ने मुक्त छन्द का समर्थन किया। ये व्यक्तिगत कटुआलोचना के शिकार बने और अंग्रेज कवि कीट्स के समान काल कवलित हो गये। इन्होने अंग्रेजी से प्राप्य पुस्तकालोचन शैली को भी अपनाया। इस प्रकार निरालाजी पर अंग्रेजी काव्य शास्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है।

उपर्युक्त प्रभाव के अतिरिक्त निरालाजी ने यह भी कहा है कि—सूक्तियाँ, उपदेश मैंने बहुत कम लिखे है, केवल चित्रण किया है, उपदेशो को मै कवि की कमजोरी मानता हूँ[६]। इस कथन को अंग्रेजी के यथार्थवादी कवियो का प्रभाव माना जा सकता है।

१—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य—छायावाद—छपृ १६१।
२—डा० नगेन्द्र—काव्य चिन्तन—पृष्ठ ७२।
३—प्रबन्ध प्रतिमा—पृष्ठ २७५।
४—बगाल के वैश्नव कवियो का शृ गार वर्णन।
५—प्रबन्ध प्रतिमा एव परिमाल की भूमिका—पृष्ठ २१।
६—प्रबन्ध प्रतिमा—पृष्ठ २८४।

उपर्युक्त कवि आलोचकों के अतिरिक्त अन्य आलोचकों ने भी छायावाद पर प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिये डॉ० देवराज जी उपाध्याय ने रौमेंटिक साहित्य शास्त्र का विवेचन किया। इसकी विशेषता यह है कि इसमें इन्होंने कवियों के जीवन पर विस्तृत और प्रामाणिक प्रकाश डाला है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसकी भूमिका में रौमेन्टिसिज्म की व्याख्या की है। उसके द्वारा हिन्दी साहित्य के ऊपर पर पडे हुये प्रभाव को भी स्पष्ट किया गया है। यहाँ वे लिखते हैं · · "१६ वी शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजी के जिन साहित्यकारों में उन्मुक्त स्वाधीन दृष्टि भंगी विकसित हुई थी वे विद्रोही अवश्य थे · ···। उसने हमारे देश के साहित्य को प्रभावित किया। अतएव हम निष्कर्शत कह सकते हैं कि रौमेन्टिसिज्म ने हिन्दी आलोचना को प्रभावित किया।" [१] साथ ही यह भी विचारणीय है कि रीतिकालीन पृष्ठभूमि और द्विवेदी युगीन इतिवृतात्मक ने भी हिन्दी साहित्य को सामान्य रूप से और आलोचना को विशेष रूप से हथकडियाँ तोडकर नये और प्रशस्त मार्ग की और बढाया। अतः एक ओर जहाँ इस पर अंग्रेजी प्रभाव है वहाँ दूसरी ओर भारतीय पृष्ठ भूमि भी विद्यमान है।

अन्य शैलियां

प्रभावाभिव्यंजनात्मक और अभिव्यंजनात्मक:—

अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी में कई आलोचना शैलियाँ सामने आईं। प्रभावाभिव्यजक और क्रौचे की अभिव्यजनात्मक शैलियाँ उदाहरणस्वरूप देखी जा सकती है। पण्डित भगवत शरण उपाध्याय ने प्रथम श्रेणी का अनुसरण नूरजहाँ का मूल्याकन किया है। लेखक ने स्वय और उसके दो शब्द लेखक पण्डित विश्वनाथ प्रसाद ने इसे स्वीकार भी किया है—नूरजहाँ के अध्ययन का मेरे ऊपर बडा मार्मिक प्रभाव पडा। फलत. कुछ अनुकूल अन्तंग्रन्थिया खुल पडी। मैं एक बात को स्पष्टतया कह देना चाहता हूँ कि प्रस्तुत प्रयास समालोचक का नही प्रत्युत सहानुभवी और समान धर्म का है।······मैं प्रभाववादी हूँ। जब अनुकूल प्रभाव का स्पर्श होता है प्रभाववादी चुप नही बैठ सकता। दो शब्द लेखक कहते हैं—यह तो नि सकोच कहा जा सकता है कि यह आलोच्य काव्य का शास्त्रीय भाव नही है। आजकल

---

१ —पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव—पृष्ठ ९७।

जिसे प्रभाव वादी समीक्षा कहते है उसी के अन्तर्गत यह भी रखी जायेगी।[1,2] इसी भाँति क्रौचे के अभिव्यजनावाद की भी चर्चा अधिकाशत: की जाती है। आलोचक इसे भारतीय दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न करते है।[3] किन्तु इससे इतना तो स्पष्ट है कि हमारे यहाँ वक्रोक्ति की मनोवैज्ञानिक और क्रौचे के सदर्भ मे व्याख्याऐ की जाने लगी। डॉ० मनोहर काले, आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, लक्ष्मी नारायण सुधाशु, गुलाब राय[4], डॉ० भगवत स्वरूप और डॉ० नगेन्द्र[5] आदि ने इसे विवेचना का विषय बनाया है। इनकी आपस मे तुलना की जाती है और अधिकाँशत: भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन किया जाता है। नवीन आलोचना पद्धतियो मे चरित-मूलक पद्धति भी उल्लेखनीय है।

चरितमूलक.—

चरितमूलक व्याख्या पर अग्रेजी साहित्य का प्रभाव दिखाई देता है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए शिल्पे के उदाहरण दिये जाते है।[6] यही क्यो प्रारम्भ मे अग्रेज विद्वानो ने सस्कृत के लेखको की खोज-बीन करके इस दिशा की ओर निर्देष किया था। तदनन्तर इसका विकास हुआ। आधुनिक युग मे भी इसका अधिक प्रचलन नही हैं।

ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति

टेन द्वारा प्रतिपादित यह पद्धति अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी आलोचना को प्रभावित करती है। टेन ने जाति, परिवृति (भौगोलिक आधार) और युग को कृति

१—साहित्य सन्तरण-पृष्ठ १७२।

२—वही दो शब्द।

३—डा० भगवत स्वरूप हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास-पृष्ठ ५३३-५३४ एव डा० मनोहर काले-आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन।

४—सिद्धान्त और अध्ययन-पृष्ठ २७८।

५—हिन्दी वक्रोक्ति त पृष्ठ-२३६, २४७।

६—उ० दे० डा० भगवत स्वरूप-हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ ५३७।

के निर्माण मे महत्वपूर्ण माना है।[७] हिन्दी मे इस पद्धति को महत्व दिया जाता है। यथा कबीर के विवेचन मे अथवा हिन्दी साहित्य के आदि काल को समझने मे उपर्युक्त सभी तत्वो को समझने का प्रयत्न किया जाता है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने अध्ययन, मनन और चिन्तन से हिन्दी के आदिकाल और कबीर का ऐसा ही शलाघ्य अध्ययन प्रस्तुत किया है। यहा यह उल्लेखनीय है कि डा० हजारी प्रसाद जैसे मेघावी भावक तो ज्ञान पूर्वक इसके दुर्गुणो को हटा देते है। अन्यथा इस प्रणाली मे निम्नांकित दोष पाये जाते है —

क—यह पद्धति "ए--पेस्ट्रायरी' है अर्थात् यह युग को देखकर साहित्य को उससे सम्बन्धित कर देती है। यह आगे के लिये नही बता सकती की अमुक देश और अमुक जाति मे किस प्रकार का साहित्य होगा।

ख—एक ही युग मे भी एक ही प्रकार की रचनाये नही होती हैं। यथा रीतिकाल मे भूषण विद्यमान थे और वीर गाथा काल मे अमीर खुसरो। यही क्यो एक ही युग मे भी रचनाओ मे अन्तर होता है।

इसे हम यो कह सकते है कि भक्ति काल मे एक ओर जहाँ सहृदय साहित्य शिरोमणि तुलसी थे तो दूसरी ओर आचार्य केशव। एक ही काल मे विश्व प्रख्यात कविन्द्र रविन्द्र थे तो दूसरी ओर अपनी ही कोठरी मे गुन गुना कर मर जाने वाले कवि जुगनू भी।

कहने का तात्पर्य यह है कि यह पद्धति अपने आप मे परिपूर्ण नही है। इसे साध्य नही माना जा सकता। यह साधन है और इसमे देश काल अनुसार व्यक्ति की क्षमता का भी समावेश कर लिया जाना चाहिये। डा० नन्द दुलारे वाजपेयी की दृष्टि मे यह पद्धति त्रुटि पूर्ण है। फिर भी इस पद्धति के पक्ष मे यह कहा जा सकता है कि इसने हमे देश काला अनुमार कवियो की आलोचना करने की दृष्टि प्रदान की। वीर गाथा काल के कवियो मे आज का सा चित्रण न प्राप्त कर हम उसकी अवहेलना नही कर सकते है। उनकी अवहेलना करने से यह पद्धति हमे रोकती है और उस युग के अनुकूल हमे कृति का परीक्षण करने का आदेश देती है।

७—हिस्ट्री औफ इगलिश लिट्रेचर-टेन-भूमिका।

निर्गुण उपासना की ओर भी जनसाधारण की रुचि बढी ।[1] आ हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस त्रुटि का निराकरण कर भारतीय इतिहास और संस्कृति के चिर विकास को देख कर भक्ति काल को हमारी संस्कृति के अविच्छन्न श्रोत का प्रकटीकरण माना ।[2] तत्कालीन धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियो ने कबीर आदि सन्त कवियो को लोक प्रिय होने मे सहायता दी ।[3] कबीर के काव्य मे प्राप्य युग विरोध की भावना भी युग की ही देन थी ।[4] हिन्दी मे तो ऐतिहासिक पद्धति इतनी घुलमिल गई है कि जिस प्रकार बिना यह जाने कि सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, अंग्रेजी के ट्रुथ ब्युटी एवम् गुडनेस के पर्याय है, हर व्यक्ति इनका प्रयोग करता है, उसी भांति हर व्यक्ति ऐतिहासिक पद्धति को भी यथा शक्ति अपना लेता है । वह तो हिन्दी की अपनी पद्धति सी बन गई है । हिन्दी के अधिकांश शोध ग्रन्थो मे ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया जाता है । इस दृष्टि से डॉ० सुधीन्द्र का हिन्दी कविता मे युगान्तर, डा० नारायण दास का आचार्य भिखारी दास और इन पक्तियो के लेखक का हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन भी देखे जा सकते है । श्री रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय मे हमारे सांस्कृतिक पक्ष का सुन्दर और सुचारु एवम् विकासात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । यह अंग्रेजी के ग्रीनस हिस्ट्री ओफ इंगलिश पिपल की टक्कर का ग्रन्थ है ।शांति प्रिय द्विवेदी ने युग और साहित्य मे देश काल और लोक रुचि का अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

निष्कर्ष —

अतएव यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी से आई हुई इस पद्धति को हिन्दी मे बहुतायत से अपनाया गया है । ध्यान यही रखना है कि इस पद्धति का अन्धानुकरण नही किया जाना चाहिये । इसे अन्य पद्धतियो की सहायता से प्रयोग मे लेना चाहिये। उसमे मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा पद्धति सबसे महत्वपूर्ण है ।

मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा.—

अंग्रेजी प्रभाव के कारण संस्कृत के "काव्य यशशर्थ कृते" आदि काव्य प्रयोजनो को अपूर्ण माना जाने लगा । आधुनिक आलोचक तो यहाँ तक कहने लगे कि—

१—ब्रजरत्न दास-नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ १,२ ।

२—हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ २, ३१-४३ ।

३ —वही—

४—कबीर पृष्ठ १३५ ।

"वस्तुत' सस्कृत के आचार्यो ने काव्य के वर्ण्य विषय के स्वरूप तथा सृजन तथा समय (व) कवि की मानसिक स्थिति पर बहुत कम विचार किया है । यह भी तो विवादास्पद ही है कि साधारणीकरण का सम्बन्ध केवल पाठको से ही है अथवा कवि से भी ।[1] अतएव यह अपूर्णता दिखा कर फ्रायड, एडलर और यू ग के सिद्धान्तो को विश्लेषण कर उनकी पद्धतियो की सर्वागीण व्याख्या की जाती है तथा कई ग्रन्थो मे अ ग्रेजी और अमेरिका के आलोचको के उदाहरण दिये जाते है ।[2] डॉ० भगवत स्वरूप ने समरसेट माम और हरबर्ट रीड की यथा प्रशसा व्याख्या की है । मनोविश्लेषणवाद के नाम पर मानस शास्त्र और मानसिक स्तर, मनुष्य प्रकृति, पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको, साहित्य और मनोविश्लेषण, सृजन की आवश्यकताएँ यथार्थ और साहित्य पर विचार किया जाता है ।[3]

मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ –

इस पद्धति पर पहला अ ग्रेजी प्रभाव तो यह है कि उपयुक्त मनोवैज्ञानिको के सिद्धान्त के आधार पर काव्य का परीक्षण किया जाना है । उनके आधार पर कवि, पात्रो और भारतीय सम्प्रदायो की मनोवैज्ञानिक व्याख्याये प्रस्तुत की जाती है । यह परिक्षण हमे कविता आदि को समझने आदि मे सहायता भी देता है किन्तु हमे यह नही भुला देना है कि काव्यालोचन और मनोविज्ञान दो भिन्न-भिन्न विषय है । आलोचना के नाम पर केवल मनोवैज्ञानिक तथ्यो का उद्घाटन समीचीन नही माना जा सकता । यदि इसकामसुचित उपयोग किया जाय तो उपयुक्त रहेगा । जिस प्रकार शुक्लजी, और डा० नगेन्द्र ने इस पद्धति को अपनाया हैवह अनुकरणीय है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रस आदि की सुन्दर मनोवैज्ञानिक व्याख्याऐ की है । डा० नगेन्द्र के आलोचना साहित्य मे इसे यथा स्थान खोजा गया है । डा० राकेश गुप्त का शोध प्रबन्ध इसी प्रणाली का प्रमाणिक ग्रन्थ है । डा० वैकण्ट शर्मा ने भी मनोवैज्ञानिक पद्धति की महत्ता को स्वीकार किया है । डा० नारायण दास खन्ना ने आचार्य भिखारी दास के अध्ययन करते समय भी मनोवैज्ञानिकता के आधार पर श्रगार रस का सूक्ष्म विवेचन किया है ।

१—डा० भगवत स्वरूप–हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ ४६७ ।

२—वही—पृष्ठ ४६० से

३—वैकण्ट शर्मा–आधुनिक हिन्दी में समालोचना का विकास पृष्ठ ४१७ से २४ ।

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त और सरस साहित्य—

दूसरा प्रभाव यह भी है कि कतिपय लेखको ने फ्रायड यू ग और एडलर प्रभृति मनोवैज्ञानिको के सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने के लिये ही साहित्य सृजन तक किया है। श्री अज्ञेय और श्री इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास इसी श्रेणी मे आते हैं। शम्भु दयाल सक्सेना के नाटक और मित्र जी के भी आधी रात, सिन्दूर की होली और सामाजिक नाटक इसी पक्ति मे रक्खे जा सकते है। लक्ष्मी प्रकाश के निबन्ध और श्री सूर्य प्रकाश की कहानियाँ इस कथन की साक्षी हैं। इसके पात्र दमित वासना, मानसिक ग्रथिया और प्रभुत्व कामना से ग्रसित दिखाई देते हैं। [१]

श्री अज्ञेय के त्रिशकु नामक निबन्ध मे प्रभुत्व कामना और क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की सम्यक व्याख्या की गई है। आलोचना मे भी वे कहते हैं कि व्यक्ति का अह स्वीकृति चाहता है। [२] जब उसकी अवहेलना की जाती है तब वह विद्रोह करता है।

कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न, अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह है।...... हमारे कल्पित प्राणी ने हमारे कल्पित समाज के जीवन मे भाग लेना कठिन पाकर अपनी अनुपयोगिता की अनुभूति से आहत होकर अपने विद्रोह द्वारा उस जीवन का क्षेत्र विकसित कर दिया है। उसे एक नई उपयोगिता सिखाई है। पहला कलाकार ऐसा ही प्राणी रहा होगा। पहली कला चेष्टा विद्रोह की रही होगी। [३] जोशी जी ने (इलाचन्द्र जोशी भी) छायावाद और प्रगतिवाद की मनोवैज्ञानिक व्याख्याऐ की हैं। वे कहते हैं—

हमारे प्रगतिवादी कवि भी अपने समाज विद्रोही उद्‌गारो द्वारा एक विशेष प्रकार के रोमेन्टिक रस का रसास्वाद पा रहे हैं। जो छायावादी रस का सब्सटीट्यूट है।" [४]

१—हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन-आधुनिक नाटकों का विवेचन।

२—अज्ञेय-त्रिशकु, परिस्थिति और साहित्यकार पृष्ठ २० से २८।

३—सौन्दर्य बोध, त्रिशकु पृष्ठ २६।

४— विवेचना पृष्ठ १६६-७०।

निष्कर्ष —

इस आलोचना ने हमारी आलोचना पद्धति को प्रभावित किया है। कवि की मानसिक प्रक्रिया को ध्यान मे रखकर और सामाजिको की मनोस्थिति पर दृष्टि रख कर लिखी गई आलोचना वास्तव मे सराहनीय होती है। यहाँ ध्यान रखने की बात है कि आलोचक का उद्देश्य समालोचना होना चाहिये न कि केवल मनोविश्लेषण। यदि आलोचक केवल मनोविश्लेषण मे फसकर आलोचक के स्थान पर मनोवैज्ञानिक बन बैठता है तो यह निस्सन्देह असह्य है। जिस प्रकार से ऐतिहासिक पद्धति को ध्यान पूर्वक अपनाना चाहिये वैसे ही इसका भी अन्धानुकरण हेय है। आज का खोज साहित्य अधिकाशत. इन ऊपरकथित प्रणालियो को अपनाता है।

खोज साहित्य —

हिन्दी को अग्रेजी से रिसर्च की प्रवृति प्राप्त हुई है। प्रारम्भिक दिनो मे तो हिन्दी खोज साहित्य का प्रणयन पाश्चात्य विद्वानो द्वारा अग्रेजी मे किया जाता था। यही नही कुछ समय तक भारतीय लेखको ने भी अपनी खोज की अभिव्यक्ति अग्रेजी के मध्य मे से की। डा० पीताम्बर दत्त बडथवाल ने हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा नामक अपने शोध प्रबन्ध का मूल रूप अग्रेजी मे ही प्रस्तुत किया था। डा० राम शकरजी शुक्ल रसाल के अभिनन्दनीय शोध आधि निबन्ध इवोल्युशन औफ हिन्दी पोईटिक्स का प्रणयन भी अग्रेजी मे ही हुआ था। डा० इन्द्रनाथ मदान का मौडर्न हिन्दी लिट्रेचर भी इसकी पुष्टि करता है। आज भी श्री कन्हैया लालजी कल्ला ने अपना योग विषयक शोध प्रबन्ध अग्रेजी मे ही लिखा था आजकल अधिकाशत हिन्दी के शोध प्रबन्ध हिन्दी मे ही लिखे जाते है। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि हिन्दी आलोचना आज भी अग्रेजी के माध्यम से प्रगति करने का साहस कर रही है।

इसमे प्रेरक अग्रेज आलोचक और अग्रेजी के ग्रन्थ रहे है। उदाहरण के लिये हम कह सकते है कि डा० ग्रियर्सन ने अपने इतिहास के पाँचवे अध्याय मे मुगल दरबार का विवेचन किया।[१] इसमे अकबर बादशाह, बीरबल, मानसिंह, रामदास और करणेश आदि का उल्लेख किया। परिणामतय हिन्दी मे अकबरी दरबार के हिन्दी कवि का प्रणयन हुआ।[२] ग्रियर्सन कृत ग्रन्थ को इसका प्रेरणा स्रोतमाना जा सकता

१—किशोरीलाल गुप्त कृत ग्रियर्सन के इतिहास का अनुवाद पृष्ठ १२६–१३६
२—डा० सरयू प्रसाद विरचित शोध प्रबन्ध।

है। इस भाँति डा० ग्रियर्सन ने तुलसी पर नोट्स लिखे।[1] इसमे कवि से सम्बन्धित तिथियो का ज्योतिष के आधार पर परीक्षण किया गया। सम्भवत हिन्दी मे तुलसी की अन्त साक्ष्य सम्बन्धी खोज को इससे प्रेरणा मिली हो। इसे फिर आगे तो हिन्दी मे मौलिकता पूर्ण ढग से बढाया गया—डा० माता प्रसाद गुप्त कृत तुलसीदास इसका उदाहरण है। अग्रेजी से आये हुए इस खोज साहित्य ने प्राचीन भारतीय साहित्य को प्रकाश मे लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। इसके फलस्वरूप विभिन्न ऐसे लेखको पर प्रकाश डाला गया जो पहले सदिग्ध या अप्राप्य थे। इससे हमारे साहित्य की श्री वृद्धि हो रही है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का अभिमत है कि आज की हिन्दी का खोज साहित्य अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके आधार पर हिन्दी किसी भी समृद्धशाली साहित्य से लोहा ले सकती है और यह हिन्दी के आलोचको के मानसिक विकास का द्योतक भी है। इसमे यही ध्यान देने की बात है कि खोज निष्पक्ष और सच्चाई से की जानी चाहिये। रुग्ण और भ्रम ग्रसित दृष्टिकोण अनुपयुक्त और त्याज्य है।

हिन्दी आलोचना मे सस्कृत के शास्त्रीय सम्प्रदायो पर दृष्टिपात करना, अग्रेजी के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के समकक्ष रख कर उन्हे देखना अग्रेजी प्रभाव का ही परिणाम है। उन्हे खोज का विषय भी बनाया जाता है और यदा-कदा वे अपना भी लिये जाते है। फिर भी पाठ्य-पुस्तको और शोध ग्रन्थो के अतिरिक्त इनका विवेचन नही मिलता है। यथा—रस, अलकार, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य का उल्लेख पहले जितनी उन्नति पर नही है। साथ ही अलकारो का सूक्ष्म विवेचन भी डा० रामशकरजी शुक्ल रसाल जैसे मेधावी पण्डित ही कर पाये है। अतएव शास्त्रीय दृष्टि को उन्नत बनाना आवश्यक है। आज रस निष्पत्ति के स्थान पर साहित्य को विचारोत्तेजक बनाया जाता है। अग्रेजी आलोचना के आधार पर अन्य भाषाओ के उदाहरण देकर हिन्दी मे उपयुक्त तत्वो को ग्रहण करने की आवश्यकता बताई जाती है।[2] इसमे अनुसधान प्रवृति सहयोग देती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य मे अग्रेजी के प्रभाव स्वरूप खोज साहित्य ने विकास किया। परिणामत अग्रेजी और सस्कृत काव्य शास्त्र से सहारा लेकर निम्नाकित तथ्य सामने आये—

१—किशोरी लाल गुप्त कृत ग्रियर्सन के साहित्य का अनुवाद पृष्ठ २४ एवं इन्डियन एन्टीक्वरी सन् १८९३।

२—डा० रविन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य काव्यलोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव अध्याय ३,५।

क—सस्कृत शास्त्रीय तत्वो और साहित्यिक प्रवृतियो की छानबीन।

ख—अग्रेजी से प्रभाविन शोध ग्रन्थो का प्रणयन जिनमे अग्रेजी की शैलियो को समझाने का प्रयत्न किया जाता है।

ग—तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया गया और हिन्दी और अग्रेजी की तुलनाएँ हुई। कही-कही अग्रेजी का प्रभाव भी आका गया।

च—भाषा वैज्ञानिक अध्ययन ने प्रौढना प्राप्त की।

छ—अग्रेजी के समान हिन्दी मे भी यत्र-तत्र अनुसंधान प्रक्रिया पर पुस्तको का निर्माण हुआ। डा० नगेन्द्र ने, डा० रामशकर जी रसाल ने और कई विश्व विद्यालयो के प्राध्यापको ने इस दृष्टि से सराहनीय कार्यकियाहै। डा० विजयेन्द्र स्नातक और डा०सावित्री सिन्हा ने अनुसधान प्रक्रिया का सम्पादन किया है, जिसमे अधिकारी विद्वानो ने अपने गवेषणात्मक विचार प्रकट किये है।

अग्रेजी के खोज साहित्य मे हिन्दी की साहित्यिक विधाओ से सम्बन्धित आलोचना को भी प्रभावित किया। हिन्दी की कहानी, नाटक, उपन्यास, आलोचना और गद्य गीत आदि पर की गई आलोचना हमारे कथन की पुष्टि करती है।

साहित्यिक विधाओं की आलोचना

अंग्रेजी प्रभाव —

कहानी के तत्वो के सम्बन्ध में कम ही आलोचनाये हो पाई है। डा० सत्येन्द्र का प्रेम चन्द्र की कहानी कला, डा० श्री कृष्ण लाल और अन्य आलोचको द्वारा प्रस्तुत किये गये कहानी सग्रहो के प्रारम्भ मे की गई कहानी की बात इस अभाव की पूर्ति करती है। डा० वासुदेव शरण उपाध्याय और डा० मोहन लाल जी जिज्ञासु ने इस ओर सुन्दर कार्य किया है। उक्त सभी विवेचन अपनी शैली अर्थात् विषय प्रतिपादन पद्धति और तन्त्र की दृष्टि से अंग्रेजी आलोचना से प्रभावित है। अधिकाश पुस्तको मे अंग्रेजी की परिभाषाएँ और अग्रेजी आलोचको के मत उधृत किये जाते हैं। कहानी की आलोचना में मनोविज्ञान, अन्तर्द्वन्द, सघर्ष और कथा वस्तु पात्र सवाद

वातावरण, उद्देश्य और शैली [1] सोचने को बाध्य करने के गुण की विवेचना आदि इस पर अंग्रेजी प्रभाव सिद्ध करते है साथ ही सस्कृत की कहानियो और आख्यायिकाओ आदि की दृष्टि से भी इस पर विचार किया जाता है । इस सम्बन्ध मे वैदिक कहानियो, पौराणिक कथाओ, बौद्ध ग्रन्थो और जातक कथाओ का भी उल्लेख किया जाता है ।[2]

इस आलोचना की यह विशेषता है कि इसमे अंग्रेजी प्रभाव को बहुधा स्वीकार कर लिया जाता है । कहानी की विभिन्न शैलियाँ-पत्रात्मक डायरी, भावावेश पूर्ण शैली आदि अंग्रेजी से ग्रहण की गई हैं । कहानियो के विकास पर अंग्रेजी काव्य के प्रभाव को भी दिखाया जाना है ।[3] और जबतक एडगर एलनपो की परिभाषा नही दी जाती है तबतक विवेचन अधूरा ही समझा जाता है ।[4] अन्य अंग्रेज आलोचको के मत भी उधृत किये जाते है । साथ ही सस्कृत की कथाओ और लोक कथाओ के प्रभाव से परिपूर्ण अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी की रचनाओ की ओर भी सकेत किया जाता है ।

निष्कर्ष—

इस प्रकार की आलोचना से हमारी इस मान्यता की पुष्टि होती है कि आधुनिक काल मे आलोचना करते समय सस्कृत और अंग्रेजी दोनो को ही ध्यान मे रखा जाता है । एक ओर जहाँ अन्तर्द्वन्द, यथार्थ चित्रण, मनोवैज्ञानिक चित्रण, पात्र कथोपकथन और वातावरण सृष्टि का विवेचन किया जाता है तो दूसरी ओर पौराणिक और प्राचीन कथाओ की ओर भी सकेत कर दिया जाता है । आलोचना स्वय इस विशेषता से परिपूर्ण है ।

आलोचना की आलोचना

आलोचना की व्याख्या प्रस्तुत करते समय विद्वानो ने इस पर संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से विचार किया है । डा० राम शकर जी शुक्ल रसाल का आलोचनादर्श ऐसे प्रयासो मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है ।

१—साहित्य सन्देश–पृष्ठ ६७–जुलाई, अगस्त १९६४ ।

२—पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र–हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ३२१–३२५ ।

३—वही—पृष्ठ ३२२ ।

४—साहित्य सन्देश–जुलाई-अगस्त, १९६२, पृष्ठ ३२४ ।

आलोचना शब्द सस्कृत के लुच् धातु से बनता है । लुच् का अर्थ है देखना । इस धातु के आगे ल्यु प्रत्यय होना है क्योकि यह धातु नन्द आदि धातु समूह के अन्तर्गत आती है । ··· ··समालोचना शब्द प्राप्त होता है जिसका अर्थ है सब प्रकार से विधि पूर्वक किसी वस्तु के देखने की व्यवस्था । [1] ····· किसी वस्तु की आलोचना से तात्पर्य है कि वस्तु का सागोपाग वर्णन किया जाय और उसकी वाह्याभ्यान्तरिक समस्त बातो पर विचार करके एक निश्चित मत स्थापित किया जाय । [2] इसे पाठक द्वारा गृहीत हो जाये ऐसा अवश्य मानते है । साथ ही रसाल साहब ने यह कहा है कि पाठ्य क्रम मे स्थान मिलने से हिन्दी आलोचना का रूप और भी निखर गया है । [3] डा०साहब ने इस विधा को शास्त्रीय रूप देने का सफल प्रयत्न किया है । डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने भी इसी शैली को अपनाया है । इन्होने अन्य आलोचको के समान इसे अग्रेजी के परिपाश्व मे देखा है । कई अग्रेज विद्वानो के मत उधृत किये है । डा० विश्वनाथ प्रसाद का अभिमत है कि आलोचना को जो रूप हिन्दी साहित्य मे विकसित हुआ है वह बहुत कुछ अग्रेजी के प्रभाव से अनुप्राणित है । अन्त मे स्वीकार किया जाता है आलोचना की जो पद्धतिया हिन्दी मे आजकल प्रचलित है वे अधिकतर पाश्चात्य ही है । इसका प्रयोगात्मक उदाहरण इसमे दिखाई देता है कि साहित्य सन्देश के साहित्य शास्त्र विशेषाक मे कालरिज का कल्पना सिद्धान्त स्थान प्राप्त करता है । [4] यहाँ एक तथ्य उल्लेखनीय है कि अधिकाशत पाठ्य-क्रमो मे आये हुए आलोचना के उदाहरण ग्रहण कर लिये जाते है ।डा० विश्वनाथ मिश्र ने हिन्दी भाषा और साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव मे बहुधा ऐसा ही किया है । [5] कभी-कभी साधारण और बहुत चर्चित आलोचक जैसे हडसन और स्कोट जेम्स के उदाहरण भी दिये जाते है ।

१—डा०राम शकर जी शुक्ल रसाल–आलोचनादर्श पृष्ठ २ ।

२—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (डा० गोविन्द त्रिगुणायत कृत)

३—आलोचनादर्श विक्रम सबत १९९० ।

४—साहित्य सन्देश जुलाई–अगस्त १९६२ पृष्ठ १४ ।

५—उनका (प्रोफेसर देव का) कहना था कि अंग्रेजी के अधिकांश में उन्हीं साहित्यकारो एव रचनाओं ने हिन्दी भाषा एव साहित्य को प्रभावित किया होगा, जो हिन्दी प्रदेश की शिक्षा सस्थाओं के विभिन्न पाठ्य क्रमो में स्वीकृत रहे होगे । भूमिका ।

यत्र तत्र एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका या अन्य हिन्दी की पुस्तको मे अ ग्र जी अभिमतो को प्रस्तुत कर दिया जाता है। अतएव वहाँ उक्त मत व्याख्या के विषय नही बन पाते। टी० एस० इलियट, आई० ए० रीचर्डस, ऐवर क्राम्बी, जेम्स जायसी की सम्यक व्याख्याओ का हिन्दी मे अभाव सा ही है। इस ओर भी आलोचको का ध्यान जाना वाँच्छनीय है।

अब तो पहले सस्कृत के नियम बताकर, फिर अ ग्रेजी साहित्य के आलोचको के विचारो को रखकर आलोचना करने की एक शैली सी बन गई है। यह शैली पुस्तको [1,2] और पत्र पत्रिकाओ मे अपनाई जाती है [3,4]। अन्य विधाओ के समान जब गद्य गीत आलोचना के विषय बनते हैं तब उनकी आलोचना भी इसी प्रकार से की जाती है ।

गद्य नीति —

जिस प्रकार से कहानी, उपन्यास, निबन्ध, नाटक और स्वयम् आलोचना का विवेचन सस्कृत और अ ग्रेजी के परिपार्श्व मे किया जाता है उसी प्रकार से गद्य गीत के विवेचनो मे भी उसी आधार को ग्रहण किया जाता है।[5] सस्कृत के काव्यादर्श के आधार पर इसका प्राचीन अस्तित्व सिद्ध किया जाता है। इसी भाति रवि बाबू के काव्यो का उल्लेख किया जाता है–अ ग्रेजी और अ ग्रेजी से अनुदित काव्यो पर भी विचार किया जाता है। डा० राम कुमार वर्मा ने इसमे प्रगीतो के समान इसमे भावनात्मक अनुभूति और कोमल पदावली को आवश्यक माना है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने इसके विवेचन मे अग्नि पुराण के समान सक्षिप्त काव्य विधान को आवश्यक माना है।[6] सस्कृत के कादम्बरी गद्य ने इस विधा पर प्रकाश डाला इसकी भी व्याख्या की जाती है।

१—देखिये डा० गोविन्द त्रिगुणायत के शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त-निबन्ध, नाटक, उपन्यास आदि की आलोचना।

२—साहित्यक निबन्ध (प्रोफेसर भारत भूषण सरोज)।

३—साहित्य शास्त्र विशेषांक जुलाई अगस्त, १९६२।

४—वही—पृष्ठ ८७।

५—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पृष्ठ ३३६।

६—वही—

डा० पद्मसिह शर्मा ने गद्य काव्य के प्रथम लेखक रूप मे भारतेन्दु को स्वीकार किया है । डा० गोविन्द त्रिगुणायत इस पर आपति प्रकट करते हैं और कहते हैं कि चन्द्रावली की रचना एक नाटिका के रूप मे हुई है । नाटक स्वय उत्कृष्ट् काव्य है । उसके गद्यो मे भावनाओ को उद्रेक और सरस काव्यत्व का स्फ,रण होना बहुत स्वाभाविक है ।[1] यहा यह उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु के समर्पण से इस परम्परा का उद्गम माना जाना चाहिये । भारतेन्दु ने नाटिकाप्रारम्भ करने से पूर्व जो कृष्ण को समर्पण लिखा है वह गद्य काव्य का उदाहरण है । इस लेखन क्रिया पर शेक्सपियर के "ब्लैक वर्स" की छाया दिखाई देती है । वहा भिन्न तुकान्त काव्य को भावावेश पूर्ण शैली मे प्रकट किया गया है । तदनन्तर साहित्य मे ऐसा प्रचलन होने लगा और ऐसी ही रचनाए सामने आई । इस प्रकार कहा जा सकता है कि आलोचक इस विद्या को भी सस्कृत और अ ग्रेजी काव्यो के परिपार्श्व मे रखकर देखते है । अतएव यह कहा जा सकता है कि गद्य गीत का उद्गम कादम्बरी के गद्य और शेक्सपियर की ब्लैक वर्स के आधार पर हुआ है । ऐसी ही अवस्था उपन्यासो की है ।

उपन्यास:—

आधुनिक युग मे उपन्यासो का महत्वपूर्ण स्थान है । इसकी आलोचना भी सस्कृत और अ ग्रेजी दोनो के आधार पर की जाती है ।[2,3] आलोचको का उपन्यासो मे मनोवैज्ञानिकता, यथार्थ चित्रण और अन्य वादो को खोजना इसका साक्षी है ।[4] उपन्यासो की वस्तु पात्र सम्वाद और शैली के आधार पर आलोचना करना इस समालोचना पद्धति पर अ ग्रेजी प्रभाव स्पष्ट करता है । प्रेम चन्द जी ने उपन्यासो को मानव चरित्र का विकास माना है, जो अर्नेस्ट ए बेकर के अनुकूल है । उपन्यासो में की गई मनोविज्ञान की छान-बीन उपन्यासो की आलोचना पर अ ग्रेजी प्रभाव स्पष्ट करती है । डा० देवराज उपाध्याय कृत आधुनिक कथा साहित्य मे मनोविज्ञान इसका प्रमाण है । अ ग्रेजी के रीजनल नौबल्स के समान हिन्दी मे भी आचलिक उपन्यासों का वर्णन किया जाता है ।

१—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पृष्ठ ३३६ ।

२—डा० हजारी प्रसाद-साहित्य सन्देश उपन्यास अ क अक्टूबर सन् १६४०-पृष्ठ० २ ।

३—साहित्य सन्देश जुलाई अगस्त, १६६२—पृष्ठ ५६,६० ।

४—वही—पृष्ठ ६२, ६३

डा० माता प्रसाद गुप्त ने हिन्दी पुस्तक साहित्य मे जायसी कृत पद्मावती को उपन्यास कोटि मे रखा है। किन्तु सामान्यत आलोचक उसे कथा काव्य ही कहते है। डा० विश्वनाथ मिश्र ने उपन्यासो पर अग्रेजी प्रभाव आकेत समय कहा है कि ......हिन्दी मे इस साहित्य विधा का विकास विशेष रूप से अंग्रेजी प्रभाव के युग मे ही हुआ है।[१] ऐसा करते समय अ ग्रेजी के उपन्यास साहित्य पर भी उन्होने प्रकाश डाला है।[२]

हिन्दी उपन्यासो का विवेचन सस्कृत की पौराणिक कथाओं की ओर सकेत करके भी दिया जाता हैं। यथा महेन्द्र चतुर्वेदी ने उपन्यासो के उद्भव पर प्रकाश डालते हुऐ वशिष्ठ और विश्वामित्र के वैमनस्य की ओर सकेत किया है।[३] इसी भाति वहा मैंकोले और अ ग्रेजी के आलोचक भी विवेचन की सामग्री रहे हैं। विभिन्न भाषा के उपन्यासो का उल्लेख भी किया जाता है।

अतएव हिन्दी उपन्यासों की आलोचना करते समय अंग्रेजी के आलोचना तत्वो को अपनाया जाता है। और दृष्टि सस्कृत ग्रन्थो पर भी रखी जाती है।[४] यही अवस्था निबन्धो की भी है।

निबन्ध —

बहुधा निबन्ध का स्वरूप विश्लेषण करते समय इसे अर्वाचीन आलोचना विधा माना जाता है।[५] इसकी परिभाषा देते समय मोन्टेन, रीड, बैकन, वर्षफोल्ड और डा० जाहन्सन तथा अन्य आलोचको के मत प्रस्तुत किये जाते हैं।[६] पाश्चात्य साहित्य के समान प्रबन्ध और निबन्ध का भेद भी किया जाता है। निबन्ध को व्यक्ति

१—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अ ग्रेजी प्रभाव पृष्ठ २८६–२६१।

२—वही पृष्ठ ३०१।

३—हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण–पृष्ठ ख, च।

४—वही—पृष्ठ ग, घ, च, फ, थ, त, र आदि।

५—डा० विश्वनाथ मिश्र हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ३१३, ३३६।

६—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त दूसरा भाग पृष्ठ ३३७।

प्रधान और प्रबन्ध को विषय प्रधान माना जाता है। अंग्रेजी निबन्धो के समान हिन्दी मे भी निबन्ध मे व्यक्तित्व की झलक आवश्यक मानी जाती है। शुक्लजी व्यक्तित्व की स्वाभाविक छाप के समर्थक थे। थीसिस से भी निबन्ध का भेद स्थापित किया जाता है। हिन्दी मे इसकी बात का समर्थन अंग्रेजी से कराया जाता है। इनकी आलोचना मे अंग्रेजी शब्दो को स्थान दिया जाता है। अंग्रेजी प्रभाव के कारण अनुसधानात्मक निबन्ध भी लिखे जाते है। इसी भाति अंग्रेजी के समान हिन्दी निबन्धो मे व्यग्य का समावेश हुआ है। गेहूँ और गुलाब [1] इसका उदाहरण है। सरदार पूर्णसिंह की रचनाओ मे वाल्ट विट मैन का प्रभाव देखा जा सकता है। [2] अतएव निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि निबन्धो की आलोचना मे सस्कृत और अंग्रेजी दोनो के उदाहरण दिये जाते हैं। उन्हे अंग्रेजी की परिभाषा मे बाधने का प्रयत्न किया जाता है। अंग्रेजी की दृष्टि से निबन्ध को मनोविज्ञान, व्यक्तित्व, व्यग्य और अन्य बौद्धिक विवेचना से सम्बन्धित घोषित किया जाता है। निबन्ध की व्याख्या करते समय एक ओर जहाँ सस्कृत का आधार लिया जाता है वहाँ दूसरी ओर उसे अंग्रेजी के ऐसे का परियाय मान लिया जाता है। [3]

अन्य विधाएँ:—

निबन्ध के समान कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, स्कैच, इन्टरव्युह जीवनी साहित्य, यात्रा साहित्य, सन्लाप और पत्र-पत्रिकाओ की आलोचनाएँ भी की जाती हैं। पत्र-पत्रिकाओ और इन्टरव्युह के अतिरिक्त अन्य सभी की व्याख्या करते समय सस्कृत और अंग्रेजी दोनो ही दृष्टियो से विचार किया जा सकता है।

गीति काव्य

अंग्रेजी प्रभाव—

अंग्रेजी के हर्बर्ट रीड और राइस के समान हिन्दी गीति काव्यो मे भावातिरेक, आत्म विषयक अभिव्यजना, सगीत और माधुर्य प्रभृति गुणो को अनिवार्य

१—लेखक राम वृक्ष बेनीपुरी।

२—डा० विश्वनाथ मिश्र—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ३४५।

३—साहित्य सन्देश जुलाई, अगस्त विशेषाक सन् १९६२—पृष्ठ ७३ से ७६।

माना जाता है [१] हिन्दी में अंग्रेजी के से करुण गीत (इलिजी) लिखे जाने लगे। प्रसाद का 'आँसू' और दिनकर कृत 'नई दिल्ली' इसके उदाहरण है।

अंग्रेजी के सम्बोधी गीतो के समान हिन्दी मे पन्त की 'छाया' और निराला जी का 'युगान्त के प्रति' सामने आये।

अंग्रेजी के प्रभाव स्वरूप यह कहना ही होता है कि—"हमारी समझ मे राजशेखर का वर्गीकरण आज बहुत अधिक महत्व नही रखता है इसके अतिरिक्त उसके वर्गीकरणो के अन्तर्गत हिन्दी के बहुत से कवि नही आ सकते। अतएव वर्गीकरण की पुर्नव्याख्या बडी आवश्यक प्रतीत होती है।" [२]

कविता : छंद

अंग्रेजी प्रभाव:—

अब छद बद हेय माना जाता है। छायावादी कवियो ने ही मुक्त छद का आव्हान किया था। [३] अब तक गीतात्मक छदो का प्रणयन होने लगा—

> ''अब तो नूतन गीत पुराने लगते है।
> गीतो के स्वर नये नये पर छद वही हैं,
> छदो मे रागो का अन्तर्द्वंद्व वही है,
> चिन्तन मे अकुरित विचारो की बगिया मे,
> नये नये हैं फूल मगर मुकरद वही है।। [४]

उपर्युक्त गीत में स्पष्ट रूप से 'छन्द वही है' कह कर कवि ने छन्द परिवर्तन की कामना प्रकट की है और रागो में अन्तर्द्वंद्व का समावेश कथन उस पर अग्रेजी के 'मेन्टल कोन्फ्लिक्ट' का प्रभाव प्रदर्शित करता है। कई आलोचक निम्नाकित छन्दो को हेय मानते हैं.—

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायत शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत। पृष्ठ ३०-३२।
२—वही पृष्ठ ७८।
३—"प्रिय आ तू छोड़ कर छंदों की बधन मय छोटी राह"।
४—बलवीर सिंह।

"श्री मान्
श्री युत्
श्री लक्ष्मीकात
: : : . : :
: : : : कवि हो ?
छन्द नही लय नही : : : :
केवल गति : :
: : पैरा शूट " [१]

प्रयोगवादी कविता.—

इसी भाँति निम्नाकित काव्य प्रयोग और काव्य शैली आलोचको द्वारा प्रशसा प्राप्त करने मे असमर्थ रही—

"आ
आ
आ
ओ
मेरे पास आ री
घडी भर के लिये ही सही।
मुझे पी
जी
मेरी कल्पना, मेरी कल्पना, मेरी वासना थी
जी"। [२]

इसके सम्बन्ध मे तो कहा गया है—"इस प्रकार विराम चिन्हो का ऐसे ऐसे ढग से प्रयोग किया गया है कि मालूम होता है कि कवि महोदय ने कोई नई शैली

१—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित-रस सिद्धांत : स्वरूप और विश्लेषण।
२—राजेन्द्र किशोर विरचित।

खोज निकाली है। किन्तु होती है वह नवीनता की धुन मे जगने वाली कार्टूनी सूझ।[1]

इसका तात्पर्य यह नही कि सभी आधुनिक कविताएं नीरस और निष्प्राण होती है। कविता मे सरसता के साथ काव्य के उपादानो और उपकरणो पर भी प्रकाश डाला जाता है। श्री पण्डित श्यामलालजी एम० ए० विरचित निम्नाकित कविता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है:—

> ''कविता वह करती कलोल हो,
> रस मयी रस भरे बोल हो—
> सुकुमार सरलता बरस रही हो—
> शब्दाडंबर से विहीन हो।
> कविता सरिता सी बहती हो।
> बोल नही मृदग बजे हो,
> ऐसी प्रकृत रूप मयी हो,
> जन-जन का मन मोह रही हो।''

ऐसी कविता को पढ कर हर भावक और भावुक को इनके भावो और इनकी मजी हुई भाषा की सराहना करनी ही होती है। अंग्रेजी प्रभाव के कारण प्राचीन सैद्धान्तिक नियमो और शास्त्रीय तत्वो की भी नवीन और आधुनिक व्याख्या की जाती है। रस, भाव, विभावादि का निम्नाकित विवेचन हमारे कथन की पुष्टि करता है।

शास्त्रीय तत्वः नवीन व्याख्या

भावः—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भाव को भरत के समान अभिनय से सम्बद्ध रस भावन मात्र ही नही माना है। इन्होने शैंड के समान इसे व्यापक प्रदान किया है।[2] डा० श्यामसुन्दर दास ने पाश्च्यातसस्कृत और अन्य मान्यताओ का भिन्न-

---

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायत शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत पृष्ठ १७२।

२—क—डा० जयचन्द्र राय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—अप्रकाशित शोधप्रबन्ध पृष्ठ ४६—४७।

ख—डा० रामलाल सिंह—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समीक्षासिद्धान्त पृष्ठ ३४६ ३४७।

ग—व्यापक विवेचन देखिये आचार्य राम चन्द्र शुक्ल की विवेचना।

भिन्न विवेचन किया है । इन्होने भी मनोवैज्ञानिक आधार को अपनाया और भावो को तीन श्रेणियो मे बाटा—

क—इन्द्रिय जनित ।

ख—प्रज्ञात्मक—सचारी ।

ग—गुणात्मक ।[१]

डा० नगेन्द्र ने संस्कृत और अग्रेजी के इन शब्दो का साम्य-वैषम्य मूलक अध्ययन किया है । उनकी परिभाषा—वाह्य जगत के सवेदनो मे मनुष्य के हृदय मे जो विकार होते है वे ही मिलकर भाव की सज्ञा प्राप्त करते है ।[२] यह तो सस्कृत के अनुकूल है किन्तु भाव का स्पष्टीकरण मनोवैज्ञानिक प्रकाश मे किया गया है । और उसे एमोशन के रूप मे मान्यता दी गई है । डा० गुलाब राय ने मनोवैज्ञानिक अर्थ से विवेचन कर भाव तथा साहित्य के भाव को भिन्न-भिन्न माना है ।[३] यही अवस्था स्थायी भावो की है ।

स्थायी भाव.—

सन् १८२६ मे एच० एच० विल्सन ने सस्कृत नाटको के अग्रेजी अनुवाद मे रस के लिये सेन्टिमेट शब्द का प्रयोग किया । इसका हिन्दी काव्यशास्त्र पर निम्नाकित प्रभाव पडा ।

क—रस शब्दावली केवल बाह्य उपकरण मात्र, को अग्रेजी मनोवैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दो मे ढालने का प्रयत्न किया गया । उदाहरण के लिये रस को सेन्टिमेट कहा गया ।

ख—भावो को एमोशन की सज्ञा दी गई ।

१—साहित्यलोचन पृष्ठ २२१।२१५

२—सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ ७५ ।

३—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ५६ ।

संस्कृत काव्यशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तो (कन्टेन्टम्) की पाश्चात्य काव्य-शास्त्र से तुलना की गई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्थायी भावों और भावो का विवेचन शेंड के अनुसार किया है। शुक्लजी ने स्थायी भावो और भावो का विवेचन करते समय सेन्टिमेट्स और इमोशन से प्राप्य भेद को भी प्रकट किया है। इस विवेचन के फलस्वरूप इन्होने रति स्थायी भाव को स्थायी दशा (सेन्ट्मेट्स) के भिन्न प्रतिपादित किया है। शैंड के आधार पर भाव (इमोशन) और स्थायी दशा (सेन्ट्मेट्स) से पृथक शील दशा का वर्णन किया है।[1] इन्होने इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया है। एक अवसर पर एक आलबन के प्रति उत्पन्न भावो को भाव दशा कहा है। राग, हास, उत्साह, आश्चर्य, शोक, क्रोध, भय, जुगुप्सा को इसमे स्थान दिया गया है। अनेक अवसरो पर एक आलम्बन के प्रति उत्पन्न भावो की सख्या स्थायी दशा कही गई है। इसमे रति अनभिदेय, सताप, बयर, आशंका और विरति इसमे सम्मिलित किये गये हैं। अनेक अवसरो पर अनेक आलम्बनो के प्रति उत्पन्न भावों की सज्ञा, शीलदशा, नाम से अभिहित की गई है। इसमे स्नेहशीलता, रसिकता लोभ, तृष्णा, असोडपन, विनोदशीलता, वीरता, तत्परता और धीरता आदि को स्थान दिया गया है। इस प्रकार इन्होने मनोवैज्ञानिक आधार पर विवेचन करने का प्रयास किया है।

डा० ग्रियेरसन ने अपने इतिहास मे रसो की सज्ञा स्टैयिल दी। किन्तु यह शब्द शैली के ही प्रयोग मे आता है और यह रस का पर्याय बनने मे असमर्थ ही रहा है। यहाँ यह कहे तो अत्युक्ति नही होगी कि रस का शब्द उपयुक्त पर्याय वाच्य शब्द विदेशी साहित्य मे प्राप्त ही नही होता है। जिस प्रकार डा० बुचर ने यूनानी काव्य-शास्त्र का अनुवाद करते समय यह अनुभव किया कि अरस्तू के द्वारा प्रयोग मे लिये गये शब्दो के उपयुक्त पर्याय कामदी और त्रासदी नही कहे जा सकते[2] उसी प्रकार भारतीय काव्यशास्त्रीय शब्दो के अंग्रेजी पर्याय दुर्लभ हैं।

डा० नगेन्द्र ने मनोविज्ञान के आधार पर भावो या मनोविकारों को तीन भावो मे विभाजित किया है—

२—डा० बुचर कृत अरस्तू के काव्यशास्त्र का अंग्रेजी अनुवाद-भूमिका।

१—आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धांत (डा० रामलाल सिंह) पृष्ठ ३४६

क—मौलिक मनोविकार (प्राइमरी इमोशन)

ख—व्युत्पन्न मनोविकार (डिरैव्ड इमोशन) (Derived Emotions)

ग—मनोवृति (सेन्टिमेन्ट) ।

इनका यह मत है कि सस्कृत काव्यशास्त्र वर्णित रति आदि स्थायी भावो को उपर्युक्त किसी एक वर्ग मे नही रखा जा सकता है । उन्होने इनकी उपरिकथित मनोवैज्ञानिक भावो से तुलना कर, प्राप्य, साम्य, वैषम्य का विवेचन किया है । [१] डा० गुलाबराय ने तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए स्थायी भावो का सम्बन्ध इंस्टिक्टस से जोड़ने का प्रयत्न किया है । डा० राकेश गुप्त ने सस्कृत और अग्रेजी शब्दावली को अभिन्न सिद्ध करने के प्रयास को हेय बताया है । [२]

स्थायी भाव और स्थायी वृतिः—

अग्रेजी प्रभाव के कारण स्थायी भावो और सेन्टिमेट्स के तुलनात्मक अध्ययन को बल मिला । कितना विवेचन सेन्टिमेट्स और स्थायी वृत्ति के सूक्ष्म भेदो प्रभेदों को प्रकट करने का किया जाता है । इनका विवेचन करते समय विभिन्न सस्कृत काव्यशास्त्रकारो ओर पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको के उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं । [३] स्थायी भाव सहृदय मे सस्कारगत विद्यमान रहते है किन्तु सेन्टिमेट्स का फोरमेशन (संघटीकरण) होता है । स्थायी भाव आस्वाद्य होते है किन्तु सेन्टिमेट्स की सहचर भावनाओ का ही आस्वादय सम्भव है । आज यह भी कहा जाता है कि स्थायी भाव मे परम्परानुरोध को त्याग कर नये स्थायी स्वीकार किये जा सकते हैं । [४] इस तुलना से रस और सेन्टिमेटस भी नही बच सके हैं ।

१—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ७२ ७३ ।

२—डा० राकेश गुप्त–सैकोलिजिकल स्टडींज इन रसास पृष्ठ १२६ ।

३—डा० मनोहर काले ३–आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ३६–४१ ।

४—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित–रसस्वरूप : सिद्धांत और विश्लेषण, प्राक्कथन एव पृष्ठ १४ ।

रस और सेन्टिमेन्टस –

जिस प्रकार से स्थायी भाव और सेन्टिमेनट की तुलना की गई उसी प्रकार से रस और सेन्टिमेट की भी तुलना की गई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रस तो ब्रह्मानन्द सहोदर है जो सामाजिक को भी साधारणीकरण द्वारा प्राप्य होता है किन्तु सेन्टिमेटस किसी भी व्यक्ति मे हो सकता है उनका सम्बन्ध आनन्द से नही है। रस, अभिनयात्मक और काव्यात्मक प्रक्रिया का परिणाम है और सेन्टिमेट जगत के क्रिया व्यापारो की मानसिक प्रतिक्रिया।

स्थायी भाव और सहज प्रवृतिया (इन्सटिक्टस)

डा० नगेन्द्र ने स्थायी भावो और सहज प्रवृतियो का विवेचन किया है।[१] डा० गुलाब राय ने भी ऐसा ही प्रयत्न किया है। यहाँ भी यह उल्लेखनीय है कि इनका पर्ण सबन्ध स्थापित करना अवाछनीय और दुराग्रह मात्र ही हो सकता है। यह सत्य है कि काव्यशास्त्र और मनोवैज्ञानिक की आधारभूत मिलन भूमि एक ही है–वह है भावनाओ की।[२] साथ ही यह भी सत्य है कि मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाये मानव जाति पर घठित होती है जो इस कार्य व्यापार मय जगत मे विचरण करते हैं। परन्तु काव्यशास्त्रीय विवेचन का सम्बन्ध सहृदय सामाजिको से है जिनकी विचारभूमि काव्य ही है। अतएव इनमे पूर्णरूपेण साम्य प्राप्त करने का प्रयास उपयुक्त नही है।

विभाव विवेचन –

शुक्लजी ने आचार्य और आलम्ब मे भेद स्वीकार किया है। यह मत जगन्नाथ के अनुकूल है। शुक्लजी ने प्रकृति वर्णन को स्वतन्त्र आलम्बन रूप में स्वीकार किया है। वास्तव मे प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण सभव भी है।[3] शुक्लजी ने पूर्ण रस दशा प्राप्ति के लिये कहा है कि आश्रय श्रोता के रति भाव का आलम्बन होगा और आलम्वन श्रोता के भी उन्ही भावों का आलम्बन होगा आश्रय के जिन भावो का है।[४] इस पर डा० काले ने मिम्नाकित आपत्तिया प्रस्तुत की हैं।

१—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ८०।

२—डा० मनोहर काले—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ५५।

३—वही पृष्ठ ६०–५९।

४—वही एवं रस मीमांसा पृष्ठ १५०।

क—रस सिद्धान्त ही मूलत: इतना अव्यापक है कि उसमे कवि द्वारा अभिव्यक्त सभी प्रकार की भावनाओ का अन्तर भाव नही हो पाता है। विशेषत: वे भाव रसानुभूति के अनुपयुक्त है, जिनमे काव्यगत आश्रय की भावनाओ से सहृदय का तादात्म्य नही हो पाता है। अथवा।

ख—भरत मुनि ने परिवर्तित आचार्यो ने ही व्यापक विभाव तत्व को सहृदयगत रस निष्पति की दृष्टि से सकुचित बना दिया है।

रस सिद्धान्त मे अव्यापकता का एक कारण उसके विभिन्न तत्वो का अत्यधिक सूक्ष्म वर्गीकरण भी है। ····· ऐसी स्थित मे सहृद के लिये काव्यगत आलम्बन तथा काव्यगत आश्रय दो पक्ष निर्धारित करना अनुपादेय होता है। काव्यगत आलम्बन तथा काव्यगत आश्रय दोनो ही आलम्बन स्परूप ही है ।······ अधिक स्पष्ट शब्दो मे कहे तो यहाँ काव्य आलम्बन शकुन्तला और काव्य-गत आश्रय दुर्वाशा दोनो ही सहृदय के लिये आलम्बन रूप ही है।[१]

इन आपत्तियो का समाधान हम निम्नाकित रूप से कर सकते हैं। दुर्वासा से सामाजिको का तादात्यम्य नही होता है। सामाजिक एक ही घटना को इकाई के रूप मे नही देखते हैं। वे तो पूरे रूप से दुष्यन्त और शकुन्तला के कार्य व्यापार का रसास्वादन करते हैं। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेई का भी यही मत है।[२] दूसरा रस सिद्धान्त को अव्यापक कहना और सूक्ष्म वर्गीकरण को हेय बताना इन पर अग्रेजी प्रभाव का द्योतक है। ऐसा ही प्रभाव डा० बच्चनसिंह पर भी देखा जा सकता है जबकि वे हिन्दी साहित्य कोप मे नाटको की कथा वस्तु का विवेचन करते हैं। अस्तु अग्रेजी मे रस निक्पती जैसी कोई साहित्य प्रक्रिया नही है। इसलिये आज अग्रेजी आलोचना के प्रभाव स्वरूप हिन्दी मे भी इसे महत्वपूर्ण नही माना जाता है। यद्यपि यह तो मानना ही होगा कि अग्रेजो के आने से पूर्व रस निक्पति की महता बहुत क्षीण हो गई थी फिर भी अग्रेजो के प्रभावो के कारण रस की बहुत कुछ अवहेलना हुई। आज तो इसे अव्यापक भी कहा जाता है। वर्गीकरण की

१—डा० मनोहर काले–आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ६०

२—आचार्य नन्द दुलारे वाजपेई आधुनिक हिन्दी साहित्य पृष्ठ ६०।

प्रणाली को अ ग्रेजी साहित्य मे हेय माना जाता है। वे इस भारतीय पद्धति को उपयुक्त नही मानते हैं। डा० कीथ ने अ ग्रेजी मे सस्कृत नाटको का विवेचन करते हुए यहाँ की इस पद्धति को अवाच्छनीय बताया है।[१] एतदर्थ हिन्दी मे भी इस वर्गीकरण से घृणा होने लगी है।

अनुभाव:—

सस्कृत मे अनुभावो के चार भेद किये गये है कायिक, मानसिक, आहार्य और सात्विक।[२] डा० श्याम सुन्दरदास ने आहार्य को अभिनय का ही अग माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मानसिक, आहार्य को नही माना है। रामदेव मिश्र तथा डा० गुलाब राय आचार्यों की धारणाओ की पुष्टि करते है। डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने सात्विको की भाव सत्ता और उनको अनुभाव मानने के आचित्य पर प्रकाश डालते हुए भानुदत्त का अनुसरण किया है और वे लिखते है कि इस प्रश्न का एक मात्र समाधान भानुदत्त की रसतरमिनी से किया जा सकता है। उन्होने कहा है सहृदय यदि काव्य का अभ्यास किये हुए है, उसके कुछ प्राक्कथन सस्कार हैं तो परिणित भावादि के उन्मोलन के द्वारा काव्य के विषय का साक्षात्कार किया जा मकता है। यदि सूक्ष्मता के आधार पर काव्य का सर्वश्रेष्ठ स्थान स्वीकार कर लिया जाय तो उसी पर दृश्य काव्य के अपेक्षा श्रव्यश्रेष्ठ सिद्ध होगा।[३]

यहाँ यह कहना उपयुक्त ही होगा कि श्रव्य काव्य को दृश्य से श्रेष्ठतर कहना सस्कृत काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तो से विमुख होना है। वहाँ तो कहा गया है—काव्येशु नाटकम रम्य।

संचारी भाव:—

आधुनिक युग मे सचारीभावो को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाता है। डा० नगेन्द्र ने भाव को मूलत: मनोविकार माने हैं और सचारियो को भी उन्होने मनोभाव सिद्ध किया है।[४]

१—डा० कीथ सस्कृत ड्रामा पृष्ठ ३०, ३५, ४८।

२—भानुदत्त–रस तरगिक्ती पृष्ठ १०।

३—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित–रस सिद्धांत स्वरूप विश्लेषण।

४—रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ ८१।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आशा, निराशा, विस्मृति, सतोष, असतोष, पटुत: मृदलता और अधर्य नवीन सचारियो की कल्पना की है आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने न तो पूर्णरूपेण प्राचीन सिद्धान्त का अनुसरण किया और न नवीन का ही। उन्होने फिर भी दया, दाक्षिण्य और उदासीनता को सचारी माना है। रामदेव मिश्र ने सरलता का उल्लेख किया है। इस प्रकार इन्होने नवीन उदभावनाओ के प्रयास किये है जिनके मूल मे अग्रेजी आलोचनाओ के समान वैज्ञानिक छान बीन और मौलिक बनने की आकाक्षा है। यही क्यो सचारियो को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परखने का प्रयत्न ही पाश्‍चात्य प्रभाव का द्योतक है। बहुधा सचारियो का किया गया विवेचन और वर्गीकरण ओवरलेपिंग होता है। इस दृष्टि से आचार्य शुक्ल के किये गये सचा-रियो के वर्गीकरण को देखा जा सकता है।[1] डा० राकेश गुप्त ने मुख का आरक्त होना तथा नेत्रो का लाल होना इन दोनो को नवीन शास्त्रिक माना है।[2] डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने इस पर आपत्ति प्रकट की है और वे जम्बा एव डा० राकेश गुप्त द्वारा स्वीकृत उक्त प्रक्रिया को स्वीकार नही करते है।[3]

रस संख्या —

वैसे तो रसो की सख्या के बारे मे सस्कृत साहित्य मे भी कुछ मत भेद पाया जाता है। उदभट और अभिनव गुप्त ने रसो की सख्या मे विस्तार कर दिया था। शान्त को कालान्तर मे रस की श्रेणी मे स्थान दिया जाने लगा। इसकी व्याख्या भी की गई।[4] यथा रुद्रट प्रेयान्‌रस जिसका कि स्थायी भाव स्नेह है, उसे भी (काव्यालकार) समाविष्ट कर लिया। भोज ने उददात और उद्धत रसो का समावेश किया। भानुदत्त माया रस के समर्थक रहे और हरिपाल देव के सयोग और विप्रलब के उन्नायक भक्ति, सख्य, दास्य और वात्सल्य को भी रस मानने को आग्रह

१—रस म मासा पृष्ठ २२६।

२—सैकोलोजिकल स्टडीस इन रसाज पृष्ठ १५५।

३—रस स्वरूप सिद्धांत और विश्लेषण—प्राक्कथन।

४—क—डा० राखवन नबर ओफ रसास पृष्ठ ६१।

ख—रस विमर्श पृष्ठ २२०।

ग—शास्त्र शिरोमणी भाव प्रकाश पृष्ठ २७।

हुए । नाट्य दर्पणकार ने लौल्य, स्नेह, दुख और सुख की रस रूपता की भी सभावना प्रकट की ।[1] यहा यह कहना ही होगा कि वहाँ रस विस्तार के होते हुए भी रसो की सख्या नौ या दस से आगे नही बढी । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही रहा है कि नवीनरस स्थापक पहले के नौ और दस रसो की स्थापना करते और तब अपने रसों की स्थापना करते और तब अपने रसो की सख्या उसमे जोड कर १२ या १३ बना देते थे । उदाहरण के लिये भोज ने ३ रस जोडे विश्वनाथ ने एक वात्सल्य रस मिलाया हरिपाल देव ने भी तीन रस जोड कर १३ रस बनाये । इससे प्रतीत होता है कि ये नवीन रस स्थापक स्वय एक दूसरे को महत्ता नही देते थे और सर्व प्रचलित तथा सर्वमान्य रसो को मान्यता देते थे । एक ओर रुद्रट जहाँ आस्वादयता के आधार पर हर भाव को रस मान लेते हैं वहाँ लोलट इसके विरुद्ध थे। उन्होने विद्वानो की सभा बुलाकर इसे रोकना भी चाहा । अधिकाशतः रसो की सख्या अधिक विस्तृत नही हो पायी ।

आधुनिक युग मे अग्रेजी के प्रभाव के कारण यह कहा जाने लगा कि रस दृष्टिकोण अव्यापक है और सभी देशो और सभी साहित्य के अगो को इस परिपाटी के दृष्टिकोण से नही देखा जा सकता है यथा मारलो के डा० फास्टस का स्थायी भाव अपार शक्ति की तृष्णा और शेकस्पियर के ओथेल्लो का स्थायी भाव प्रेमशका है । ये भाव और दूसरे बहुत से जिन पर आधुनिक नाटक उपन्यास और काव्य आधारित है नौ स्थायी भावो के अतिरिक्त हैं । अन्याय और अनम्यता के भावो पर गाल्सवर्दी के नाटक सिलवर बोक्स और स्ट्राइफ आधारित हैं । यदि खीचतान कर इन भावो को उन्ही नौ भावो मे मिला दिया जाय तो संतुष्टि नही हो सकती है[2] अब देशकाल सापेक्ष नवीन रसो की उद्भावनाएं हुई । देश भक्ति नवीन बन गया ।[3] रसो की इन्सटिंक्टस से तुलना करते हुए वात्सल्य रस को पारन्टल इन्सटिंक्टस से सम्बन्ध कर उसे भी रस माना गया । वैसे तो यह रस विश्वनाथ द्वारा ही मान्यता प्राप्त कर चुका था परन्तु इसे नवीन दृष्टिकोण से देखना अंग्रेजी प्रभाव का परिणाम है । डा० नगेन्द्र

१—गायकवाड संस्कृत सीरिज पृष्ठ १६३ एवं आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ १२७, १२८ ।

२—पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त पृष्ठ ७८, ७९ (लील धर गुप्त)

३—क-नव रस पृष्ठ ६२, ख—सिद्धांत और अध्ययन पृष्ठ १५८ ।

ने रसो को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परखने का स्तुत्य प्रयास किया है। इन्होने पूर्व प्रचलित प्रणाली को पूर्णरूपेण निर्दोष नहीं माना है। रामदेव मिश्र ने ११ रसो (भक्ति और बात्सल्य) को मान्यता दी है। डा० भागीरथ मिश्र ने भी ११ रस माने है। इलाचन्द्र जोशी ने विश्वाद रस को स्थान दिया है। शुक्लजी ने जब प्रकृति को स्वतन्त्र आलम्बन माना तो आगे के आलोचको ने प्रकृति रस की ही स्थापना कर दी है।[1] अग्रेजी के काव्यो के ज्ञान मे और अंग्रेजी कवियो के प्रभाव ने शुक्लजी को प्रकृति को स्वतन्त्र आलम्बन मानने की प्रेरणा दी। वेर्डसवर्थ का साहित्य इसका प्रमाण[2] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्रकृति रस को स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार किया है।[3]

सामञ्जष्य:—

डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल ने प्रकृति रस की स्थापना की और उसके स्थायी भाव और परम्परागत शास्त्रीय तत्वो का दिग्दर्शन भी किया है।[4] ये नवीन उद्‌भावना के समर्थक है और साथ ही शास्त्रीय पृष्ठ भूमि के पोषक भी। आज तो रति को व्यापकता प्रदान की गई है। और इसका आधार मनोवैज्ञानिक प्रवृति माना जा सकता है। डा० मनोहर काले ने प्रकृति रस को स्वतन्त्र रस माना है। और उसके निम्नाकित ढग से शास्त्रीय पक्ष का विवेचन भी किया है। वे उसके आलम्बन, उद्दीपन्न आदि सभी की कल्पना कर लेते है।[5] विषय विस्तार मे सस्कृत की शास्त्रीय परम्परा को देशकालानुसार मनोवैज्ञानिक और नवीन अग्रेजी समीक्षा सिद्धान्तो की दृष्टि से बल मिला है। डा० नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय कार्य किया है। आधुनिक युग मे रस सिद्धान्त की व्यापकता और उसके महत्व को भी प्रतिपादित किया जाता है। इसके साथ ही केवल बौद्धिक काव्य को काव्य की सज्ञा ही नही दी जाती है।[6]

१—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ १३८, १३९।
२—रस मीमांशा, विभाव प्रकरण।
३—वांगमय विमर्श पृष्ठ २३३।
४—काव्य में प्रकृति चित्रण पृष्ठ ४८।
५—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ १४४।
६—रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ ४२९ ४३०।

रस

अंग्रेजी परिपार्श्व में—

आधुनिक आलोचना पर अंग्रेजी आलोचना के प्रभाव निम्नांकित रूपो मे पडा।

क—प्राचीन की पूर्णरूपेण अवहेलना।

ख—प्राचीन को नवीन दृष्टि से देखना।

ग—प्राचीन सिद्धान्तो और नवीनता सामनजेषी स्थापित करना।

घ—प्राचीन सिद्धान्तो एव नवीन सिद्धान्तो की तुलना का पुरातन सिद्धान्तो की उचित सीमा रेखाओ का प्रतिष्ठान करना।

प्रथम शैली का उदाहरण निम्नांकित कथन है—

इस पुराने सिद्धान्त से साहित्य को समझने मे भी कितनी मदद मिल सकती है यह सदिग्ध है। क्योकि जीवन की धारायें एक दूसरे से इतनी मिली-जुली है कि नव रसो की मेंडबाद कर उन्हे अपने मन के मुताबिक नही बहाया जा सकता [1]। दूसरी का उदाहरण रस को इमोशन आदि की दृष्टि से परखना दिखायी देता है। इसी भाँति डा० राकेश गुप्त ने मनोविज्ञान के प्रकाश मे रस का विवेचन किया है। तृतीय रूप के दर्शन निम्नांकित कथन मे पाये जा सकते है—परम्परागत भावो को अंग्रेजी के अनुकूल ग्रशन करना चाहिए—विभाव तत्व की परिव्यक्ति मनुष्य से लेकर कीट पतंग तक को सम्मलित किया जा सकता है। चतुर्थ श्रेणी मे डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित का शोध ग्रन्थ रखा जा सकता है। इस प्रकार रस सिद्धान्त की कही अवहेलना की गई, कही उसे नवीन दृष्टि से देखा गया और कही उसका विस्तार करते हुए नवीन समीक्षा पद्धतियो के सामनजष्य करने के लिए वाध्य किया गया।

अंग्रेजी प्रभावें के कारण आया हुआ सामनजष्य सिद्धान्त इसमे सहायक हुआ। रस निष्पती के सिद्धान्तो का विवेचन करते हुए अंग्रेज आलोचको के कत उद्रत किये जाते हैं। यही क्यो रसोद्रेक और करुणा रस तथा हास्य रस के सम्बन्ध मे पाश्चात्य दृष्टि से विचार किया जाता है [2]।

१—आधुनिक हिन्दी मराठी काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ २६०

२—(क) डा० रामलालसिंह आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धान्त–पृष्ठ २०३

(ख) रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ १४, १५ छवां अध्याय और छवां अध्याय।

करुणा रस में सुख कैसे ?

अग्रेजी प्रभाव के कारण रस के सम्बन्ध मे कई प्रश्न पूछे जाते है, और उनका उत्तर मनोविज्ञान या अग्रेजी काव्य शास्त्र की दृष्टि से दिया जाता है। इसमे प्रमुख प्रश्न है कि करुण रस से सुख की उत्पत्ति कैसे होती है। इसका उत्तर अरस्तू के 'कैथर्सिस–विरेचन' के आधार पर दिया जाता है। यह बताया जाता है कि हमारी दूषित भावनाएँ काव्य के माध्यम से बाहर अभिव्यक्त हो जाती है। और उनका शमन हो जाता है। फिर भी कई व्यक्ति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से करुण रस से आनन्द की उत्पत्ति नही मानते है[1]। इसका समर्थन सस्कृत के उदाहरण देकर किया जाता है[2][3] हमारा अभिप्राय तो यही है कि जब ऐसे प्रश्नो का उत्तर सस्कृत के आधार पर दिया जाता है तो आलोचको पर सस्कृत ज्ञान का प्रत्यक्ष या परोक्ष, एक या दूसरी विचारधारा का प्रभाव अवश्य ही दिखाई देता है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि काव्य या नाटक मे सुख-दुख का प्रदर्शन तो अवश्य होता था किन्तु रस निष्पत्ति होने पर, फल प्राप्ति होने पर आनन्द ही मिलता है। भरत मुनि ने तो नाटक का उद्देश्य दुखी, शान्त और शोकाकुल व्यक्तियो को आनन्द प्रदान करना माना है[4]। डा० नगेन्द्र ने भी रासानुभूति को आनन्दमय माना है। इनका मत है कि रचयिता के द्वारा सवेद्य बनाये गए भावो से सामाजिक तादात्म्य स्थापित करता है। यह है भी उचित ही ? क्योकि आलम्बन और आश्रय कवि भावो के साकार स्वरूप होते है और ऐसा मान लेने पर पूरी रचना की किसी एक इकाई

१—डा० राकेश गुप्त–साइकोलोजिक स्टडीज इन रसाज पृष्ठ १८०, १८४।

२—डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित–रसस्वरूप : सिद्धान्त और विश्लेषण पृष्ठ १८०, १८४।

३—डा० मनोहर काले–आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ २०६, २१०। *

४—नाट्य शास्त्र ७। ५५ और १। ११

से तादात्म्य स्थापित करने की भ्रान्ति का निराकरण हो जाता है। डा० नन्द दुलारे वाजपेयी रचयिता और सामाजिक की भावनाओ के तादात्म्य को साधारणीकरण मानते हैं। इनकी मान्यता है कि कवि कल्पित समस्त कार्य व्यापार से साधारणीकरण सम्भव है न कि किसी एक पात्र विशेष से[१]। डा० रघुवश ने सौन्दर्यानुभूति को रसास्वाद कहा है।[२] इस पर अंग्रेजी की 'एस्थैटिक सैन्स' का प्रभाव दिखाई देता है।

साधारणीकरण—

साधारणीकरण के सम्बन्ध मे यह कह देना उपयुक्त होगा कि कवि स्वय (तीव्र) अनुभूति को अनुभूत कर रचना द्वारा उसे सम्वेद्य बनाता है। तब सामाजिक सम्पूर्ण कृति हृदयागम कर सुन्दर और श्रेष्ठ से तादात्म्य स्थापित कर रस प्राप्त करता है। किसी एक घटना या एक पात्र विशेष से तादात्म्य स्थापित हो जाने पर साधारणीकरण का प्रश्न ही नही उठता है। यहाँ यह उल्लेख आवश्यक है कि साधारणीकरण मे सामाजिक का सकीर्ण और व्यक्ति परक दृष्टिकोण दूर हो जाना चाहिए। रचयिता का भी कर्तव्य है कि वह रचना मे ऐसे भाव, इस ढग से प्रतिपादित न करदे कि सामाजिक उसे स्वीकार ही न कर सके। बहुधा जब व्यक्ति या समाज के अङ्ग विशेष पर कटु प्रहार किया जाता है। तब वे व्यक्ति उसे सहन नहीं कर सकते। इसके उदाहरण प्राचीनतम समवकार समुद्र मथन मे प्राप्त होते हैं। जब यहाँ देवासुर सग्राम मे असुरो की पराजय और उनकी हीनता प्रदर्शित की गई तब नाटक असुरो के लिए असह्य हो गया। उत्तर रामचरित में सीता के दुःख को राम नही देख सके। अग्रेजी की ऐसी ही घटना का उल्लेख 'हैम्लैट' नाटक मे देखा जा सकता है। यही नही अथेलो द्वारा की गई 'डैस्डीमौना' की हत्या पर एक सिपाही ने गोली चला दी[३]। इसी प्रकार कहा जाता है कि 'मरचेन्ट औफ वैनिस' मे भी

१—नया साहित्य नये प्रश्न पृष्ठ १२२।

२—हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ ६२८।

३—डा० कौल बुक-'ए हिस्ट्री औफ इगलिश रोमेन्टीशिज्म पृष्ठ २१२ वोल्यूम १।

जब "शाईलौक दी ज्यू" के साथ किए गए व्यवहार को दर्शक सहन नही करसके [१]। इसलिए हमे चाहिए कि व्यक्तिगत व्यग्य प्रहार साहित्य मे न हो।

एक ऐसी ही घटना का उल्लेख सामाजिक हो कि जसवन्तसिंहजी द्वितीय के समय मे अमरसिंह का ख्याल निषिद्ध घोषित कर दिया गया क्योकि महाराजा की महारानी हाडी जाति की थी और नाटक का प्रमुख पात्र भी हाडी ही है जो मन्च पर पर्दापरा करती है। तत्कालीन महारानी इसे सहन नही कर सकी और ख्याल को निषिद्ध घोषित कर दिया। इस धारणा की पुष्टि एक अन्य तथ्य से भी होती है। बिगत शताब्दी मे जोधपुर मे ही एक थे यती। उनका दुराचार बढ गया था, इस कारण मौहल्ले वालो ने एक तमाशा बनाया और उसमे गुरो पर बहुत व्यग किया गया। यथा—

तावे बरणी टाट, गुरो थोरो माथो बडो मतीरो।

इस पर यति ने आकर पाव पकड लिए और भविष्य मे दुराचार न करने की शपथ ली।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति या समुदाय विशेष पर कटु व्यग प्रहार किया जाता है अथवा उनके हृदय मर्म को निर्मम ढग से छू लिया जाता है तब वहाँ किसी प्रकार के साधारणीकरण की सम्भावना नही रह पाती। अतएव साहित्य मे इस प्रवृति को रोकना भी आवश्यक है। [२]

साधारणीकरण मे इसीलिए यह माना जाता है कि नायक जो विरोधी न हो। वह सद्गुणो का प्रतिद्वन्दी भी न हो। यदि असद् पात्र विजयी होगा तो आनन्द की उपलब्धी नही हो सकेगी उसे रस विघ्न ही माना जायेगा। [३] वास्तव में रसाधारणीकरण एक सयुक्त मानसिक प्रक्रिया है। [४] इसमे हम सम्पूर्ण कार्य

१—डा० रौस–हिस्ट्री औफ शैक्सपीरियन प्लेज पृष्ठ ५१८।

२—पाश्चात्य साहित्यालोचन और उसका हिन्दी पर प्रभाव पृष्ठ ४

३—डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित–रस स्वरूप, सिद्धान्त और विश्लेषण पृष्ठ १८।

४—जे० ई० डाउने–क्रीमेटिव इमेजिनेशन अध्याय सैल्फ एण्ड आर्ट।

व्यापार के आधार पर सुख प्राप्ति की कामना रखते हैं—सुख प्राप्ति होती है। इस प्रकार स धारणीकरण मे कवि, काव्य और सामाजिक तीनो का तादात्म्य होता है और सामाजिको को आनन्द की उपलब्धि होती है।

भक्ति रस अंग्रेजी के परिपार्श्व में —

वैसे भक्ति रस की महत्ता के उत्स दण्डी के प्रेयोलंकार मे ही प्राप्त हो जाते है। रुद्रट ने प्रेयान का नवीन अलंकार के रूप मे उद्भावन किया जिसका भाव स्नेह बताया। तद्नन्तर कई लक्षण ग्रन्थो मे इसके दर्शन होने लगे। हिन्दी मे भी भक्ति मे रस का स्वरूप धारण किया—उसे रस राज कहा जाने लगा। श्री रूप गोस्वामी ने हरि-भक्ति रसामृत सिन्धु मे भक्ति रस को और भी बल प्रदान किया। आज का आलोचक इसे पुष्टि प्रदान करता है। वह कहता है कि भरत द्वारा कथित रसो मे विस्तार हो सकता है।[1]

यहाँ यह कहना सामयिक ही होगा कि रसो की सख्या मे तो कुछ तो वृद्धि सस्कृत साहित्य मे ही होने लगी थी किन्तु सस्कृत साहित्य की शास्त्रानुकूल रहने की प्रवृति ने रस सख्या मे विस्तार नही होने दिया—भक्ति रस को प्रौढ प्रमुखता नही मिल पाई। अग्रेजी से हिन्दी मे जब यह धारणा आई कि बधी-बधाई परिपाटी ही सर्वस्व नही है, भक्तिकालीन साहित्य का प्रचार हिन्दी मे विद्यमान था ही तब सस्कृत के आधार पर अग्रेजी से बल प्राप्त कर हिन्दी के आलोचको ने भक्ति को रस माना। अतएव इस मान्यता का आधार तो सस्कृत मे ख जा ही जा सकता है, किन्तु इसकी प्रेरणा अंग्रेजी धारणाओ से मिली।

इसी भाँति वात्सल्य को भी रस स्वीकार किया गया है। उसका स्थायी भाव वात्सल्य स्वीकार किया गया है। इतना ही नही, संस्कृत साहित्य ग्रन्थो से कार्पण्य रस, ब्रीडनक रस, ब्रह्म रस, प्रशान्त रस, माया रस, प्रक्षोभ रस, कान्ति रस प्रेम तथा विषाद रस के भी नाम ढूँढ निकाले हैं।[2] जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस विस्तार पर अग्रेजी का प्रभाव स्पष्टत. प्रतीत होता है। आजकल तो कई प्रकार

१—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित—रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ २६७।

२—वही पृष्ठ ३११।

के नवीन रसो की भी कल्पना की जाती है। डा० दीक्षित ने इस प्रकार की कल्पना को निराधार और अवाच्छनीय घोषित किया है।

रस विवेचन मे कई बार अग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली से हिन्दी मे भ्रम उत्पन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ अग्रेजी मे विख्यात दर्शन वेत्ता हीगेल को अईडियलिस्ट कहा जाता है। दार्शनिक पृष्ठ भूमि है उसका अर्थ विचारो को महत्ता देने वाला है किन्तु हमारे यहाँ हीगेल को अईडियलिस्ट के आधार पर आदर्शवादी मान लिया जाता है। जो अनुपयुक्त प्रतीत होता है। [1] रसो की भाति ही अलकारो का विवेचन भी अंग्रेजी के प्रभावो से अछूता नही रह सका है।

अलंकार अंग्रेजी के परिपार्श्व में

अलकार विवेचन पर निम्नाकित अग्रेजी प्रभाव आका जा सकता है। हिन्दी अलकारो के अग्रेजी मे नाम प्राप्त किये गये और उनकी तुलनाएं भी हुई। यथा रूपक को मेटाफर कहा गया और उपमा को सिमली। जगन्नाथ प्रसाद भानु तथा भगवानदीन और रामदहीन मिश्र ने अग्रेजी के परसोनिफिकेशन और ट्रान्सफर्ड एपिटेट नामक भेदो को भी स्वीकार किया। [2]

हिन्दी के अलकारों को मनोविज्ञानिक पृष्ठ भूमि पर स्थापित करने के प्रयत्न किये गये। रामदहीन मिश्र ने तो अलकार और मनोविज्ञान नामक प्रकरण मे इनका अपरिहार्य सम्बन्ध स्थापित किया। डा० राम कुमार वर्मा ने अलकारो का आन्तरिक विवेचन किया। [3]

अलकारो का वर्गीकरण अग्रेजी सिद्धान्तो के अनुकूल किया गया—उन्हे सदृशय, मूलक, विरोधमूलक और साहचर्यमूलक भेदो मे बाटा गया। [4] यह विभाजन प्रफोसर बेन से प्रभावित प्रतीत होता है। वर्ण विन्यास सम्बन्धी, वाक्य विन्यास

१—रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृष्ठ २२३।

२—काव्यदर्पण पृष्ठ ४३०, ४३३।

३—डा० रामकुमार वर्मा–साहित्यशास्त्र पृष्ठ ११८।

४—आलोचना के पथ पर अलंकार और मनोविज्ञान पृष्ठ १७ से ३४।

सम्बन्धी आदि विवेचन रामदहीन मिश्र ने किया। [1] इस पर एलिट्रेशन और पन का स्पष्ट प्रभाव है। डा० श्याम सुन्दर दास ने साम्य, विरोध और सानिधमूलक वर्गों में उन्हे बाटा है जो भी उपरिकथित विवेचन के अनुकूल है और प्रफोसर वेन से प्रभावित है।

आधुनिक युग मे अग्रेजी मे भाव पक्ष को कला पक्ष से अधिक महत्व दिया जाता है। इसलिये हिन्दी मे भी अलंकारो को अधिक महत्व नही दिया जाता है फिर भी जिस प्रकार से हरबैर्ट रीड और आ० ए० रिचैर्डस आदि ने शब्दालंकारो को कम महत्व दिया है और अर्थालंकार को अधिक महत्व दिया है तथा अलकारो मे सीमा निर्धारण का प्रयत्न किया है। वैसे ही प्रयास हिन्दी मे भी किये गये हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से अलंकारो के उत्पत्ति के बारे मे भी विचार किया गया है। [2] [3] इस प्रकार अलकारो के उद्गम पर वैज्ञानिक दृष्टि डालना अग्रेंजी संसर्ग का परिणाम कहा जा सकता है क्योकि प्राचीन काल मे तो आप्तवाक्य अधिकाशत: पर्याप्त मान लिया जाता था। अलकारो के विवेचन को सस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के अनुकूल विश्लेषण करके भी देखा जाता है।

विभिन्न पौरर्वात्य और पाश्चात्य अलकार विवेचको का तुलनात्मक अध्ययन किया गया—कुन्तक और क्रौचे की तुलना की गई। [4] आचार्य शुक्ल ने भी क्रौचे के सम्बन्ध मे भारतीय अलकारो का विवेचन किया। [5] डा० नगेन्द्र ने इस दृष्टि से विस्तृत विवेचन किया है। आधुनिक युग मे अंग्रेजी के सम्पर्क से गद्य का पूर्ण विकास हुआ। सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों मे अन्तर आया। इससे रीति कालीन काव्य प्रवृतियो की प्रतिक्रिया भी हुई। द्ववेदीयुगीन यह प्रतिक्रिया आलोच्य काल मे भी विद्यमान रही। पल्लव की भूमिका मे पन्तजी ने अलकार प्रदर्शन की अराजकता पर रोष प्रकट किया। [6] बहुधाआधुनिक अग्रेंजी

१—काव्य दर्पण पृष्ठ ३२३।
२—चिन्तामणि पृष्ठ १८४
३—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ९०
४—सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ ३५, ४२, ४३।
५—चिन्तामणि द्वितीय भाग पृष्ठ २४०।
६—पल्लव की भूमिका पृष्ठ १८।

के समान छात्रोपयोगी पुस्तको मे अलकारो के सूक्ष्म वेदो का निराकरण किया। अलकारों का विवेचन अंग्रेजी के माध्यम से भी हुआ। डा० एस० के० डे ने अंग्रेजी मे ही इन पर प्रकाश डाला।

हिन्दी अलकारो के विवेचन करते हुए अंग्रेजी अलकारो का उल्लेख किया जाता है। पाश्चात्य अलकारो के इतिहास का भी विवरण दिया जाता है।[1] यत्र तत्र कतिपय हिन्दी नामो के अंग्रेजी के अनूदित रूप भी दिये जाते हैं।[2] हिन्दी मे शब्दालकार अर्थालकार और उभयालंकार ही सामान्यत. साधारण आलोचको द्वारा मान्यता प्राप्त करते है : इससे यह प्रतीत होता है कि सस्कृत और अंग्रेजी की उभयनिष्ठ धारणाये तो हिन्दी मे अपना ली गई और सस्कृत की अधिकाश बाते जो अंग्रेजी मे नही थी वे बुलादी गई किन्तु अंग्रेजी की बहुत सी बाते जो संस्कृत मे नही थी वे हिन्दी मे अपना ली गई।[3] अंग्रेजी मे—

क–फिगर औफ स्पीच इन वर्ड्स,

ख–फिगर औफ स्पीच इन सेन्स एव

ग–फिगर औफ स्पीच इन दी बौथ, प्राप्त होते हैं।

अत. हिन्दी मे तीनो शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार मे मान्यता प्राप्त कर ली। अंग्रेजी के कारण हिन्दी मे मानवीकरण, विशेषण विमर्य और ध्वनकार्थ व्यजना जैसे अलंकारो को स्थान दिया जाने लगा। छायावादी कविता मे इन तीनो का बाहुल्य पाया जाता है।

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिन्दी अलंकारो मे सूक्ष्म वर्गीकरण को स्थान न देना, इनकी मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक व्याख्याये करना इन्हे शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार भेदो मे बाँटना तथा इन्हे भाव पक्ष

१—आधुनिक हिन्दी मराठी काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ३८२ से ३८५।

२—डा० गोविन्दत्रिगुणाय–शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पृष्ठ ३००

३—सस्कृत के सूक्ष्म भेदों को भुलाया जाना और अंग्रेजी के अन्तर्द्वन्द, यथार्थ चित्रण आदि का अपनाया जाना भी हमारे कथन की पुष्टि करता है।

से निम्नतर स्थान देना इनकी आलोचना पर अंग्रेजी प्रभाव सिद्ध करता हैं। अलं-कारो का तुलनात्मक अध्ययन भी हमारे कथन की पुष्टि करता है।

रीति विवेचन

अंग्रेजी परिपार्श्व में:—

कतिपय आलोचकों ने रीति और "स्टाइल" मे साम्य पाया जाता है तो अन्य समालोचको मे इनमे पर्याप्त भेद देखा है।[1] आज का आलोचक रीति सिद्धान्त और पाश्चात्य शैली तत्वो की तुलना पर वाचनीय प्रकाश डालता है।[2] इस दृष्टि से डा० नगेन्द्र का कार्य सराहनीय है। डा० बलदेव उपाध्याय ने भारतीय साहित्य शास्त्र [3] मे ऐसा ही प्रयास किया है। इन्होंने दोनो की समता पर प्रकाश डाला है। साथ ही यह भी प्रतिपादित किया गया है कि हमारे यहाँ मे "स्टाइल" के जैसा व्यक्तिगत तत्व नही प्राप्त होता है। इसके विपरीत डा० गुलाबराय ने "अस्त्यनेको गिरा मार्ग" के आधार पर व्यक्तिगत तत्व को भी रीति मे देखा है। डा० सुशील-कुमार ने दोनो मे वैषम्य प्राप्त किया।[4] डा० नगेन्द्र का कथन है कि भारतीय रीति मे व्यक्ति की पूर्ण अवहेलना तो नही हुई है किन्तु पाश्चात्य शैली के समान इसमे व्यक्तित्व का इतना समावेश भी नही किया गया है। अंग्रेजी मे शैली ही व्यक्तित्व है, कहा जाता है। "मिडल्टन मरे" व जे० एम० ग्रीन ने इस तथ्य पर गहनता से विचार किया है।[5] आई० ए० रिचर्डस् ने भी कवि की मनोभूमिका का सूक्ष्म विवेचन किया है।

अंग्रेजी के स्टाइल और डिक्सन को हिन्दी मे रीति का पर्याय भी मान लिया जाता है किन्तु यह अधिक उपयुक्त नही है क्योंकि जिस प्रकार बूचर और वाय वाटर मे अरस्तू के अनुवाद के समय कहा था कि अरस्तू के और आधुनिक अंग्रेजी

१—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ४७१।
२—वही पृष्ठ ४७४, ४८६।
३—भारतीय साहित्य शास्त्र–द्वितीय खड पृष्ठ २३९।
४—हिस्ट्री औफ सस्कृत पोइटिक्स–द्वितीय भाग पृष्ठ ११६।
५—प्रिन्सीपलस् आफ लिटरेरी क्रिटिशिज्म् पृष्ठ १३६।

के शब्दों और अर्थो मे अन्तर है। इसी के हेतु कुछ लोग अरस्तु के विवेचन मे प्रयुक्त शब्दो को "त्रासदी" और कामदी के उपयुक्त पर्याय नही मानते है, इसी भाँति हिन्दी मे भी इन अनुवादो से शिक्षा लेकर डिक्शन और स्टाइल को शैलीका पर्याय नहीमाना जाना चाहिए। जिस प्रकार से आज अंग्रेजी के फैडेरेशन एसोसियेसन चेम्बर और ओर्गनाइजेसन को सघ ही कहा जाता है किन्तु-वे अंग्रेजीमे अपना भिन्न अर्थ रखतेहै। इसी प्रकार सस्कृत के वर्त्म मार्ग, पन्था, वृत्ति और रीति आदि के समानार्थी शब्द अंग्रेजी मे नही मिलते है। अतएन इन्हे अंग्रेजी मे अनुचित शब्दो के अनुकूल नही मानना चाहिए। इसी भाँति गुणो का विवेचन भी करते समय जागरुकता का परिचय देना चाहिये।

गुण विवेचन अंग्रेजी परिपार्श्व में

गुणो के विवेचन को आधुनिक मनोविज्ञान और तर्क सिद्धान्तो की कसौटी पर कसने वालो मे डा० श्याम सुन्दर दास व आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डा० नगेन्द्र के नाम उल्लेखनीय है। रीति का विवेचन करते हुए डा० नगेन्द्र का कथन है—

"मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखे तो रस और गुण दोनो ही मन स्थितिया है।"[1] इसके विवेचन के समय आलोचक अंग्रेजी के उदाहरण भी लेते है और यह भी अनुभव किया जाता है कि रीति गुण विवेचन मे कवि मानस की व्याख्या का अभाव था।[2] इसी भाँति डा० गुलावराय ने रीति गुणवाद की पाश्चात्य शैलीसे समता प्रदर्शित की है। उन्होने शैली को अंग्रेजी स्टाइल के समान रागात्मिक, बौद्धिक, कल्पनात्मक और भावात्मक भेदो मे बाटा है। इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय शास्त्रीय सम्प्रदाय अंग्रेजी आलोचना और मनोविज्ञान के प्रकाश मे देखे जाते है।

आज तो यह स्वीकार किया जाता है कि अंग्रेजी चिन्तन का प्रभाव भारतीय साहित्य पर दिखायी देता है।[3] कही-कही तो यह स्पष्ट मान लिया जाता

१—भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका पृष्ठ ६४।

२—करुणापति त्रिपाठी—शैली पृष्ठ ८८, ९१।

३—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित—रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ ३५७, ९७। डा० हरीकृष्ण पुरोहित—आधुनिक हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव।

है ।[1] अतएव मार्क्सवादी, टेनप्रवृतित ऐतिहासिक और अन्य आलोचना पद्धतियाँ सामने आयी । हीगेल मार्क्स, ऐन्जल्म, अडलर, यू ग, फ्राइट और क्रिस्टफर कौडवैल, आई० ए० रिचर्डस और टी० एच० इलियेट के नाम से बहुधा लिए जाते हैं । मार्क्स के सदर्भ मे उसके द्वन्तो के महता खेते हुए यह स्वीकार किया जाता है कि परिवर्तन विकास का पर्यायवाची है । अ ग्रेजी मे मार्क्स के सिद्धान्तो की सुस्पष्ट व्याख्या क्रिस्ट-फर कोडवेल ने की । अतएव हिन्दी मे भी उनकी पुस्तक इल्लूजन एन्ड रियाल्टी महता प्राप्त करने लगी ।

मार्क्सवादी आलोचनाएें —

अग्रेजी के माध्यम से गोर्की के लाइफ एन्ड लिट्रेचर, टीफरेल रेल्फोक्स तथा जोअफ फ्रीमन ने हिन्दी मे मार्क्सवादी आलोचना की आवश्यकता सामग्री प्रदान की ।[2] सिद्धान्त शिवदान सिंह चौहान की पुस्तक प्रगतीवाद पर आलोच्य सिद्धान्तो का प्रभाव दिखायी देता है । इसकी बहुत कुछ सामग्री कोडवेल और फेरल से प्राप्त की गई है । इसी भाँति विजय शकरमल कृत हिन्दी काव्य मे प्रगतीवाद पर भी इलयूजन एन्ड रियालिटी का प्रभाव दिखायी देता है । डा० राम विलास शर्मा ने प्रगती और परम्परा मे मार्क्सवादी आलोचना की विवेचना की है । साथ ही इन्होने मनोविश्लेषण के आधार पर साहित्य को शुद्ध रखने का आदेश भी दिया है । वे तो कहते है कि मार्क्सवादी आलोचना और मनोविश्लेषण प्रणाली एक दूसरे के सर्वथा विपरीत है । वे मनोविश्लेषण प्रणाली को अवैज्ञानिक घोषित करते है । इसी भाँति इलाचन्द्र जोशी ने भी मनोवैज्ञानिक पद्धती को हेय घोषित किया है । प्रेमचन्दजी के कुछ विचार मे और उनके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद मे गोर्की के लिट्रेचर एन्ड लाइफ का प्रभाव दिखायी देता है । इलाचन्द्र जोशी ने साहित्य सर्जना मे, डा० धर्मवीर भारती ने प्रगतीवाद के विवेचन मे तथा डा० नगेन्द्र ने प्रगतीवादी हिन्दी साहित्य[3] मे इस आलोचना को मुखरित किया है । इस शैली के बारे मे डा० रवीन्द्रनाथ सहाय

१—डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव ।

२—विचार और अनुभूति—डा० नगेन्द्र ।

३—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ १३६ ।

ने कहा है कि इसके द्वारा हमे एक नवीन दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है।[१] इस प्रकार हिन्दी आलोचको ने अंग्रेजी के माध्यम से एक नया दृष्टिकोण अवश्य ही प्राप्त किया है। इस प्रणाली के आलोचको को न तो ऊहात्मक उक्तियाँ और चमत्कार उपयुक्त प्रतीत होते है और न कोमलकान्त पदावली ही।[२] श्री अमृतराय ने तो उक्त बातो का स्पष्ट विरोध किया है।[3] कई आलोचको ने इसे सप्रदाय विशेष से सम्बद्ध माना है। पन्त, दिनकर निराला और महादेवी विचार स्वातन्त्र के समर्थक रहे है।

हिन्दी मे डा० राम विलास शर्मा, श्री अमृतराय और श्री शिवदान सिंह को मार्क्सवादी आलोचक कहा जा सकता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि अन्धानुकरण को तो यह भी अनुपयुक्त मानते है। हमारा मन्धव्य इनकी तुलसी दास की निष्पक्ष आलोचना पढने पर स्पष्ट हो जाता है। हमे तो यही बताने है कि अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी आलोचना ने इन सिद्धान्तो और इस शैली को ग्रहण किया है। फिर भी यह भी मानना होगा कि मार्क्सवादी आलोचको का अंग्रेजी के ही माध्यम से आये हुए मनोविश्लेषणवाद का विरोध किया है। इस प्रकार हम देखते है कि अंग्रेजी साहित्य मे प्राप्य विरोधी भावनाये हिन्दी मे भी स्थान प्राप्त करने लगी।

कई विदेशी लेखक हिन्दी मे आत्मसात कर लिये गये और कई हिन्दी लेखक अंग्रेजी की भाषा मे अपने आपको अभिव्यक्ति करने लगे। कही कही साधारणीकरण को सामूहिक भाव मे श्रेष्ठतर बताया गया है तो कही प्रभावानुभूति को फलागम से श्रेष्ठ बताया गया। इस प्रकार आलोचको का एक वर्ग पाश्चात्य साहित्य की दुहायी देता है तो दूसरा वर्ग सस्कृत काव्यशास्त्रकारो की कही कही सामनजष्य के बीज दिखायी देते हैं यत्र तत्र व्यक्तिगत प्रभाव और बालटर पीटर के कला कला के लिये वाले सिद्धान्त, टेन के ऐतिहासिक सिद्धान्त और क्रोचे के अभिव्यञ्जनावाद आदि के निरूपण भी प्राप्त होते है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है भूमिका के रूप मे अपने मत की पुष्टिकरणा स्वच्छदतावादी अंग्रेजी आलोचको से ही प्राप्त हो जाता है किन्तु आधुनिक युग मे घोषणा पत्रो के रूप मे भी अपनी धारणाओ का विवेचन किया जाता है। इसका प्रारम्भ पाश्चात्य जगत से अति यथार्थवाद के

१—डा० रामविलास शर्मा—हस प्रगती अ ग पृष्ठ ३६३।

२—नयी समीक्षा पृष्ठ ५

३—सन् १६२४।

प्रवर्तक आध्रब्रेदन तथा अन्य दो घोषणा पत्रो मे प्रकाशित हुए।[१] इसी भाँति हिन्दी मे भी घोषणा पत्र लिखे गये।

पुस्तकों की भूमिकायें —

उन्होने अपना मन्तव्य प्रकट किया। अग्रेजी के उदाहरण द्वारा अपने मत की पुष्टि की गई। कई बार अग्रेजी के उद्धरण पाद टिप्पणियो मे दिये गये।[२] वहाँ पुराने वादो को हेय सिद्ध करने के प्रयत्न किये गये। प्रयोग की आकाक्षा पर अग्रेजी के एक्सपेरिमेन्टलिसम का सीधा प्रभाव दिखायी देने लगा। तार सत्पको की भूमिकाये विभिन्न कवियो और आलोचको पर अग्रेजी प्रभाव स्पष्ट करती हैं। उदाहरण के लिये अज्ञय यह लिखते है--विशेष ज्ञानो के इस युग में भाषा एक रहते हुए भी उसके मुहावरे अनेक हो जाते है ······ आलोचना मे नया क्रम होता है[३] इस कथन पर आई० ए० रिचेर्डस के इस कथन की छाया दिखायी देती है। वी कनोट एक्स्पेक्ट नोवल कार्डस वेन प्लेयिंग सो एडीशनल ये गेम। अज्ञय ने मौलिकता के प्रसग मे इलियेट का विश्लेषण भी किया है। जिससे ज्ञात होता है कि उन्होने उसका अध्ययन किया है। इसी भाँति उन पर इलियेट की उक्तियो का प्रभाव भी दिखायी देता है अज्ञय ने नवीनता की चाह द्वारा अग्रेजी प्रभाव को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है। उन्होने अग्रेजी से आई हुई मनोवैज्ञानिक पद्धति को भी अपनाया है। नई कविता के समर्थक नवीनता के समर्थक हैं। वे नवीन काव्य अपनाने के इच्छुक है। डा० जगदीश गुप्त के नई कविता मे रस और भौतिकता शीर्षक निबन्ध पर इलियेट की नयी कविता के विवेचन की गहरी छाया दिखायी देती है। उदाहरण के लिये इलियेट ने जिस प्रकार विज्ञान और कला मे अन्तर बताया है तथा बहुतिकता का आग्रह दिखाया है वैसा ही मत प्रतिपादन इन्होने किया है। यह कोडवेल के समान कला की उत्पत्ति वैसे ही मानते है जैसे सीप से मोती। डा० जगदीश गुप्त का यह कहना कि कला हमे सोचने को मजबूर करती है अग्रेजी आलोचना के मेरुदण्ड

१—सन् १९३०।

२—तार सप्तक पृष्ठ ५१।

३—दूसरा तार सप्तक की भूमिका पृष्ठ १० एवं त्रिशंकू पृष्ठ ७।

के प्रभाव से हिन्दी आलोचना को वहाँ एक और नई शक्ति और दिशा मिली है वही आलोचको के मस्तिष्क पर प्रभाव का पूरा आन्तक जमा दिया है।[1] यही नही कही कही तो हिन्दी के लेखक अनायास ही अ ग्रेजी आलोचक को याद कर बैठता है। उदाहरण के लिये डा० रवीन्द्र सहाय लिखते है ·····महावीर प्रसाद द्विवेदी को देखकर अनायास ही डा० जोहन्सन की याद आ जाती है। इसी भाँति हिन्दी आलोचको की परिस्थितियो की तुलनाएं अ ग्रेजी आलोचको से की जाती है।[2] डा० वेकिट शर्मा ने भी पन्त का विवेचन करते हुए भी लिरिकल वैलेट्स का नाम ले लिया है।[3] इस प्रकार व्यक्तियो विचारो और परिस्थितियो मे अ ग्रेजी आलोचना से साम्य अनुभव करना अ ग्रेजी आलोचना के प्रभाव का परिणाम है।

कई बार अ ग्रेजी के वाक्यो और सिद्धान्तो को हिन्दी मे ज्यो का त्यो अपना लिया जाता है। डा० सेन्टसबरी ने कहा था कि आलोचना का कर्तव्य श्रेष्ठतर भावो को प्रचारित करना है।[4] इसी की छाया मे डा० खत्री लिखते हैं साहित्य का मुख्य लक्ष्य साहित्य को प्रेम पूर्वक हृदयगम करके श्रेष्ठातिश्रेष्ठ विचारो तथा भावो का अविरल प्रसार करना है[5] इसी भाँति इनका यह कथन कि समकालीन लेखको का मूल्याकन दुष्कर होता है ए० सी० वार्ड की धारणा से प्रभावित है। इसी प्रकार कई आलोचको के सिद्धान्त अ ग्रेजी आलोचको से प्रभावित प्रतीत होते हैं। उनके वर्गीकरण पर भी अ ग्रेजी का प्रभाव दिखायी देता है।

कला का वर्गीकरण —

ललित कलाओ और उपयोगी कलाओ का विभाजन अ ग्रेजी के अनुकूल दिखायी देता है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कलाओ के इन भेदो पर समीची ने प्रकाश डाला है। डा० एस० पी० खत्री ने भी ललित और उपयोगी कलाओ का भेद

१—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ११।
२—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ ५२।
३—आधुनिक हिन्दी में समालोचना का विकास पृष्ठ ३४१-४८।
४—डा० सेन्ट्सबरी। हिस्ट्री औफ इंगलिश क्रिटिसेसम-कनक्लूशन।
५—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ २५७।

किया है।[1] डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा ने भी इस भेद को मान्यता प्रदान की।[2] प्रसादजी इस भेद के विरूद्ध थे। हिन्दी मे पाश्चात्य आलोचना के समर्थको द्वारा आलोचको विरागयुक्त माना गया है।[3] सभवत. इस विचार धारा पर अंग्रेजी के इन-डिफरेन्स का प्रभाव रहा है। मनोवैज्ञानिक आलोचना प्रणाली भी हिन्दी मे अंग्रेजी के प्रभाव से ही उत्पन्न और विकसित हुई है। इसका सर्वप्रथम जागरूक प्रयोग एडिसेन ने १८ वी शताब्दी मे अपने निबन्धो मे किया। उसका प्रेरणा श्रोत लोक का एन० एसे० ओन० ह्यूमन अन्डरस्टेन्टिग था। आडीसन के द्वारा अपनाया गया कल्पना तत्व भी हिन्दी मे स्थान ग्रहण करने लगा। इसका अंग्रेजी मे विभिन्न प्रयोगो के अनुकुल वर्गीकरण भी किया गया। डा० एस० पी० खत्री ने उस वर्गीकरण को और सभवत वेकिग ओफ लिटरेचर की धारणाओ को मिलाकर कल्पना का विवेचन किया।[4]

अंग्रेजी के परिभाषाये हिन्दी मे अपना ली गई और साहित्य को जीवन की व्याख्या माना जाने लगा। इसी भाँति कला कला के लिये कला जीवन के लिये कला जीवन से पलाइम के लिये, कला जीवन मे प्रवेश के लिये और अन्य ऐसे ही वाक्य हिन्दी मे अंग्रेजी के माध्यम से आये। यह कहना कि साहित्य के एक या दो भागो को ही अवतारित किया जा सकता है। अंग्रेजी की परिभाषा—स्लैस ओफ लाइफ का प्रभाव है : सरस साहित्य और अन्य प्रकार का साहित्य हिन्दी वालो पर डी कन सो के प्रभाव का परिचायक है डा० खत्री ने इस बात का भी उल्लेख किया कि आलोचना का अधिकारी कौन है ? उनके उक्त विवेचन पर बन जोन्सन की डिसकरीज और स्केटजैम्स के विवेचन का प्रभाव है। इसी भाँति इलाचन्द्र जोशी ने कला कला के लिये सिद्धान्तो को अपना कर अंग्रेजी का प्रभाव का परिचय दिया है। बहुदा लेखक अंग्रेजी विचरो को ज्यो का त्यो रख देते है। कही कही इन विचारो की गन्ध बडी तीव्र हो जाती है।[5]

१—डा० एस० पी० खत्री—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ २७०
२—रवीन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव ४७।
३—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ३०५ एव मार्क्स एन्जिलस सेक्टेड करसपोन्टन्स।
४—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ४१७
५—वही पृष्ठ ४१८, ४२०, ४२३ से ४४०।

अंग्रेजी के अनुवादः—

प्रभावः

डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने 'गासी दी तासी' का अनुवाद हिन्दी मे किया है, जिससे साहित्य मे उक्त ग्रन्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव हो सकेगा। इसी भाँति किशोरीलाल गुप्त ने ग्रियर्सन के साहित्य का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। फिर भी इस सम्बन्ध मे कार्य होना अवशेष है। रिचार्डस् और स्कोट जेम्स के अनुवाद होने चाहिये। डा० नगेन्द्र ने इस दृष्टि से साहनीय काय किया है अनुवादो के साथ भाषा विज्ञान पर भी दृष्टि पात करना उचित ही होगा।

भाषा वैज्ञानिक.—

इस दृष्टि से ग्रियरसन और पाश्चात्य विद्वानो को अगुआ कहा जा सकता है। निर्देशन के पश्चात्य तो भारतीय विद्वानो ने तो अपने ढग से कार्य किया है। डा० सुनीति कुमार, डा० धीरेन्द्र वर्मा व डा० उदय नारायण तिवारी प्रभृति के नाम उल्लेखनीय है। इसमे विभिन्न साहित्यक सस्थाओ ने सहयोग दिया है।

आकाश वाणी —

आकाश वाणी और साहित्यिक संस्थाएँ:

अग्रेजी मे बी० बी० सी० जैसे शेक्सपीयर और आदि की आलोचनाएं प्रसारित की जाती हैं, वैसे ही हिन्दी मे भी तुलसी और सूर आदि की आलोचनाएं प्रसारित की जाती है। यहाँ पुस्तको की आलोचनाएं भी की जाती है। इस दृष्टि से डा० सरनाम सिंह जी द्वारा जयपुर रेडियो से प्रसारित पुस्तको की आलोचनाएं सारगर्भित है।

विदेशो की विभिन्न सस्थाओ के समान हमारे यहाँ भी साहित्यिक संस्थाएं कार्य कर रही है। वहाँ से प्रचारित आलोचना साहित्य हमारी बहुत बडी क्षतिपूर्ति करता है। फिर भी कई सस्थाएँ सरकार से साहयता लेने के लिये अथवा निजि स्वार्थ के लिये ही स्थापित कर ली जाती हैं, यह अवश्य ही निन्दनीय है। ऐसी कई सस्थाओ मे जितना रुपया लगता है और जितने व्यय से आलोचनात्मक पत्रिकाये

प्रकाशित होती है उतने से कम व्यय मे अधिक स्थायित्व की पुस्तके प्रकाशित की जा सकती है। प्रयाग और दिल्ली प्रभृति, विश्व विद्यालयो की साहित्यिक सस्थाये आलोचनात्मक साहित्य के प्रसार मे अभिनन्दनीय कार्य कर रही है। जोधपुर स्थित प्राच्य शोध सस्थान भी पुस्तकालय और अपनी पत्रिका के द्वारा शोधार्थियो और साहित्य जिज्ञासुओ को अपूर्व सहयोग दे रही है। ऐसी सस्थाओ को पक्षपात और राजनीति से बचाना चाहिये। आधुनिक युग मे अंग्रेजी प्रभाव भ दृष्टिगोचर होता है कि पुस्तको के अन्त मे जहा लेखको के नाम दिये जाते है वहाँ उन्हे अग्रेजी ढग से से रखा जाता है। यथा अग्रेजी मे टी० लस० इलियट को इलियट टी० एस० रूप मे रखा जाना है अतएव हिन्दी मे भी दास श्याम सुन्दर और प्रसाद जय शकर रखा जाने लगा है। [1]

अग्रेजी के ही समान हिन्दी मे भी आलोचनात्मक और रचनात्मक ग्रन्थो का प्रणयन होता है। अग्रेजी के ओक्सफोर्ड कम्पेनियन के जैसा ग्रन्थ हिन्दी साहित्य कोष नाम से आया। उसके प्रणयन का उद्देश्य ओक्सकोर्ड कम्पेनियन जैसा अधिकार पूर्ण ग्रन्थ हिन्दी को प्रदान करना था [2]

अ लोचना की परिभाषा मे भी अग्रेजी के तत्वो को अपना लिना जाता है। उदाहरण के लिये जब यह कहा जाता है कि आलोचना का जो वास्तविक और आधुनिकतम अर्थ विश्लेषण, विवेचन और निगमन है जिनमे आलोचना की तटस्थता का तत्व भी अन्तर्भूत है ......। [3] इस प्रकार आलोचना मे पाश्चात्य शैलियो का समावेश किया जाता है।

अग्रेजी आलोचना के प्रभाव से समाज शास्त्रीय आलोचना का भी उदय हुआ।

१—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर इसका प्रभाव—पृष्ठ १८६।

२—डा० देवराज उपाध्याय जबकि वे इस ग्रन्थ के कतिपय अंशो का प्रणयन कर रहे थे तब उन्होंने कहा था कि हिन्दी की क्षतिपूर्ति का यह एक प्रयास है और ग्रन्थ को ओक्सफोर्ड कम्पेनियन जैसा अधिकार पूर्ण बनाने की योजना है।

—ख—देखिये हिन्दी साहित्य कोष की भूमिका।

३—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—पृष्ठ ३३२।

समाज शास्त्रीय आलोचना.—

अंग्रेजी प्रभाव के कारण अब समीक्षक का कार्य आलोच्य कृति का विश्लेषण माना जाता है। अर्थात् यह बताने का प्रयत्न करे कि साहित्यकार जीवन के (जिसमें बाह्य परिवेश एव आतरिक प्रति क्रिया दोनो का समावेश है) किस पहलू का उद्घाटन करने बैठा है। और उस पहलू के उद्घाटन का साहित्यकार को युग के लिये क्या महत्व है।[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की मनोवैज्ञानिक और उसकी बाह्य परिस्थितियो का विवेचन आवश्यक माना गया है। यह अंग्रेजी प्रभाव का परिणाम है। अन्यथा सस्कृति काव्यशास्त्र के अनुकूल तो विभिन्न गुण दोषो और सम्प्रदायो आदि के अनुकूल विवेचना कर दी जाती थी। युग सापेक्ष मूल्याकन की भावना अंग्रेजी साहित्य के अनुकूल है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अंग्रेजी साहित्य ने हिन्दी आलोचना को बहुत अशो तक प्रभावित किया है। आधुनिक वाद, विभिन्न शैलिया, अनेक प्रकार की आलोचनात्मक उक्तिया, पुस्तको की भूमिकाये, अंग्रेजी से अनुदित ग्रन्थ, मनोवैज्ञानिक विवेचना, अंग्रेजी के माध्यम से अन्य पाश्चात्य भाषाओ का परिचय, कलाओ और काव्य का विवेचन, आलोचना की परिभाषा, आलोचक के गुण, आलोचको के नाम लिखने की प्रणाली और अंग्रेजी के जैसे ग्रन्थो के प्रणयन की आकाक्षाएं हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। यहाँ यह कहना भी सामयिक ही होगा कि अंग्रेजी के नवीनता के आग्रह को सस्कृत की पृष्ठ भूमि पर देश काला अनुसार अपना कर हिन्दी आलोचको ने सामंन्जस्य और समन्वय का मौलिक प्रयास किया है।

१—डा० देवराज द्वारा सम्पादित हिन्दी आलोचना की अर्वाचीन प्रवृतिया—भूमिका।

'ख' भाग

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल —

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सच्चे अर्थो मे आचार्य थे।[1] इन्होने भारतीय सिद्धान्तो के साथ अ ग्रेजी के कलावाद सौन्दर्य शास्त्र और प्रतीकवाद, प्रभाववाद एव अभिव्यजनावाद का भी उल्लेख किया है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का अभिमत है कि शुक्ल जी से पूर्व शास्त्रीय आधार होते हुए भी पुरातन रस सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक दीप्ति प्राप्त नही हो सकी थी।[2] आचार्य शुक्ल ने साहित्य इस क्षति पूर्ति का सफल प्रयास किया है। साथ ही उन्होने अपनी आलोचना के साथ सामाजिक सम्पर्क का आव्हान किया है।[3] उन्होने काव्य जगत मे प्रचलित भ्रान्तियो के निराकरण का प्रयत्न किया।[4]

संस्कृत के परिपार्श्व में —

उन्होने रहस्यवादियो की अज्ञात को प्राप्त करने की लालसा को अनुपयुक्त सिद्ध किया। वे भारतीयता के समर्थक थे और उन्होने अ ग्रेजी की अन्धी नकल कर ब्रह्मवादी बनने वालो पर कटुव्यग प्रहार भी किया।[5] [6] उन्होने रहस्यवादियो मे भावो की सच्चाई का अभाव और व्यजना की कृत्रिमता के अतिरिक्त और कुछ भी

१—डा० गुलाब राय और विजयेन्द्र स्नातक– आलोचक रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ २५।
२—पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी–आचार्य शुक्ल का काव्यालोचन पृष्ठ ५९।
३—वही पृष्ठ ६१।
४—चिन्तामणी दूसरा भाग पृष्ठ ४६।
५—वही पृष्ठ ७३।
६—वही पृष्ठ ८१।

नही देखा ।[1] रहस्यवाद को उन्होने अ ग्रेजो के आने पर उत्पन्न साम्प्रदायिक वस्तु के रूप मे देखा ।[2]

महाकाव्य और मुक्तक की परिभाषायें. —

शुक्लजी ने महाकाव्य की परिभाषा रम सिद्धान्त के अनुकूल देने हुए उसमे जीवन का पूर्ण दृश्य चित्रण माना है। उनके इस परिभाषा पर ध्वनियाँ लोककार आनन्द वर्धन की छाया दिखाई देती है। आनन्द वर्धन ने कथा का प्राकथन, प्रवाह एव विन्यास सब कुछ रस को दृष्टि मे रखकर ही किया है। मुक्तक की परिभाषा देते समय भी शुक्लजी का ध्यान रस पर रहा होगा। वे कहते है—"मुक्तक मे प्रबन्ध काव्य के समान रस की धारा नही रहती, जिसमे कथा प्रसग की परिस्थिति मे अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय मे स्थाई भाव ग्रहण करता है। इसमे तो रस के छीटे पडते है जिनमे हृदय कलिका थोडी देर के लिए खिल उठती है।[3] यहा यह उल्लेखनीय है कि इन शब्दो मे शुक्ल जी का रस सिद्धान्त के प्रति आदरभाव दिखाई देता हैं। वे मुक्तको को, जो आधुनिक युग मे अग्रेजी की देन है उन्हे महाकाव्य जितना आदर नहीं देते हैं। कविता की परिभाषा मे भी साधारणी-करण की गन्ध आती है। हृदय की मुक्ताअवस्था के लिए की गई साधना को कविता कहते है।[4] कला की व्याख्या भी इन्होने सस्कृत के अनुकूल की और काव्य को कला के अन्तर्गत नही रखा। हीगेल के अनुसार अपनाई जाने वाली काव्य और कला सम्बन्धी प्रणाली का शुक्ल जी ने वहिष्कार किया। इन्होने काव्य को कला से भिन्न माना।[5] आचार्य ने क्रौचे के अभिव्यजनावाद को भारतीय वक्रोक्तिवाद से निम्न-स्तर का घोषित किया। इसके भी मूल मे इनका रस सम्बन्धी सिद्धान्त ही था।

रस और चमत्कार —

यह रसवादी आचार्य है। अतएव मनोरजन ही काव्य का उद्देश्य न मान

१—चिन्तामणी दूसरा भाग–पृष्ठ १२२।

२—वही–पृष्ठ १२५।

३—आचार्य रामचन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २९८, २९९।

४—रस मीमांसा–पृष्ठ ५।

५—चिन्तामणी पृष्ठ १७७, १७८।

कर सहृदय को सहानुभूति मे तल्लीन कर देना काव्य का लक्ष्य मानते है । इन्होने कहा है–काव्य विधायिनी कल्पना वही कही जा सकती है जो या तो किसी भाव द्वारा प्रेरित हो अथवा भाव का प्रवर्तन या सचार करती हो । सब प्रकार की कल्पना काव्य की प्रक्रिया नही कही जा सकती । अत काव्य मे अनुभूति अ ग है, मूर्त रूप अ ग प्रधान है, कल्पना उसकी सहयोगिनी है ।[1] शुक्लजी केवल चमत्कार को काव्य नही मानते । उनका मत है कि वचन की जो वक्रता भाव प्रेरित होती है वही काव्यहै ।[2] इस प्रकार रस और काव्य की व्याख्या भारतीय सिद्धान्तो के अनुकूल है । उन्होने साधारणीकरण की मान्यता को स्वीकार किया है । वे उसकी दो अवस्थाये मानते है —पर रस की एक नीची अवस्था और है जिसका हमारे यहाँ के साहित्य ग्रन्थो मे विवेचन नही हुआ है । इससे प्रतीत होता है कि इनकी धारणाये सस्कृत शास्त्रकारो के पारिपार्श्व मे दीक्षित हुई है । इनके प्रतिपादन की शैली और उन तथ्यो मे मौलिकता का वैज्ञानिक योग इनकी अपनी देन है । शुक्लजी का रस मीमाँसा ग्रन्थ यह प्रतिपादित करता है कि वे रस के समर्थक थे और वे काव्य सिद्धान्तो के विवेचन विश्लेषण को उसी कसौटी पर कसना चाहते थे । रस मीमाँसा की परिशिष्ठ से यह ज्ञात होता है कि शुक्लजी उसे बहुत ही व्यापक रूप देना चाहते थे । इनके काव्य की परिभाषा पर भी सस्कृत का प्रभाव दिखाई देता है ।

काव्य:—

काव्य की परिभाषा देते हुए इन्होने सस्कृत के विभिन्न उदाहरण दिये हैं ।[3] कही रामायण, कही मेघदूत और कही अन्य सस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थो से । उन्होने काव्य मे हृदय को स्पष्ट करने की शक्ति पर बल दिया जाता है । यह रस सिद्धान्त के अनुकूल है । यह कहते है ··· ···"हमारे यहा भी व्यजक वाक्य ही काव्य माना जाता है । ·······वक्रोक्तिवादी कहेगे कि ऐसी उक्ति जिसमे कुछ वैचित्र्य या चमत्कार हो, व्यजना चाहे जिसकी हो, या किसी ठीक ठीक बात की न भी हो । पर जैसा कि हम कह चुके है कि मनोरजन मात्र काव्य का उद्देश्य मानने वाले उनकी इस बात का समर्थन करने मे असमर्थ होगे ।[4]

१—इन्दौर वाला भाषण पृष्ठ ३३ ।
२—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ७० ।
३—रस मीमासा पृठ ६, ८१, १००, १०१ और १३६ ।
४—वही पृष्ठ ३३ ।

काव्य और अलकार·—

शुक्लजी काव्य मे रस को महत्व देते है और अलकार को सर्वस्व कहने वाले चन्द्रालोककार से असहमत होते है। वे रूय्यक और कुन्तक से भी असहमत होते है। उनकी मान्यता है······जिस प्रकार एक कुरूप स्त्री अलकार लादकर सुन्दर नही हो सकती, उसी प्रकार वस्तु या तथ्य की रमणीयता के अभाव मे अलकारो का ढेर काव्य सजीव स्वरूप खडा नही कर सकता। [१]

इन्होने अश्लीलता का बहिष्कार किया और शृङ्गार के रजन पक्ष दाम्पत्य भाव को साहित्य के लिये उपयुक्त माना। इसी हेतु ये पाश्चात्य विचार वाली और उपदेशात्मक काव्य को अनुपयुक्त घोषित करते है। साथ ही इन्होने केवल बधी-बधाई परिपाटी के अनुकूल विभाव आदि के वर्णन कर देने से रस निष्पति की कामना को अनुपयुक्त माना है। इन्होने ध्वनि और शक्तियो का भी सूक्ष्म विवेचन किया है तथा तात्पर्य वृत्ति को महत्ता प्रदान की है। [२] ये युग के अनुकूल अग्रेजी साहित्य से भी परिचित थे। उसकी ओर इन्होने जागरूकता का परिचय दिया था।

अंग्रेजी के परिपार्श्व में·—

साहित्य की व्याख्या करते हुए शुक्लजी लिखते है कि साहित्य के अन्तर्गत वह सारा वागमय लिया जा सकता है जिसमे अर्थ बोध के अतिरिक्त भावोन्मेष अथवा चमत्कार पूर्ण अनुरजन हो तथा जिसमे ऐसे विचारात्मक वागमय की समीक्षा या व्याख्या हो [३] इस पर डिकन्सी के साहित्य के विभाजन की छाया दिखायी देती है। इसी भाँति इन्होने जो काव्य के दो विभाजन किये है आनन्द की साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्य और आनन्द की सिद्धावस्था को लेकर चलने वाले काव्य मूल रूप से डिकन्सी से प्रभावित होते हुए डण्टन की पोर्ट्री एण्ड दी रिनेन्सैस ओफ

१—रस मीमाँसा पृष्ठ ४२, ४३।

२—वही पृष्ठ ७५, ३०१–३४०।

३—चिन्तामणी द्वितीय भाग पृष्ठ १५६।

वन्डर के अत्यन्त समीप है। इनके साहित्य शीर्षक निबन्ध का आधार कार्डीनल न्यूमन का आइडिया ओफ ए यूनिवर्सिटी प्रतीत होता है।[१] भाव और उनके वर्गीकरण मे इन्होने अंग्रेजी के मनोविज्ञान से सहायता ली है।[२] अग्रेजी आलोचना के सम्पर्क से उत्पन्न और विकसित विश्लेषणात्मक आलोचना शैली को ये श्रेष्ठ मानते थे।[३] इसी कारण इन्होने प्रभावाभिव्यजक शैली को उपयुक्त बताया था। यहाँ यह कहना उपयुक्त ही होगा कि विश्लेषणात्मक शैली मे ही सहयोगी पद्धतियो के रूप मे उन्होने ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, निर्णयात्मक पद्धतियो का उपयोग किया ……इसके ही अवातर भेद माने। इस प्रकार इनकी आलोचना शैली की सज्ञा हुई सर्वागीण शैली। शुक्लजी ने व्याख्यात्मक प्रणाली को स्पष्ट कर उसे अपनाने के महत्व पर बल दिया। इन्होने स्वय अपने इतिहास ग्रन्थ मे व्याख्यात्मक शैली का अनुसरण किया और मलिक मुहम्मद जायसी के अध्ययन मे इसी शैली को अपनाया। वे हिन्दी लेखको और रचनाओ की तुलना अग्रेजी लेखको और अग्रेजी कृतियो से करते चलते हैं। रचयिता की आन्तरिक स्थिति के आधार पर काव्य समीक्षण के सूत्र पात्र का श्रेय शुक्लजी को दिया जाता है।[४] आचार्य ने कला कला के लिये वाले सिद्धान्त का स्थान-स्थान पर खण्डन किया है। इन्होने एडीशन द्वारा अपनाये गये कल्पना तत्व को भी आलोचना का विषय बनाया है।[५] आपने साधारणीकरण और केथारसिस पर भी प्रकाश डाला है। आई० ए० रिचर्ड्स के समान ये सौन्दर्यात्मक अनुभूति और जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध मानते है।

अभिव्यजनावाद और वक्रोक्तिवाद की तुलना करते हुए इन्होने क्रोचे के अभिव्यजनावाद को रस सिद्धात से हेय घोषित किया है। वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो अभिव्यजनावाद से क्रोचे का तात्पर्य था इम्प्रेशन, सप्रेशन एण्ड सजेशन फोर एक्सप्रेशन। अतएव इसे अभिव्यजना मात्र मान लेना उपयुक्त प्रतीत नही होता है। इन्होने छायावाद को भी अनुपयुक्त समझा था। छायावाद मे इन्हे उपयुक्त गाम्भीर्य

१—डा० विश्वनाथ मिश्र—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ३४९।
२—चिन्तामणी—पृष्ठ १९२, १९३।
३—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ५८८।
४—आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी—हिन्दी साहित्य २० वीं शताब्दी पृष्ठ ६१।
५—चिन्तामणी भाग २ पृष्ठ २१९ और इन्दौर वाला भाषण पृठ २०।

का अभाव खटकता रहा था। फिर भी जहा कही इन्हे उसमे हृदय को स्पर्श करने की शक्ति दिखाई दी वहाँ उसका भी स्वागत किया। [१] इसके मूल मे इनकी नैतिकता भी दिखाई देती है। ये ब्रेडले आदि कला वादियो और प्रभाव वादियो से असहमत हुये है। शुक्लजी ने रस सिद्धात की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है जिसकी प्रेरणा सम्भवतः आई० ए० रिचर्ड्स से मिली होगी। ये प्रारम्भ से ही अग्रेजी की ओर आकृष्ट हुए थे। इन्होने कई अग्रजी निबन्धो और ग्रन्थो के अनुवाद किये यथा एडीसन के ऐसे ओन दा इमेजीनेशन का अनुवाद किया। इसी भाँति माईनर हिन्ट्स का अनुवाद राज्य प्रबन्ध शिक्षा नाम से किया। इन्होने कई मनोवैज्ञानिक पुस्तको का अध्ययन किया और स्वय ने अग्रेजी मे लेखादि भी लिखे। [२] इन्होने काव्य के भाषा की विवेचना करते हुए अग्रेजी आलोचको और कवियो के उदाहरण प्रस्तुत किये है [३] इन्होने भावो का विवेचन करते हुए बीज भाव का उल्लेख किया है। जो मनोवैज्ञानिक मोटिफ के अनुकूल दिखाई देता है [४] इन्होने भावो का विस्तृत विवेचन कर मनोवैज्ञानिक भावो के रूप मे उनकी व्याख्या भी की है। इनका सन्चारियो का विवेचन सैण्ड के अनुकूल बन पड़ा है रस विरोध की चर्चा करते समय इन्होने शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक प्रकाश डाला है [5] रस और रस परिपाक की व्याख्या करते समय अभिव्यजनावाद, जार्जकालीन प्रवृत्ति, मूर्ति मततावाद, समवेदनावाद और नवीन मर्यादावाद का विवेचन किया है। यह विवेचन सक्षेप मे किन्तु इतना स्पष्ट बन पडा है कि शुक्लजी का इन पर प्रत्यक्ष अधिकार दिखाई देता है।

इन्होने उपरिकथित पाश्चात्य बादो को निस्सार घोषित किया है। रस मीमासा को पढकर हर व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल लेता है कि शुक्लजी का अग्रेजी का ज्ञान स्तुत्य और अधिकार पूर्ण है।

१—रस मीमांसा पृष्ठ ३२७।
२—हिन्दुस्तान रिव्यु में लिखा हुआ लेख वाट इण्डिया हेज टू डू।
३—रस मीमांसा पृष्ट ३७५।
४—वही पृष्ठ ५२ से ८०।
५—वहीं पृष्ठ २०५ से २१०।

निष्कर्ष —

इन्होने भारतीय परम्परा को अपनाते हुऐ भी उसका अन्धानुकरण नही किया और अंग्रेजी मान्यताओ का केवल उल्लेख ही नही किया अपितु उसकी सागोपाग व्याख्या भी की। हिन्दी समीक्षा क्षेत्र मे तो वे अपनी मौलिकता तथा रस ग्राहिता के कारण एक नये युग के जन्मदाता कहे जाते है। इनका हिन्दी साहित्य का इतिहास हमारे कथन की पुष्टि करता है।

'हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक —डा० ग्रियर्सन एव आचार्य रामचन्द्र शुक्ल"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के वक्तव्य मे डा० ग्रियर्सन के 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर' को कविवृत सग्रह नाम से अभिहित किया है।[1] उन्होने "मिश्र बन्धु विनोद" को भी वैसा ही सग्रह बनाया किन्तु जहाँ उन्होने उसके आभार को प्रकट किया।[2] और काल के विभाजन मे इससे असहमत होने का उल्लेख भी किया।[3] वहाँ वे डा० ग्रियर्सन की रचना की ओर सकेत मात्र करके ही रह गये है। समीप से देखने पर शुक्लजी के इतिहास पर ग्रियर्सन की उक्त रचना की गहरी छाया दिखाई देती है। इसका यह तात्पर्य नही कि शुक्लजी ने ग्रियर्सन से ही सामग्री ली अथवा शुक्लजी के इतिहास मे मौलिकता का अभाव है, किन्तु मंतव्य केवल यही है कि शुक्लजी के इतिहास पर ग्रियर्सन के इतिहास की छाया अवश्य है निम्नाकित विवेचन इसे स्पष्ट कर देगा।[4]

काल विभाजन मे शुक्लजी ने ग्रियर्सन के रीतिकालीन नाम को अगीकार किया है। प्रेम मार्गी शाखा नाम भी ग्रियर्सन के 'रोनेंटिक' शब्द का छायानुवाद प्रतीत होती है। ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रियर्सन एव शुक्लजी—दोनो ने ही, रोमटिक का शाब्दिक अर्थ ग्रहण किया है न कि रुढिगत साहित्यिक अर्थ (साहित्यिक दृष्टि से रोमेंटिक शब्द स्वच्छदता का द्योतन करना है।)

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १।

२—वही पृष्ठ ३।

३—वही पृष्ठ ७।

४—शुक्लजी पर ही नही अन्य आलोचकों पर भी ग्रियर्सन के इतिहास की छाया परिलक्षित होती है।

ग्रियर्सन ने अपने अध्यायो के अन्त मे परिशिष्ट नाम से इस काल के अन्य कवियो, मुख्य अध्याय मे उल्लेखित कवियो के अतिरिक्त अन्य कम प्रख्यात कवियो, का विवेचन किया है। ग्रियर्सन के इतिहास के अध्याय २, ३, ४ एव ८ आदि के परिशिष्ट इस कथन को पुष्टि करते हैं शुक्लजी ने भी कई प्रकरणो के अन्त मे फुटकाय रचनायें और रीति काल के अन्य कवि आदि मे वैसा ही वर्णन प्रस्तुत किया है। यही क्यो प्रकरणो के प्रारम्भ मे श्री ग्रियर्सन ने युग की सामान्य प्रवृतियो का सक्षिप्त विवरण दिया है, जो शुक्लजी के इतिहास के "सामान्य परिचय" का पूर्व प्रतीत होता है।[1,2] इतिहास लेखन पद्धति के अतिरिक्त शुक्लजी की कतिपय धारणाओं पर भी ग्रियर्सन का निम्नाकित प्रभाव भी पाया जाता है।

ग्रियर्सन ने भक्ति काल मे कृष्ण और राम भक्ति सम्बन्धी धारणाओ का उल्लेख किया है।[3] "पद्मावत के रचना काल से हिन्दुस्तान का साहित्य दो धाराओ मे जम कर स्थित हो गया। ·· ··· पहले ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पद्धति चलाई और दूसरे ने कृष्ण भक्ति के रूप मे साहित्य सृजन किया।" शुक्लजी ने भी भक्ति काल मे राम भक्ति और कृष्ण भक्ति शाखाओ का उल्लेख किया है। यहाँ ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रियर्सन के बीज शुक्लजी के इतिहास मे पूर्ण रूप से विकसित रूप धारण कर लेते हैं।

शुक्लजी ने अपने इतिहास मे तुलसीदास को अत्यधिक महत्ता प्रदान की है। उनसे पूर्व ग्रियर्सन तुलसी की महानता स्वीकार कर चुके थे। उनका मत था कि,[4]

"भारतीय लोग इनको (सूर को) कीर्ति के सर्वोच्च गवाक्ष मे स्थान देते हैं पर मेरा विश्वास है कि यूरोपीय पाठक आगरे के अन्धे कवि की अत्यधिक माधुरी की अपेक्षा तुलसीदास के उदार चरित्रो को अधिक पसन्द करेगा।[5]" इसी प्रकार से जायसी के बारे मे भी ग्रियर्सन के मत का प्रौढ रूप शुक्लजी के इतिहास मे दिखाई

१—रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास बारहवाँ संस्करण, पृष्ठ १८१, २०४, ५० एव ५५।

२—वही रीति कालीन विवेचन पृष्ठ ३०० से ३६९।

३—ग्रियर्सन कृत इतिहास अध्याय ३, ४ एव ६।

४—हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—अनुवादक किशोरीलाल गुप्त पृष्ठ ६९।

५—वही पृष्ठ १०७।

देता है। उदाहरणार्थ, शुक्लजी ने पद्मावत का का सपादन किया और जायसी को समझने-समझाने का प्रयास किया। इसके लिये ग्रियर्सन के निम्नाकित शब्द प्रेरणा स्रोत कहे जा सकते है —

"यह (पद्मावत) निश्चय ही अध्यवसाय पूर्ण अध्ययन करने योग्य है, क्योंकि साधारण विद्वान् को इसकी एक भी पक्ति स्पष्ट नही हो सकती है, इसके लिये जितना भी परिश्रम किया जाय, इसकी मौलिकता और काव्यगत सौन्दर्य दोनो की दृष्टि से वह उचित ही है। [1]

उपरकथित प्रभावो के अतिरिक्त निम्नाकित परोक्ष एव निषेधात्मक प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यथा, ग्रियर्सन ने रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय आचार्य केशव को देते हुए कहा है कि,

"इस युग (रीति काव्य युग) के अत्यन्त प्रसिद्ध कवि जिनका विवरण पहले नही आया है, केशवदास, चिंतामणि त्रिपाठी और बिहारीलाल है। केशव और चिन्तामणि काव्य शास्त्र लिखने वाले उस कवि सम्प्रदाय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिनिधि है, जिसकी स्थापना केशव ने की और जो काव्य लता के शास्त्रीय पक्ष का ही निरन्तर विवेचन करता है। [2]

शुक्लजी का अभिमत है कि,

"रस निरूपण और अलकार निरूपण का इस प्रकार सूत्रपात हो जाने पर केशवदासजी ने काव्य के अगो का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। इसमे सन्देह नही कि काव्य रीति का सम्यक समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया। ...... पर केशव के उपरात तत्काल रीति ग्रन्थो की परम्परा चली नही...... हिन्दी रीति ग्रन्थो की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली, अत: रीति काल का आरम्भ उन्ही से माना जाना चाहिये।" [3]

१—किशोरीलाल गुप्त–हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास पृष्ठ ९३।

२—वही पृष्ठ १६३।

३—रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास १२ वाँ संस्करण पृ. २१५, वही पृष्ठ २१६।

उपर्युक्त कारणो से यह स्पष्टत: विदित होता है शुक्लजी जब रेखाङ्कित वाक्य लिख रहे थे तब वे उन विद्वानो की उक्तियो का खण्डन कर रहे थे, जिन्होने केशव को रीति काल का प्रवर्तक माना है। अतएव वे ग्रियर्सन की धारणा का भी खण्डन कर रहे थे, अत: शुक्लजी की इस खण्डन प्रणाली के मूल मे ग्रियर्सन की धारणा निषेधात्मक रूप से कार्य कर रही थी।

निष्कर्ष —

अन्त मे निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि शुक्लजी के "सामान्य परिचय" पर, फुटकल कवियो के विवेचन पर, भक्तिकालीन धाराओ के विभाजन पर और तुलसी और जायसी के प्रवर्तन की व्याख्या पर, कुछ सीमा तक काल विभाजन पर और रीतिकाल के प्रवर्तन की व्याख्या पर ग्रियर्सन की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। साथ ही यह भी सकेत अप्रासगिक न होगा कि आधुनिक काल का दिग्दर्शन, कई कवियो की विस्तृत और मौलिक आलोचना गद्य विवेचन और ग्रियर्सन की भ्रान्तियो का निराकरण शुक्लजी की मौलिकता को प्रकट करते हैं। यही यही ग्रियर्सन का इतिहास तो शुक्लजी के इतिहास के आधे से भी कम है, अतएव ग्रियर्सन के इतिहास मे शुक्लजी की सी व्याख्या अभाव का स्वत सिद्ध है। फिर भी ऐतिहासिक आलोचना की दृष्टि से ग्रियर्सन का ग्रन्थ महत्वपूर्ण है एव उपर्युक्त अशो मे शुक्लजी के इतिहास पर उसका प्रभाव परिलक्षित होता है।

बाबू गुलाब राय:—

आचार्य शुक्ल के समान बाबू गुलाब राय भी हिन्दी के महान् स्तम्भ हैं। इनके सिद्धान्त और अध्ययन और अध्ययन और आस्वाद आदि सस्कृत और अंग्रेजी दोनो ही समीक्षा सिद्धान्तो के ज्ञान को प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिये सिद्धान्त और अध्ययन मे इन्होने रीति, गुण और बृति की व्याख्या शैली के अन्तर्गत की है। इन्होने भरत, दण्डी, वामन, कुन्तक और मम्मट आदि सभी आचार्यो के मत उधृत किये हैं। यह भी उल्लेखनीय हैं कि इन्होंने पाश्चात्य आलोचको की मान्यताओ का विवेचन कर अपनी धारणाये भी प्रतिपादित की है। इन्होने मम्मट के प्रतिकूल भरत प्रतिपादित दस गुणो को महत्ता दी है। ये स्थान स्थान पर सस्कृत और अंग्रेजी शास्त्र वेताओ के मत उधृत करते रहते हैं। ये रस निष्पति के भारतीय सिद्धान्त के

समर्थक रहे है । [१] अ ग्रेजी आलोचको के समान इन्होने काव्य को ललित कलाओ के अन्तर्गत स्थान दिया है । इन्होने रस को शास्त्रीय दृष्टि से देखते हुए उसकी मनो-वैज्ञानिक व्याख्या भी की । [२] एडीसन और कौलरिज के समान गुलाब राय ने कल्पना तत्व के सम्बन्ध मे कहा हैं—कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अप्रत्यक्ष के मानसिक चित्र उपस्थित करते है । [3] इस कथन पर एसोसियेशनिष्ट मनोवैज्ञानिक विचारो का प्रभाव दिखाई देता है । कौलरिज के समान ये काव्य सर्जन की शक्ति के रूप मे कल्पना को स्वीकार करते हैं । इस प्रकार हम देखते है कि इन्होंने सस्कृत और अ ग्रेजी दोनो के ही परिपार्श्व मे हिन्दी आलोचना को आगे बढाने का प्रयत्न किया है ।

श्रद्धेय डा० राम शंकरजी शुक्ल "रसाल".--

आधुनिक युग मे सस्कृत काव्य शास्त्र के अधिकारी और अ ग्रेजी आलोचना सिद्धान्तो के मर्मज्ञ ज्ञाताओ मे डा० राम शकर शुक्ल "रसाल" का महत्व पूर्ण स्थान है । इन्होने प्राचीन काव्य शास्त्र वेत्ताओ–दण्डी, वामन, रुद्रट, रुय्यक, विश्वनाथ और कुन्तक प्रभृति विद्वानो की मान्यताओ का विस्तृत विवेचन कर अपनी मौलिक उद्भावनाए प्रकट की हैं । यही क्यो आपने हिन्दी के आचार्यो की मान्यताओं का भी स्पष्टीकरण किया और उपलब्ध अलकारो को नवीन वर्गीकरण प्रदान किया । अलकार पीयूष पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध मे अलकारो पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है । अलकार शास्त्र का इतिहास, विश्लेषणात्मक और निर्णयात्मक शैली मे प्रस्तुत किया गया है । इसमे हिन्दी के विभिन्न युगो की अलकार विषयक धारणाओं पर मौलिक रूप से विचार किया गया है । अतएव डा० भगवत स्वरूप का निष्कर्ष उपयुक्त ही है कि रसाल जी का अलकार पीयूष अलंकार निरूपण का सर्वांगिण इतिहास प्रस्तुत करता है । शैली की दृष्टि से यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य को एक नवीन

१—सिद्धान्त और अध्ययन–पृष्ठ ५४ एवं रहस्यवाद और हिन्दी कविता पृष्ठ १ ।

२—सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ ३६ ।

३—सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ ६७, १३८,–१५३ ।

और अनुपम देन है । [1] इन्होने आधुनिक युग मे सस्कृत शास्त्रो के आधार पर अलकारो का विवेचन किया और कहा कि वैज्ञानिक दृष्टि से भी उनकी विवेचना की है ।

श्रद्धेय पडित रसालजी ने शास्त्र सम्मत शब्दालकार, अर्थालकार और उभयालंकार को स्थान देते हुए अपनी मौलिकता प्रतिभा से मिश्रालकार एक अन्य भिन्न वर्ग का प्रतिपादन किया है । इसमे केवल अर्थालकारो को ही स्थान दिया गया है और इनकी मान्यता है कि मिश्रालकार वहाँ होता है जहाँ विभिन्न अर्थालंकारो के प्रयोग से एक नूतन प्रभाव की सृष्टि होती है । इन्होने उभयालकार और मिश्रालकार के भेद का वैज्ञानिक विवेचन किया है । [2]

परमादरणीय डा० साहब ने हिन्दी मे सर्व प्रथम मौलिक और पाडित्य पूर्ण रूप से काव्यालकार विषय शास्त्र है या कला ? पर प्रकाश डालते हुए मौलिक और महत्वपूर्ण ढग से यह प्रतिपादित किया कि काव्यालकार का विषय एक प्रकार का शास्त्र है और साथ ही विशिष्ट कला भी । [3] इसी भाँति आपने अन्य शास्त्रो से इसके सम्बन्ध को स्थापित करने का श्लाध्य प्रयत्न किया है । [4] आपने अलकार शब्द की परिभाषा, व्याकरण और काव्यशास्त्रीय दोनो ही दृष्टियो से दी है । इनकी उत्पत्ति और इनके विकास पर भी स्तुत्य प्रकाश डाला है । [5] इसमे आपने हिन्दी आचार्यो का और उनके मतो का विवेचन कर ग्रन्थ को सर्वांगीण बनाने का सफल प्रयत्न किया है । [6] गद्य मे अलकारो का स्थान भी आपकी दृष्टि स ओझल नही हो पाया है । इसी भाँति आलोचनादर्श मे आपने आलोचना कला का मार्मिक शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है । इसमे आलोचना के अर्थ, उसकी वैज्ञानिक व्याख्या और उसके ऐतिहासिक विकास की सम्यक विवेचना की गई है। हिन्दी साहित्य मे आलोचना, आलोचना के अग उसके रूप और उसका निरीक्षण भी विवेचन के विषय रहे हैं । वहाँ आपने मौलिक निष्कर्ष प्रदान करते हुए कहा है—इसी के साथ प्रत्येक आलोचक और पाठक

१—डा० भगवत स्वरूप मिश्र-हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ ५६४ ।
२—अलंकार पीयूष (पूर्वार्द्ध) पृष्ठ १६३ ।
३—वही पृष्ठ २ ।
४—वही पृष्ठ १५ ।
५—वही पृष्ठ २०—३० ।
६—वही पृष्ठ ३३—३४ ।

को यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि जिस प्रकार उसने अपनी सुरुचि आदि को सुशिक्षित शिष्ट और विकसित बनाया है, उसी प्रकार उसमे वह सर्वथा ऐसा प्रभावित न रहे कि केवल उसी के आधार पर वस्तुओ और रचनाओ को देखा दिखाया और समझा समझाया करे, उसी के आधार पर वह निर्णय भी किया करे। [१]

आपने छन्द शास्त्र मे छन्द शास्त्र के ऐतिहासिक विकास और उसके नियमो तथा उदाहरणो का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमे छन्द सम्बन्धी ज्ञान अपनी पूर्णता पर दिखाई देता है।

निष्कर्ष.—

अतएव निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि श्रद्धेय डा० रसाल साहब के सिद्धान्तो मे मौलिक प्रतिभा, प्रखर पाडित्य और वैज्ञानिक विश्लेषण का प्राचुर्य है। मिश्रालकार आपकी वैज्ञानिक आलोचना पद्धति के प्रयोग का परिणाम दिखाई देता है। इनके जैसा अलकारो, छन्दो और आलोचना का सूक्ष्म, सफल, उपयोगी, तर्क पर आधारित, वैज्ञानिक और अधिकार पूर्ण विवेचन अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है। आपने इस दिशा मे सराहनीय कार्य किया है। इनके अलकार विवेचना की प्रशंसा करते हुये डा० धीरेन्द्र वर्मा ने कहा है—इट इज ए वैरी वैल्युएबल कन्ट्री-ब्युशन टू दी सब्जेक्ट ओफ काव्यालकार शास्त्र··· । [२] डा० गङ्गा नाथजी झा ने भी अपने अलकार विवेचन को योग्यता पूर्ण और मौलिक कहा है। [३] पण्डितवर रसाल जी ने हिन्दी साहित्य का इतिहास, छन्द शास्त्र और हिन्दी शब्द कोष आदि विभिन्न ग्रन्थो से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु—

डा० सुधाशु जी की आलोचना शैली प्रौढ और प्रखर है। आप पश्चिम के वादो के हिन्दी के प्रचलन पर क्षोभ प्रकट करतेहै। ये कहते है कि पश्चिमी साहित्य

१—आलोचनादर्श पृष्ठ २७३।
२—अलंकार पीयूष-पूर्वार्द्ध पृष्ठ १
३—वही पृष्ठ २

मे जो विधाएँ उत्पन्न होकर म्रियमाण हो जाती हैं वे भारतीय साहित्य मे नये युग की पुकार के नाम से सामने आती है। पश्चिमी साहित्य मे जिस विधा की शव परीक्षा होने लगती है वह भारत मे प्रसव वेदन उत्पन्न करती है। यह एक सत्य है पर मै इसे मानने के लिये किसी को बाध्य नही कर सकता।[1] इन्होने सस्कृत के शृ गारिक विवेचन का समर्थन किया है और उसे आधुनिक कवियो के अश्लील चित्रण से अच्छा बताया है। वे कहते हैं कि सस्कृत साहित्य मे शृ गार है पर कही भी कवि उसमे भाग नही लेता है। वह पाठक को दृश्य मात्र दिखाता है और स्वय उस दृश्य मे नही रगता है। वह इन नये कवियो मे तो रति वासना को ही सब कुछ मानने का आग्रह दिखाई देता है।[2]

इस प्रकार सुधाशु जी पर सस्कृत के ज्ञान का प्रभाव दिखाई देता है। इनकी संस्कृत के कवियो के प्रति धवल भावना भी प्रकट हो जाती है। इन्होने वक्रोक्तिवाद और अभिव्यजनावाद को भी आलोचना का विषय बनाया। वहाँ क्रौचे की काव्य विषय धारणाओ का स्पष्टीकरण किया गया। यह अग्रेजी भाषा के माध्यम से ही हुआ है। इन्होने क्रौचे के अलकार और अलकार्य के भेद को अनुपयुक्त माना है।[3] मैथ्युआरनल्ड के समान काव्य को जीवन की व्याख्या मानते हैं।

इन्होने भारतीय सिद्धान्तो के साथ अग्रेजी सिद्धान्तो के समन्वय का प्रयत्न किया है। किन्तु इसकी बिशेषता यह है कि जो विचार धारा सस्कृत शास्त्राकारो के अनुकूल नही है उसे वे हेय मानते है। उनके उदाहरणो और दृष्टान्तों द्वारा विषय की दुरूहता दूर हो जाती है। सुधाशु जी के समान पण्डित विश्वनाथ मिश्र भी हिन्दी के प्रमुख समर्थक हैं।

पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—

पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अधिकाँशत: आधुनिक युग और अग्रेजी से दूर ही रहने का प्रयत्न किया है। इन्होने मध्य कालीन कवियो पर सुन्दर प्रकाश डाला है। इनकी आलोचना मे सस्कृत के नियमो का आधिक्य दिखाई देता है।

१—डा० राम शकर तिवारी कृत प्रयोगवादी काव्य धारा की सुधांशुजी लिखित भूमिका पृष्ट ८

२—वही पृष्ठ १०।

३—काव्य में अभिव्यजनावाद पृष्ठ ८६।

आपने केशव ग्रन्थावली तथा लाला भगवान दीन कृत अलकार मजूषा आदि ग्रन्थो का सम्पादन किया है। बिहारी की वाग्विभूति इनकी भारतीय आलोचना के आधार पर की गई प्रयोगात्मक आलोचना का उदाहरण है।[1] मिश्रजी ने गीतावली, कवितावली और सुदामा चरित्र इत्यादि की टीकाएं भी प्रस्तुत की हैं। वागमय विमर्श मे इन्होने भारतीय शास्त्रीय ज्ञान का यथा साध्य सुन्दर उपयोग किया है। अग्रेजी प्रभाव के स्वरूप जो इन पर समकालीन लेखको के माध्यम से आया है पुस्तको की भूमिकाये भी लिखी है। इसी भाँति आलोचना मे इतिहास को महत्व देना अग्रेजी की ऐतिहासिक आलोचना का प्रभाव है। जो युग प्रभाव के रूप मे इनके द्वारा अपनाया गया है। इन्होने भारतीयता का समर्थन किया है और युग प्रभाव के रूप मे अग्रेजी की विशेषताओ को भी ग्रहण किया है।[2] पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के समान पण्डित राम कृष्ण शुक्ल शिलीमुख की रचनाओ मे भी सस्कृत प्रभाव दिखाई देता है।

पण्डित राम कृष्ण शुक्ल शिली मुख:—

पण्डितजी की आलोचना मे प्रयोगात्मक और सैद्धान्तिक आलोचना का समन्वय प्राप्त होता है। वे सस्कृत के सिद्धान्तो को आधार बनाकर आलोचना किया करते थे यथा वे काव्य की सद्य पर निवृति और सद्यो निवृत्ति नामक दो भागो मे विभाजन करते हैं।[3] इन्होने निर्णयात्मक आलोचना प्रदान करते हुये निर्देश किया है। इनकी प्रेम चन्दजी की आलोचना इसका उदाहरण है।[4] काया कल्प की आलोचना करते समय इन्होने पौर्वात्य और पाश्चात्य काव्य शास्त्रीय नियमो के सामञ्जस्य का प्रयत्न किया है।[5] इन्होने प्रेमचन्द जी की कहानियो पर पाश्चात्य प्रभाव बताने का सफल प्रयास किया है।[6,7] इन्होने साहित्य शास्त्र निबन्ध मे शास्त्रीय दृष्टिकोण के

१—चतुर्थ सस्करण।
२—वागमय विमर्श उपकरण पृठ १।
३—सरस्वती पत्रिका भाग ३१ सख्या ४, ४ शिलीमुख पृष्ठ ४७।
५—वही पृष्ठ ७६।
६—सुधा वर्ष एक, खण्ड एक, सख्या तीन।
७—सुधा वर्ष तीन, खण्ड एक, सख्या चार।

साथ पाश्चात्य ज्ञान का भी उपयोग किया है। अरस्तु के समान ये नाटय को अनुकरण मानते हैं और भारतीय दृष्टि से उसके वस्तु नेता और रस नामक तत्व भी स्वीकार करते हैं। [1] प्रसादजी के बारे मे प्रसादात्त शब्द भी इनकी ही देन है।

अतएव निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इनमे सस्कृत आलोचको के समान निर्णय देने की प्रवृति है। उन्होने संस्कृत के शास्त्रीय तत्वो को आदर के साथ अपनाया है और पाश्चात्य ज्ञान का भी समुचित उपयोग किया है। ये अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के ज्ञान के उपयोग के विरोधी नही थे। किन्तु उसके भारतीयकरण को वाचनीय समझते थे। जैसे प्रेमचन्द जी उसका (इटरनल सीटी का) आधार लेकर भी देश कालीन सस्कृतियो के अनुसार उन्हे नही ढाल सके और उनकी कृति (विश्वाम कहानी) कई अंशो मे दोष पूर्ण रही है। [2] हिन्दी के शास्त्रीय समीक्षको मे डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का नाम उल्लेखनीय है।

डाक्टर जगन्नाथ प्रसाद शर्मा —

डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन शास्त्रीय समीक्षा पद्धति के अनुकूल प्रस्तुत किया है। साथ ही आपने अंग्रेजी के नाट्य तत्वो और खोज पूर्ण तथ्यो से भी हमारे ज्ञान की श्रीवृद्धि की है। कई नाटको का भारतीय दृष्टि से और अंग्रेजी दृष्टि से विवेचन हमारे कथन की पुष्टि करता है। अतएव आप एक सफल आलोचक है जो अंग्रेजी ज्ञान का उपयोग हमारे साहित्य की श्रीवृद्धि के लिये करते हैं। इसी भाँति पदमलाल पुन्नालाल बक्शी भी हिन्दी के प्रबल समर्थक रहे हैं।

पदमलाल पुन्नालाल बक्शी:—

विश्व साहित्य मे इन्होंने अंग्रेजी ज्ञान का समुचित प्रयोग किया है। इन्होने आलोचना मे अधिकाशत: मधुप वृति का परिचय दिया है। सरस्वती के सम्पादन से आपने साहित्य की श्री वृद्धि की है। ये भारतीय सिद्धान्तों को आधार मानकर पाश्चात्य विचारो को ग्रहण करते हैं। प्रबन्ध पारिजात, हिन्दी कथा साहित्य, कुछ

१—प्रसाद की नाट्य कला, निवेदन और पृष्ठ ५, १५, २२,।
२—शिलीमुखी पृष्ठ ६१।

और कुछ, प्रदीप और साहित्य शिक्षा प्रवृति उदाहरण स्वरूप देखे जा सकते है। आधुनिक युग मे सस्कृत और अ ग्रेजी काव्य शास्त्र के सम्यक ज्ञान रखने वालो मे डा० सरनाम सिह् जी शर्मा का स्थान बहुत ऊँचा है।

डा० सरनाम सिंह जी शर्मा.—

आधुनिक युग मे संस्कृत काव्य शास्त्र और अ ग्रेजी आलोचना सिद्धान्तो का सम्यक ज्ञान डा० सरनाम सिह् जी शर्मा विरचित समीक्षा ग्रन्थो से प्राप्त हो सकता है। आपने अपने शोध प्रबन्ध मे हिन्दी पर सस्कृत के प्रभाव को आकने का सफल प्रयास किया है। आपका महात्मा कबीर आलोचना शैली का सुन्दर ग्रन्थ है। इसमे आपने कबीर की दार्शनिकता को सरल और स्तुत्य स्वरूप मे प्रस्तुत किया है। उक्त पुस्तक मे विश्लेषणात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, तुलनात्मक, ऐतिहासिक और साथ ही निर्णयात्मक शैलियों का श्लाघनीय समन्वय किया गया है। आपकी प्रतिभा चतुरमुखी है। एक ओर आपने पालीभाषा पर लेखनी चलाई तो दूसरी ओर राजस्थान के साहित्यकारो पर भी प्रकाश डाला है। आपने हिन्दी साहित्य को विभिन्न आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रदान किये हैं। इनके नाटकों की भूमिकाओ से नाटको की विधाओ पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। अपने आलोचना ग्रन्थो मे इन्होने भारतीय आधार पर अ ग्रेजी के आलोचना सिद्धान्तो का परीक्षण कर देशकालानुसार उचित और सम्यक पाश्चात्य सिद्धान्तो को स्वीकार किया है। आपके ग्रन्थो मे पौर्वात्य पद्धति के अपनाने का पूर्वाग्रह है और न अ ग्रेजो शैली के निर्वाह का दुराग्रह ही। आप तो सच्चे आलोचक की नीरक्षीर प्रतिमा से पम्पन्न तटस्थ समीक्षक है। यह तथ्य और भी उल्लेखनीय है कि इन्होने आलोचना के साथ सरस साहित्य-नाटक, एकाकी, कहानी, कविता, उपन्यास और गद्य गीतो द्वारा साहित्य की श्री वृद्धि की है। अतएव इन्हे आलोचना करने का अधिकार भी है। क्योकि आप भारतीय दृष्टि से पडित होने के नाते रस को पहिचानने के अधिकारी है और अ ग्रेजी आलोचक ड्रायडन के अनुसार सरस साहित्य स्रष्टा होने के नाते प्रतिभावान भावक और समीक्षक बनने के योग्य है।

डा० नगेन्द्रः—

डा० नगेन्द्र के बारे मे सर्व विदित ही है कि ये रस सिद्धान्त के पोषक हैं।[1] और मनोविज्ञान के प्रकाड पडित। आपने रस सिद्धान्त का समर्थन मनो वैज्ञानिक

१—पदमसिह् कमलेश, मैं इनसे मिला—डा० नगेन्द्र पृष्ठ १५०।

दृष्टि से किया है—किसी रूढी या अन्त विश्वास के आधार पर नहीं। अतएव यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आपने काव्य शास्त्र को एक दृढ विती प्रदान की है। इनका कथन है कि विदेश के काव्यशास्त्र मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण शास्त्र के अध्ययन और ग्रहण मे मेरी दृष्टि को और भी स्थित कर दिया है। मै काव्य मे रस सिद्धान्त को ही अन्तिम मानता हूँ इसके बाहर न काव्य की गती है और न सारथकता।[1] ये रस सिद्धात की ओर शुक्लजी के प्रभाव के कारण मुडे और भटनायक तथा अभिनव गुप्त ने इन्हे प्रभावित किया। इस प्रकार विदित हो जाता है कि ये सस्कृत काव्यशास्त्र को महता देते हैं और अ ग्रेजी की मनोविश्लेपण वादी प्रवृति को भी अपनाते हैं।

इन्होने जहाँ अ ग्रेजी ग्रन्थो के अनुवाद किये वहाँ सस्कृत ग्रन्थो और शास्त्रो का भी आपने कुशल सम्पादन किया। इन ग्र थो को हिन्दी अनुसधान परिषद द्वारा प्रकाशित भी करवाया। हिन्दी काव्यालकार सूत्र, हिन्दी वक्रोक्ति जीवित, अग्निप्राण का काव्यशास्त्रीय अध्ययन आदि उदाहरण स्वरूप पढे जा सकते हैं। इनके विचार और अनुभूति विचार और विवेचन और विचार और विश्लेपण नामक समीक्षा ग्रन्थो मे सैद्धातिक और प्रयोगात्मक आलोचना का सुन्दर समन्वय हुआ है।

इनकी मान्यता है कि भारत तथा पश्चिम की दर्शनो की तरह ही यहाँ के काव्यशास्त्र भी एक दूसरे के पूरक हैं।[2] रीतिकाव्य की भूमिका मे आपने सात रसो को स्थायी भावो से सम्बन्धित किया है। इन्होने वीर के अन्तर्गत आत्म प्रतिष्ठा, परिग्रश, निर्माण को तथा करुण रस के आधीन आर्थ प्रार्थना और सामाजिकता के सम्बन्धित माना है। इस प्रकार इन्होने रसो को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। साहित्य की प्रेरणा मे इन्होने अरस्तु, हीगेल और क्रौचे के मतो को उघृत किया है। अन्यत्र इन्होने अपनी मान्यता प्रकट की है कि ......विचार के क्षेत्र मे भौतिक बौद्धिक मूल्यो की अधिक विश्वसनीय तथा रोचक ढग से स्थापना की गई और जीवन तथा साहित्य के पुनर्मूल्याकन मे सहायता मिली। इस प्रकार प्राइड की प्रगति की परम्परा को भी आगे बढ़ाया, साहित्यकार के व्यक्तित्व तथा साहित्य की

१—पद्म सिंह कमलेश, मैं इनसे मिला—डा० नगेन्द्र पृष्ठ १५१

२—हिन्दी काव्यालंकार सूत्र-वक्तव्य।

प्रवृतियो के विश्लेषण तथा व्याख्या के लिये नया मार्ग खुल गया [१] ।...............
इन्होने फ्रायड के समान सौन्दर्य प्रेम को कामवृति से सम्बन्धित बताया है । इस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये काव्य का परीक्षण करने वाले प्रमुख आचार्य है । इन्होने सामूहिक भाव को काव्य की मूल प्रेरणा मानने का निषेध किया है । ये शब्दो और सिद्धातो की शास्त्रीय दृष्टि से भी व्याख्या करते हैं । अनुसधान शब्द और उसके सिद्धातो के विवेचन हमारे कथन की पुष्टि करते है । [२] साधारणी करण को भी ये मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न करते है । ये कहते है कि साधारणी करण अपनी अनुभूति का होता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभी के हृदय मे सहानुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दो मे हम कह सकते है कि उसमे साधारणी करण की शक्ति विद्यमान है । इन्हने टी० एस० इलियेट, आई० ए० रिचेर्डस, डा० सेन्सबरी और अन्य पाश्चात्य विचारको और विवेचको के बारे मे भी अपने मत प्रस्तुत किये है । वक्रोक्ति काव्य जीवित मे लोसायी क्रूटिकी की, प्रिन्सपल ओफ लिटररी क्रिटिसिज्म और अन्य कई मनोवैज्ञानिको के मतो को उद्रित किया है । [३] इन्होने वक्रोक्ति काव्य जीवित और हिन्दी अलकार सूत्र मे भारतीय काव्यशास्त्र और अ ग्रेजी काव्यशास्त्र का प्रौढ ज्ञान प्रस्तुत किया है । [४]

इनका अलकारो का विवेचन भारतीय और पाश्चात्य दोनो ही दृष्टियो से अवलोकनीय है । इन्होने सस्कृत काव्यशास्त्राकारो के समान वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति को अलकारो के मूल मे माना है किन्तु इस निष्कर्ष का कारण आधुनिक मनोविज्ञान है । ये कहते है सस्कृत मे मूलत: अनेक अलकारो का स्वरूप ही सर्वथा अस्पष्ट है । पाश्चात्य आचार्यों ने कल्पना को भी अलकारो का आधार माना है । प्रस्तुत कल्पना के आश्रित तो सभी अलकार है ही । इन्होने अलंकारो के मनोवैज्ञानिक

१—प्रसारिका वर्ष १ अंक ३ पृष्ठ १३ ।

२—अनुसंधान की प्रक्रिया पृष्ठ ४५ ।

३—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित पृष्ठ ३० से ४७ ।

४—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित और हिन्दी काव्यालकार सूत्र भूमिका ।

आधार ढूडने का प्रयास किया है । [1] शैली के विवेचन मे भी इन्होने समन्वय स्थापित कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय लिया है । इन्होने उसे सस्कृत शास्त्र काव्य की दृष्टि से कसौटी पर कस कर मनोवैज्ञानिक आधार दिया है । [2] इनका कथन है कि रीति की परिभाषा विशिष्ट पद रचना रीति सर्व मान्य रही है और यह वामन के अनुकूल है । इसे अन्य आलोचको ने भी स्वीकार किया है । [3]

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिस प्रकार से आई० ए० रिचर्डस अग्रेजी मे समर्थ आलोचक हैं वैसे ही हिन्दी मे डा० नगेन्द्र हैं । इन्होने रस, अलकार, गुण, दोष और विवेचन आदि मनोवैज्ञानिक तत्वो का सन्यवेश किया है । इन्होने छायावाद की भी मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है । [4] पन्तजी और प्रगतिवाद की आलोचनाएँ करते समय भी इन्होने अपनी मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत की है । इनकी विशेषता यह रही है कि दुरूह और क्लिष्ट विषय की भी ये स्पष्ट, तर्कसगत और बुद्धिग्राह्य आलोचना करने में सफल होते हैं । [5] काव्यशास्त्रीय तत्वो और पाश्चात्य समीक्षा सिद्धातों का इनमे सम्मिलन दिखायी पडता है और फलत. इनके विवेचन मे मौलिक और सन्तुलिक दृष्टि का विकास हुआ है । इनके समान हिन्दी साहित्य की सुवृद्धि करने वाले मौलिक विवेचक हैं आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी.—

वाजपेयी स्वतन्त्रतावादी आलोचना शैली के प्रबल समर्थक और हिन्दी साहित्य के महान स्तंभ हैं । ये आलोचक को तटस्थ रूप मे देखने के इच्छुक हैं और साहित्यिक दलबन्दी विरोधी है । हिन्दी साहित्य २० वी शताब्दी की विवेचना करते हुए इन्होने विभिन्न साहित्यक परम्पराओ और वादो का मौलिक विवेचन किया है । पाश्चात्य विचारक भी इनकी दृष्टि से ओझल नही हो पाये हैं । ये कहते हैं मेरा आगमन हिन्दी के छायावादी कवियो के विवेचक के रूप मे हुआ । [6] ये अंग्रेजी लेखको के मत भी

१—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ९३, ९४ ।
२—भारतीय काव्यशास्त्र भूमिका पृष्ठ ५०, ४० ।
३—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ४२६ ।
४—विचार और अनुभूति पृष्ठ ५४, ५५ ।
५—विचार और विवेचन पृष्ठ २० ।
६—नया साहित्य नये प्रश्न निष्कर्ष पृष्ठ २ ।

उधृत करते है। आपकी इण्डक्टिव शैली प्रौढ और प्रशसनीय है। इन्होने सस्कृत की रूढिवादिता को छोड रखा है और अ ग्रेजी के नवीनता के दुराग्रह को भी आप दूर रखते है। संस्कृत साहित्य की पृष्ठ भूमि को अपनाते हैं और अ ग्रेजी के उपयुक्त आलोचना सिद्धातो को ग्राहय मानते है। एक ओर इन्हे भारतीय रस सिद्धात मे आस्था है तो दूसरी ओर ये अ ग्रेजी काव्य शास्त्रो के प्रति भी सवेदन शील हैं। इस दृष्टि से ये डा० नगेन्द्र के समान राह निर्देशक माने जा सकते है। इन्होने रस की अलौकिकता मे विश्वास नही किया है।[१] ये तो स्वच्छन्द सामजस्य के स्तम्भ है। इसी हेतु इन्होंने अभिव्यजना मात्र को भी काव्य का उद्देश्य नही मानते है। ये अलकारो के बिना काव्य का आस्तित्व स्वीकार करते है। ये एक ओर रस वादियो के समीप दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर आप आधुनिक अ ग्रेजी के अलकारो के बहिष्कार की प्रवृति के भी समीप है आलोचको ने इनकी सरस समालोचना शैली की प्रशसा की है। इन्होने छायावाद का उचित परीक्षण किया है। जिस प्रकार से ए० सी० वार्ड ने बीसवी शताब्दी के साहित्य मे अ ग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया है। उसी प्रकार से इन्होने हिन्दी साहित्य का विवेचन प्रस्तुत किया है। इन्होने क्रौचे के अभिव्यजनावाद की भी व्याख्या की है। शास्त्रीयवाद और छायावाद इनके विवेचन की सामग्री रहे है। इन्होने भारतीय शास्त्रीय तत्वो पर मनोवैज्ञानिक और तर्क बद्ध विवेचन किया है।[२] इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये हिन्दी के प्रौढ समालोचक हैं।

निष्कष:—

निगम शैली, आलोचको की स्वतन्त्रता, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और काव्य की, काव्य के ही आधार पर आलोचना करना इनकी समालोचना की विशेषता है। इन्होने व्यावहारिक और प्रयोगात्मक आलोचना के साथ सैद्धातिक आलोचना का सुन्दर समन्वय किया है। इन्होंने हिन्दी के शोध कार्य मे भी अपूर्व सहयोग दिया है। यह छायावाद युग के प्रथम प्रभावशाली आलोचक है। जिस प्रकार से अफलातून के भावक शिष्य अरस्तु ने गुरू की भ्रातियो का निराकरण किया उसी भाति वाजपेयीजी ने भी शुक्लजी की छायावाद सम्बन्धी धारणाओ मे संशोधन किया। वर्तमान हिन्दी

१—हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी—पृष्ठ ६७।

२—आधुनिक हिन्दी साहित्य—पृष्ठ ४१८-४२२।

के कम आलोचको ने अपनी प्रतिभा का इतना साहसपूर्ण परिचय दिया है। इनके ही समान डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य को अपने ग्रन्थो द्वारा गौरवान्वित किया है।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी.—

सास्कृतिक आधार को द्विवेदी जी पूरा महत्व देते हैं। इन्होने सास्कृतिक आधार का सूक्ष्म ऐतिहासिक और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनकी मान्यता है कि भारतीय भक्ति आदोलन इस्लाम की प्रतिक्रिया न होकर हमारे वागमय का स्वाभाविक स्वरूप है। सन्त साहित्य पर द्विवेदी जी की मान्यताये आप्त वाक्य मानी जाती हैं। नाथ सम्प्रदाय हमारे कथन की पुष्टि करता है। इन्होने अ ग्रेजी ग्रन्थो से भी उचित सामग्री ग्रहण की है। अशोक के फूल एव विचार और वितरक मे साँस्कृतिक आधार स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। जीवन और साहित्य का ये निकट सम्बन्ध मानते हैं। इन्होने साहित्य के उत्कर्ष और अत्कर्ष का मानदण्ड मानव हित साधन माना है।[१]

रस क्या है की चर्चा करते समय आपने शास्त्रीय विवेचन को स्थान दिया है। इसमे भारतीय शास्त्र वेता के मतो को उद्रित किया गया है। विवेचन करते समय ऐतिहासिक दृष्टि को महत्व दिया गया है। वे इतना व्यापक दृष्टिकोण रखते हैं कि किसी भी वाद की रचना को हेय नही मानते। अश्लीलता इन्हे अवश्य ही अखरती है।

निष्कर्ष:—

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी वे संस्कृत ग्रन्थो का सम्यक आधार ग्रहण कर अ ग्रेजी आलोचना की व्याख्यात्मक और वैज्ञानिक शैली को अपना कर हिन्दी साहित्य को अपनी आलोचनात्मक कृतियो से सुशोभित किया है। एक तथ्य अवश्य उल्लेखनीय है कि इन्होने प्राचीन और

१—अशोक के फूल—साहित्यकार का दायित्व और मनुष्य।

मध्यकालीन सामग्री को शोध का विषय बनाकर हिन्दी साहित्य की एक बहुत बडी क्षति की पूर्ति की है। इनके ही समान डा० राम विलास शर्मा ने भी हिन्दी साहित्य को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है।

अन्य आलोचक.—

डा० राम विलास शर्मा ने स्वस्थ्य मार्क्सवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। इन्होने सर्व प्रथम निराला के क्रातिकारी स्वरूप को पाठको के सम्मुख रखा।[१] इससे ज्ञात होना है कि ये अ ग्रेजी आलोचना और नवीन समीक्षा सिद्धातो के प्रति जागरूक रहे है। ऐसे ही अन्य आलोचक है श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त।

प्रकाश चन्द्र गुप्त मार्क्सवादी आलोचकों मे प्रमुख स्थान रखते है। इन्होने नया हिन्दी साहित्य और आधुनिक हिन्दी साहित्य मे सैद्धातिक और व्यावहारिक आलोचना को अपनाया है। इन्होने भारतीय पृष्ठभूमि और अंग्रेजी आलोचना की वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने का आग्रह किया है।

मार्क्सवाद का प्रभाव इन पर इतना गहरा है कि ये तुलसीदास सूर दास और कबीर दास को भी मार्क्सवादी दृष्टिकोण से परखते है। यह आलोचना पर एप्रेट्रोयरी थ्योरी का प्रभाव है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य को डा० राकेश गुप्त ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की है। इन्होने रसो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है।[२] रसो को समझने के लिये ये मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का उल्लेख करते है। यथा इनका कथन है कि सम्वेग की तीन प्रमुख दशाए है—प्रत्यक्ष कारण मानसिक दशा और शारीरिक प्रतिक्रिया।[३] तत्पश्चात ये कहते हैं कि रस की भी ये ही तीन दशाये है जिन्हे आप विभाव, भाव और अनुभाव मानते हैं। इनके साथ मन की प्रवृति भी रस निष्पति के लिये आवश्यक है। इनका निष्कर्ष है कि भावना को जाग्रत करने मे वाह्य परिस्थितियो के साथ आतरिक भावनाओ की स्थिति आवश्यक है।[४] स्थायीभावो के

१—आलोचना-प्रथम अंक पृष्ठ १७।
२—साईक्लोजिकल स्टडीज इन रसाज।
३—वही पृष्ठ १९८-२००।
४—वही पृष्ठ १५०।

में समवेग मानते हैं। इनका निष्कर्ष है कि रस शास्त्र मनोवैज्ञानिक आधार पर स्थित है। वास्तव में निष्पत्ति का मनोवैज्ञानिक स्थिति–प्रत्यक्ष कारण, मानसिक दशा और शारीरिक प्रतिक्रिया से सामन्जस्य स्थापित करना स्तुत्य है। इससे एक ओर जहाँ रस सिद्धात की मनोवैज्ञानिकता प्रकट होती है वहां दूसरी ओर आज के काव्य शास्त्रीय विकास मे संस्कृत और अंग्रेजी आधार और प्रभाव का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। यह स्पष्ट हो जाता है कि आज का आलोचक संस्कृत की आधार भूमि को अंग्रेजी काव्य शास्त्र के परिपार्श्व मे रखकर परखता है और वे सिद्धात हिन्दी में स्थायित्व ग्रहण कर लेते हैं जो दोनो में ही उभयनिष्ठ होते हैं।

डा० एस० पी० खत्री के आलोचना इतिहास तथा सिद्धात पर अंग्रेजी आलोचना का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है। वे इस प्रकार से लिखते हैं मानो अंग्रेजी की चर्चा अंग्रेजो के सामने की जा रही है।[1] इनके भावो और विचारो पर भी अंग्रेजी प्रभाव दिखाई देता है।[2] इन्होने कई परिभाषाएँ अंग्रेजी से अपना ी हैं। इनकी कला का विवेचन इसका उदाहरण है।[3] मनोवैज्ञानिक शब्दावली और उदाहरणो का भी ये मुक्तहस्त प्रयोग करते हैं।[4] साथ ही इन्होंने अपनी मौलिक मान्यताएं भी प्रतिपादित की हैं। आलोचना कैसे की जाय यह इन्होने अपने ढग से बताया है।[5]

डा० राम कुमार वर्मा ने अपने इतिहास ग्रन्थ, साहित्य समालोचना, कबीर का रहस्यवाद, साहित्य शास्त्र विचार दर्शन एव एकाकी कला आदि पुस्तको द्वारा हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। इन्होंने भारतीयता का समर्थन करते हुए अंग्रेजी विधाओ को अपनाया है। नाटकों की भूमिकायें इनके इस मत को स्पष्ट कर देती हैं। अंग्रेजी आलोचकों के समान इन्होंने अन्तर द्वन्द्व को नाटको का प्राण माना है।

डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने भी संस्कृत और अंग्रेजी दोनो ही विधाओ को अपनाने का प्रयत्न किया है। इन्होने शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धात दो भागों में भारतीय आचार्यों और अंग्रेजी, युनानी और इटालवी आचार्यो के भी मत प्रस्तुत

१—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ३६६।
२—वही पृष्ठ १५, ७५।
३—आलोचना, इतिहास तथा सिद्धान्त—पृष्ठ २७०।
४—वही पृष्ठ २७६, २८०।
५—वही पृष्ठ २८४, २८५।

किये है। वे कहते है ·······यहाँ पर हम सस्कृत हिन्दी और अ ग्रेजी के प्रसिद्ध आचार्यो द्वारा दी गई साहित्य की परिभाषाओ का ही उल्लेख करेगे।[1] इन्होने यथा सम्भव अपने निर्णय देने का भी प्रयत्न किया है। हिन्दी की निर्गुण धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि मे तत्कालीन परिस्थितियो का ऐतिहासिक और दार्शनिक दृष्टि से सागो पाग विवेचन किया गया है। व्यक्तित्व के समान शान्ति प्रिय द्विवेदी की आलोचना भी विकासमान है। अ ग्रेज निबन्ध लेखको के समान इनके निबन्धो मे आत्माभिव्यक्ति और वैयक्तिकता प्राप्त होती है। साहित्यकी मे इन्होने विश्व प्रेम प्रतिपादन किया। ये छायावाद से प्रगतिवाद की ओर बढ रहे है। सामयिकी मे आन्तरिक भावनाओ का प्रकटीकरण हुआ है। ये कला की सार्थकता केवल सुन्दरता मे ही नहीं, मगलमय होने मे देखते हे। ये रसात्मकता को भी महत्व देते है। युग और साहित्य, कवि और काव्य, सचारिणी मे इनकी प्रयोगात्मक और सैद्धातिक आलोचना के समष्टी स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। इनकी शैली पर अ ग्रे जी का स्पष्ट प्रभाव है। रिमार्क थीम फिलोसोफी और मेटर ओफ फैक्ट आदि शब्दो का ये मुक्त हस्त प्रयोग करते हे।

श्री शिवदान सिंह चौहान ने तर्क बल और मार्क्सवादी आलोचना के आधार पर अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। सस्कृत शास्त्रकारो के समान इन्होने वृतियो और प्रवृतियो का विवेचन किया है। ये ऐसे वर्गीकरण को हेय मानते है जिसका कोई मौलिक आधार न हो। इन्होने अ ग्रेजी शब्दो को बहुत प्रयोग मे लिया है। नई आलोचना का विरोध करते समय इन्होने विभिन्न अ ग्रेजी के आलोचको का खण्डन किया है।[2] आलोचना के सिद्धात मे इनके आलोचको के विवेचन मेकिंग ओफ लिट्रेचर पर आधारित प्रतीत होतें है। इन्होने छायावाद की व्याख्या की है। इन्होने आलोचना के विभिन्न भेदो को ···निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, प्रभावात्मक और तुलनात्मक भेदो को निस्सार शब्दाडम्बर माना है।[3] नई आलोचना के विषय मे ये कहते है कि उसे शीशे की पेटी मे बन्द करके रखना अनुपयुक्त है। इस प्रकार हम देखते है कि इन्होने कई अ ग्रेज लेखको का विरोध किया है जिसका आधार इनका राजनीतिक दृष्टिकोण है।

१—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त भाग एक पृष्ठ १।

२—आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ १० —१६१।

३—वही पृष्ठ १७०-१७५।

पंचम् प्रकरण

उपसंहार

अन्त मे कहा जा सकता है कि सस्कृत काव्य शास्त्र अत्यन्त समृद्ध और सम्पन्न था। भरत मुनि, राज शेखर, धनजय, उद्भट्ट, रुय्यक, वामन, कुतक और आनन्दवर्धनाचार्य तथा पण्डितराज जगन्नाथराज ने इसे प्रौढता एव पुष्टता प्रदान की। कालान्तर मे जब वह धारा क्षीण हो गई तब लोक भाषाओं और देशज बिभाषाओ ने देश कालानुसार अपने लक्षण ग्रन्थो के निर्माण के प्रयास किये। इनमे अपभ्र श शैली के अनुकूल यत्र-तत्र शास्त्रीय तत्वो मे परे जाने के लक्षण भी दिखाई देते है। इनमे धार्मिक भावनाओ को भी अभिव्यक्त किया जाता था। देशी भाषाओ मे नखशिखादि वर्णन भी मिलने लगे। लक्ष्य ग्रथो मे लक्षण ग्रन्थो के अनुकूल उक्तिया प्राप्त होने लगी। विद्यापति की पदावली, रासो ग्रथ और अमीर खुसरो का काव्य इसके प्रमाण है। डिंगल मे भी वयण सगाई प्राप्त होने लगी। अतएव कहा जा सकता है कि साहित्यिक परम्परा रीति काल की ओर बढ रही थी। फिर भी यह मानना होगा कि आदि काल मे काव्य शास्त्रीय तत्व तो प्राप्त होते है किन्तु पूर्ण लक्षण ग्रन्थो का अभाव खटकता ही रहता है।

भक्ति काल के उदय के बारे मे विद्वानो मे मत-भेद है। शुक्लजी ने इसे पराजित जाति का भगवान की ओर उन्मुख होने की प्रवृति की अभिव्यक्ति कहा है और डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे साहित्यिक परम्परा का स्वाभाविक विकास घोषित किया है। हमारी दृष्टि से सत्य यह है कि भक्ति कालीन कवियों मे रस, अलकार, सौन्दर्य और शृ गारादि का वर्णन प्राचुर्य प्राप्त होता है। रस की दृष्टि से नवीन उद्भावनाये भी की गईं। जायसी ने शास्त्रानुकूल सहृदय सामाजिक की आकाक्षा प्रकट की। पद्मावत मे लक्षण ग्रन्थो के अनुकूल वर्णन प्राप्त होते है। कबीरदासजी के काव्य मे शास्त्रोक्त वक्रता को स्थान दिया गया। तुलसीदासजी ने

साग रूपक प्रयोग, शास्त्रोक्त रस, अलकार और शृ गारादि वर्णन मे शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह किया है । उनकी सहृदय सामाजिक की आकाक्षा काव्य शास्त्रकारो के अनुकूल है । इनके प्रबन्ध काव्य की विशेषताओ पर, अलकारो के वर्णन पर और इनकी कविता की परिभाषा पर सस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव दिखाई देता है। इनकी काव्य पुरुष की कल्पना भी उसके ही अनुकूल है । तुलसीदास का दैन्य प्रकटीकरण सन्देश शास्त्र की शैली का स्मरण दिलाता है । इसी भाँति सूरदास के काव्य मे भी शास्त्रीय तत्व प्राप्त होते हैं । मीराबाई ने भी अलकारो को स्थान दिया है ।

इस काल मे सस्कृत के अनुकूल टीकाये भी प्राप्त होती हैं। भक्तमाल की टीका इसका पुष्ट प्रमाण है । इस युग के अन्य कवि भी शास्त्रीय तत्वो से अछूते नही रह सके हैं । नन्द दास व परमानन्द दास की रचनाये इसका प्रमाण है । इस प्रकार निष्कर्ष निकाला गया है कि इस काल मे शास्त्रीय नियमो का पालन किया गया है । साथ ही शास्त्रीय उक्तिया सूक्तियो के रूप मे आवहेरचनाये, नखशिखादि वर्ण, काव्य द्वारा अमर होने की भावना आदि प्राप्त होती है जो आगामी युग मे विकसित होती हैं । इस युग का भाव पक्ष तो प्रबल था ही किन्तु कला पक्ष भी महत्व पूर्ण था ।

इस काल मे कृपाराम त्रिपाठी ने शास्त्रीय ग्रन्थ-लक्षण ग्रन्थ की भी रचना की । आचार्य केशव ने अधिकाशत: पूर्व ध्वनिकालीन आचार्यों को मान्यता प्रदान की । इसके कारणो मे उनका अह, राजा की अत्युक्ति पूर्ण प्रशसा, बचने की कामना, और प्राचीन को अर्वाचीन से श्रेष्ठतर समझना आदि हो सकने हैं । इनकी कविप्रिया और रसिक प्रिया पर सस्कृत शास्त्रकारो का प्रभाव दिखाई देता है । कवि रूढियो के वर्णन मे अलंकारो के भेदो के चित्रण मे, श्रृगारिकता के दिग्दर्शन मे, और वृतियो आदि के उल्लेख मे इन पर शास्त्रीय प्रभाव कहा जा सकता है । साथ ही आचार्य ने यत्र-तत्र मौलिकता का परिचय भी दिया है ।

रीति काल मे सस्कृत के ग्रन्थो के आधार पर भाषा की प्रवृति के अनुकूल रीति ग्रथो का प्रणयन किया गया । कही-कही मौलिकता के प्रयत्न किये गये । जिनमे अधिकाशतः एकाधिक ग्रंथों को मिला-जुलाकर या भुला कर नवीनता का आभास दिया गया । इस युग की कई उक्तियाँ अ ग्रेजी के 'न्युओक्लोसिकल' काल से तुलनीय है । सामन्ती जीवन का दिग्दर्शन इस काल के साहित्य मे प्राप्तहोता है । चिन्तामणि त्रिपाठी की काव्य की परिभाषा और उनका रीति विवेचन तथा अलकारादि वर्णन सस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल है । तोषकृत सुधानिधि मे रस, रस-

भाव, हाव, भाव, दोष, वृति, नायकादि भेद को स्थान दिया गया है। महाराजा जसवन्त सिंहजी के भाषा भूषण मे संस्कृत की शैली का अनुसरण किया गया है। अधिकाशत: शैली 'चन्द्रालोक' की है। और विषय 'कुबलयानन्द' के अनुकूल है। मतिराम, भूषण, कुलपति मिश्र, आचार्य देव, आचार्य भिखारीदास, पद्माकर के काव्य सस्कृत काव्य शास्त्रो से प्रभावित प्रतीत होते हैं। इस काल की उक्तिया और इस युग के निर्णय भी सस्कृत शैली की छाया से दूर नही रह सके है।

अतएव निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आदि काल के शास्त्रीय तत्व भक्ति काल मे होकर रीतिकाल मे पुष्टता प्राप्त करने लगे। विषय और शैली की दृष्टि से ये बहुधा सस्कृत की शैली पर आधृत थे।

रीति काल तक हिन्दी साहित्य सस्कृत काव्य शास्त्र की ओर दृष्टि लगाये हुए था और यत्र-तत्र अपभ्रंश शैली के अनुकूल संस्कृत काव्य शास्त्रकारो से विमुख ही हो रहा था। अंग्रेजी काव्य शास्त्र के परिचय ने उसे अपनी ओर भी आकृष्ट किया। अंग्रेजो के आते हीं तो काव्य शास्त्र पर उनका प्रभाव नही पडा किन्तु रेल तार डाक और मुद्रण ने अंग्रेजी साहित्य से परिचय बढ़ाया। विश्व विद्यालयो व विद्यालयो की स्थापनाओ ने भारतीय काव्य शास्त्र की दृष्टि अंग्रेजी की ओर भी फेरी। अतएव भारतेन्दु काल मे सस्कृत काव्य शास्त्र के साथ अंग्रेजी काव्य शास्त्र का भी प्रभाव दिखाई देने लगा। इस युग मे सस्कृत काव्य शास्त्रीय पद्धति के अनुकूल रस, ध्वनि आदि को स्थान दिया जाता था। टीकाओ की रचनाएँ होती थी और काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो का निर्माण भी होता था। साथ ही अंग्रेजी प्रभाव के कारण मौलिकता और नवीनता का आग्रह दिखाई देने लगा। गद्य मे व्याख्याएं की जाने लगी। पत्र-पत्रिकाओ मे आलोचनात्मक निबन्ध प्राप्त होने लगे। नूतन साहित्यिक विधाओ—दुखान्त नाटको और उपन्यासों आदि को स्वीकार किया गया। इनके प्रणयन की कामनाएं प्रकट की गई। अंग्रेज आलोचकों और अंग्रेज विद्वानों ने इसमे सहयोग दिया। अंग्रेज आलोचकों के समान—'पंफ्लेटीयर्स' के समान, आलोचको मे प्रतिस्पर्धा के दर्शन होने लगे। भाषा के सुधार की ओर भी ध्यान गया। अंग्रेजी के तत्वो को शास्त्रीय आधार पर अपनाने की आकांक्षा प्रकट की जाने लगी। 'सीन' को गर्भांक कहना इसका उदाहरण है। अंग्रेजी के समान प्रयोगात्मक आलोचनाएं भी प्राप्त होने लगी। नागरी प्रचारिणी सभा ने खोज और अनुसन्धानों मे सहयोग दिया। 'लाइव्ज ओफ पोइट्ज' के अनुकूल भारतीय कवियो

की जीवनियो पर प्रकाश डाला जाने लगा । अ ग्रेजी के विराम चिन्हो, साहित्य के इतिहास ग्रन्थो और तुलनात्मक विवेचनाओ स हिन्दी काव्य शास्त्र को बल दिया । नाम ही काव्य शास्त्र के स्थान पर आलोचना या ममालोचना बन गया, जो अ ग्रेजी के क्रिटिशिज्म का अनुदित रूप है । आलोचको ने गद्य औ' पद्य के भेद को भी दूर करने का प्रयत्न किया । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने नाटक निबन्ध और अपनी पत्रिका की आलोचना के द्वारा हिन्दी आलोचना को सफल बनाया । इसी भाँति बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पण्डित बालकृष्ण भट्ट, पण्डित गयाप्रसाद अग्निहोत्री, बाबू बाल मुकुन्द गुप्त और चन्द्र शेखर वाजपेयी आदि ने सस्कृत के आधार पर अ ग्रेजी तत्व को ग्रहण किया । आलोचक परीक्षण करता हुआ आगे बढ रहा था, जिसमे उभयनिष्ठ तत्व तो स्वीकार कर लिये जाते और बहुत से अंग्रेजी आलोचना के तत्व स्वीकार कर लिये जाते तो अधिकाश सस्कृत के तत्व छोड दिये जाते । फिर भी सस्कृत का आधार ग्रहण करने की कामना अवश्य ही विद्यमान थी ।

दूसरी ओर लच्छीराम और कविराज मुरारीदान ने काव्य शास्त्रीय ग्र थो के निर्माण भी किये । इन्होने भी यत्र- तत्र अंग्रेजी आलोचना के तत्वो को ग्रहण किया इस प्रकार निष्कर्षत कहा जा सकता है कि आलोच्य काल सस्कृत काव्य शास्त्र के लक्षणो को ग्रहण करता था और अ ग्रेजी काव्य शास्त्रीय पक्ष को भी अपनाता था । ये परीक्षण काल था ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गद्य को प्रौढता प्रदान की और रीति कालीन श्रृगारिकता का दमन किया । इनका आदर्श था कि कविता मे मनोरजन और आदर्श दोनो ही होने चाहिये । यह 'होरेस' के अनुकूल है और इसमे सस्कृत के आनन्द तत्व तथा भारतीय आदर्श के निर्वाह की आकाक्षा भी है द्विवेदी जी आलोचना द्वारा साहित्य को समृद्ध बनाने के इच्छुक थे । द्विवेदी युग के काल विभाजन के बारे मे मत-भेद है किन्तु साहित्यिक काल व्यक्ति के प्रारम्भ और अस्त होने से सम्बन्धित नही होते है । अतएव इनके सरस्वती सम्पादन की समाप्ति से ही इनके काल का अन्त नही माना जाना चाहिये ।

द्विवेदीजी युग मे नैतिकता पर अधिक बल दिया गया । सास्कृतिक आधार को अपनाया गया । साहित्य दर्पण के आधार पर इस काल मे आख्यायिका का विवेचन किया गया । आलोचना काल के कई ग्रन्थो का आधार संस्कृत काव्य शास्त्रीय ग्रथ

रहे । सस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल टीकाओ की रचनाए की गई । सूर, तुलसी, केशव, बिहारी और भूषण की टीकाये इसका प्रमाण है । सस्कृत काव्य शास्त्रीय ग्रन्थो के अनुवाद भी किये गये ।

काव्य के विभिन्न अगो का शास्त्रीय विवेचन किया गया । आलोचना की शैली मे सस्कृत के पारिभाषिक शब्दो और शास्त्रीय तत्वो का उपयोग किया गया । चमत्कार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया, जो वक्रोक्ति काव्य का स्मरण दिलाता है । इन तथ्यो के होते हुए भी तत्कालीन साहित्य अ ग्रेजी के प्रभाव से अछूता नही रह सका ।

अ ग्रेजी शिक्षा और यथार्थ चित्रण से रीतिकालीन श्रृ गारिकता की प्रतिक्रिया हुई । भाषा सुधार को लेकर 'पफनेटियर्स' का सा सघर्ष चला । अ ग्रेजी आलोचना के समान तुलनात्मक और ऐतिहासिक पद्धति को अपनाया गया । टीकाओ पर भी अ ग्रेजी आलोचना का प्रभाव दिखाई देने लगा । काव्य के विभिन्न अगो-कविता, नाटक, उपन्यास और आलोचना को अ ग्रेजी के परिपार्श्व मे देखा गया । अ ग्रेजो की प्रेरणा और उनके आदर्श को लेकर हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रथो का प्रणयन हुआ । शोध कार्य को महत्ता दी गई और कई शोध ग्रन्थ अ ग्रेजी मे ही लिखे गये । पत्र-पत्रिकाओ का प्रचलन बढा और उनमे अ ग्रेजी की सामग्री को स्थान दिया गया । हिन्दी के काव्यकारो की आलोचनाए अ ग्रेजी मे और अ ग्रेजी पत्रो मे छपने लगी । प्राचीन विषय अलकार आदि की अ ग्रेजी अलकारो से तुलनाये हुई । इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि द्विवेदी युग के आलोचक शास्त्रीय तत्वो को अपनाये हुए थे । यही नही शास्त्रीय ग्रन्थो का निर्माण भी हुआ । शुद्धता और सुचिता—आदर्श निर्वाह की दृष्टि से वे सस्कृत काव्य शास्त्र के निकट रहे । सैद्धांतिक आलोचना को महत्व देना इसका उदाहरण है । साथ ही व्यावहारिक आलोचनाए अ ग्रेजी के प्रभाव से लिखी गई फलत तुलनात्मक पद्धति ने बल प्राप्त किया । अंग्रेजी आलोचना और अ ग्रेज विद्वानो ने इसमे सहयोग दिया । नवीनता का आग्रह बढा । युग के आलोचको की कृतिया हमारे कथन की सच्चाई प्रकट करती है ।

आलोचक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सस्कृत काव्य शास्त्र मे रुचि दिखाई । उनके आलोचनात्मक ग्रन्थो पर साहित्य दर्पण, ध्वन्यालोक प्रभृति की छाया दिखाई देती है । उनकी कविता की परिभाषा पर पण्डित जगन्नाथ का प्रभाव प्रतीत होता है । उन्होने सस्कृत की प्राचीन आलोचना शैलियो—खण्डन-मण्डन, लोचन और

टीका आदि को अपनाया व सस्कृत के छन्दों का समर्थन किया। साथ ही उन्होंने अंग्रेजी के वर्डस्वर्थ के अनुकूल भाषा और विषय पर दृष्टिपात किया। अंग्रेजी की ब्लेक बर्स से भी वे प्रभावित रहे। उन्होने अपनी भाषा को समृद्ध बनाने के लिये अंग्रेज आलोचकों और विद्वानो से पत्र व्यवहार भी किये। उनके निबन्धो मे अंग्रेजी शैली का प्रभाव दिखाई देता है। पत्रिका में अनुदित अंशों को भी स्थान दिया गया। इस प्रकार द्विवेदी जी पर सस्कृत काव्य शास्त्र और अंग्रेजी दोनों का ही प्रभाव परिलक्षित होता है। इस युग के अन्य समालोचक—सर्व श्री मिश्र बन्धु, डा० श्याम सुन्दर दास, पंडित पद्मसिह शर्मा, पंडित कृष्ण बिहारी मिश्र आदि की रचनाये भी हमारे कथन की पुष्टि करती है।

द्विवेदी युग तक की आलोचना मे परीक्षण प्रणाली का आभास प्राप्त होता है। कभी आलोचक सस्कृत की पद्धति को अपनाते तो कभी अंग्रेजी नियमो को। सस्कृत काव्य शास्त्र और अंग्रेजी शास्त्र को सुविधानुसार अपनाया जाता था। आधुनिक युग के प्रखर बुद्धिवान भावक सज्जनो ने अन्धानुकरण हेय माना। साहित्य के मूल्याकन का प्रयास किया गया। सस्कृत और अंग्रेजी दोनो के परिपार्श्व मे। भाव-अनुभाव, विभाव और सचारी भाव आदि आलोचना की सामग्री रहे। आलोचकों ने इनका शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया। साधारणीकरण भी विवेचन की सामग्री रहा। रसो की सख्या, रसास्वाद और रसाभास आदि का विवेचन करते हुए पूर्वध्वनिवादी और उत्तरध्वनिवादी शास्त्रकारो का विवेचन किया जाता है। विभिन्न सम्प्रदाय—रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य आदि का उल्लेख किया जाता है एवं सामान्यत: काव्य की आत्मा रस को माना जाता है। रस स्वरूप सिद्धान्त और विश्लेषण, ध्वनि सम्प्रदाय और वक्रोक्ति सम्प्रदायों पर सम्यक प्रकाश डाला जाता है। अलकारों की मौलिक व्याख्या करने वालो मे डा० राम शकरजी शुक्ल 'रसाल' को शीर्ष स्थान प्राप्त है।

इस युग मे संस्कृत काव्य शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दो और तत्वो को ग्रहण किया गया और उन्हें आधुनिक युग के मनोविज्ञान और अंग्रेजी आलोचना तत्वों के प्रकाश मे परखने का प्रयत्न किया गया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी मनोविज्ञान के शब्दो के प्रसग मे भारतीय शास्त्रीय शब्दो का मूल्याकन किया गया। यह तो ठीक है किन्तु येन-केन प्रकारेण भाव को 'इमोशन', स्थाई भाव को 'सैन्टीमेन्ट' और रस को 'स्टाइल' कह कर मनोवैज्ञानिक शब्दावली में ढालने के प्रयत्न उपयुक्त नहीं हैं।

यह आवश्यक नही है कि भारतीय प्राचीन पद्धति को पाश्चात्य समीक्षा पद्धति के पूर्ण रूपेण अनुकूल सिद्ध किया जाय। जहाँ तक अर्थ द्योतन का प्रश्न है, अ ग्रेजी मे उनके समानार्थी शब्दो के अभाव मे इन शब्दो को ही ज्यो का त्यो ग्रहण किया जा सकता है, परन्तु उन्हे पूर्ण रूप से अ ग्रेजी पर्यायो के अनुकूल सिद्ध करना दुराग्रह मात्र होगा। अंग्रेजी मे भी अरस्तु की पौइटिक्स के अनुवादको की यह मान्यता रही है कि अरस्तु के कोमेडी का अर्थ वही नही था जो आज कामन्दी से समझा जाता है। अतएव आधुनिक मनोविज्ञान के प्रकाश मे रस का विवेचन वाचनीय है किन्तु उसे पूर्ण रूपेण अ ग्रेजी प्रणाली मे ढालने का प्रयत्न उचित नही है।

एक अन्य तथ्य यह भी है कि किसी प्रकार का किया गया हिन्दी लेखको का प्रयास उन पर अ ग्रेजी काव्यशास्त्र के प्रभाव और उनकी सस्कृत काव्य शास्त्रीय पृष्ठभूमि को हमारे सामने स्पष्ट कर देता है। आज आलोचको को काव्य शास्त्रकारो को दो भागो मे विभाजित किया जाता है।

क—परम्परानुयायी—जिन्हे सस्कृत के नियम मान्य हैं।
ख—पुनराख्याता— जो अ ग्रेजी को ग्रहण करते है। [१]

अतएव इस प्रकार सस्कृत और अ ग्रेजी नियमो के परिपार्श्व मे ही हिन्दी काव्य शास्त्र बढ रहा है। आज ऐसे नियम बनाने की आकाक्षा प्रकट की जाती है जिनमे सस्कृत के नियमो को समयानुकूल ग्रहण किया जाय और अग्रेजी के सिद्धातो को देश-कालानुसार मान्यता दी जाय। दोनो की उभयनिष्ट विधाएं विशिष्ट रूप से गृहीत होती है। एक ओर जहाँ रस स्वरूप सिद्धान्त और विश्लेषण और हिन्दी अलकार शास्त्र जैसे ग्रन्थो मे सस्कृत आलोचना सिद्धान्तो को महत्व दिया जाता है तो दूसरी ओर आलोचना सिद्धान्त तथा अध्ययन और साइकोलोजिकल स्टडीज इन रसाज आदि पुस्तके अंग्रेजी आलोचना को महत्व प्रदान करती है।

आधुनिक आलोचक यह स्पष्ट रूप से लिख देते हैं कि अध्ययन की सामग्री पाश्चात्य और भारतीदोनो काव्य शास्त्रो से ग्रहण की गई हैं। [२] यो भी कह दिया

१—डा० मनोहर काले—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्यय पृष्ठ ४३१।
२—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, प्राक्कथन (भाग—१)।

जाता है। साहित्यिक विधाओ-उपन्यास, नाटक कहानी, और कविता आदि की आलोचना अ ग्रेजी के परिपार्श्व मे की जाती है। कई परिभाषाए पाश्चात्य जगत से ले ली गई है-जैसे साहित्य जीवन की व्याख्या है। और अपने हृदयगत भावो को दूसरो तक पहुँचाना ही कला है आदि। ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, अभिव्यजनात्मकादि पद्धतियाँ आलोचना को आच्छादित करने लगी। छायावाद, मार्क्सवाद और प्रयोगवाद की आलोचनाए की गई जिन पर अ ग्रे जी प्रभाव दिखाई देता है। समाज शास्त्रीय आलोचना भी सामने आई। अंग्रेजी आलोचना ग्रन्थो के से ग्रन्थो का हिन्दी मे निर्माण किया जाने लगा। आलोचना की परिभाषा तक मे अ ग्रे जी तत्वो का सन्निवेश किया गया। अ ग्रे जी के कई शब्द और मुहावरे हमारे सामने आये विचार विन्दु व्यू पौइन्ट का ही अनुदित रूप है। फिर भी सस्कृत के सामन्जस्य से देश कालानुसार उपयुक्त आलोचना पद्धति का प्रकटीकरण हुआ।

यहाँ यह कहना सामयिक और उपादेय होगा कि कवियो और आलोचको द्वारा अन्य साहित्यकारो को कटुवचन कहना अनुपयुक्त ही है। इसमे शास्त्रीय दृष्टि से ग्राम्यत्व दोष है, सामाजिक दृष्टि से अभद्रता है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से है हीन भाव का प्रदर्शन। अतएव ऐसी उक्तियाँ—अमुक व्यक्ति इस बारे मे कुछ भी नही जानता और ये साहित्यकार मूर्ख है आदि का जागरूकता पूर्वक बहिष्कार वाचनीय और आवश्यक है। कई बार अंग्रे जी के उद्धरणो की त्रुटि पूर्ण ढग से रख दिया जाता है यथा—एडिसन के नाम से सैन्ट्सबरी की आलोचनात्मक मान्यता को प्रस्तुत कर दिया जाता हैं।[1] हो सकता है यह भूल मुद्रणालय की हो किन्तु इसका भी निराकरण आवश्यक है।

हमे अ ग्रेजी और विभिन्न पाश्चात्य तथा पौर्वात्य काव्य शास्त्रों से सामग्री ग्रहण अवश्य करनी चाहिये किन्तु किसी एक वाद, विचारधारा या शास्त्र अथवा शास्त्रकार का अन्धानुकरण हेय है। साहित्यिक आदान-प्रदान स्वाभाविक और

१—ऐसा लिखने वाले विद्वानों के नाम यहां आदर वश लिखना उपयुक्त नहीं समझा गया है।

वाचनीय है। अग्रेजी साहित्य और काव्य शास्त्र युनानी, इटालवी, फ्रैंच, नौर्वेजियन, रूसी और जर्मनी साहित्यिक सिद्धातो और शास्त्रीय प्रणालियो से प्रभावित है।[1]

चौसर की आलोचनात्मक उक्तियाँ बैन्जोन्सन का नाट्यालोचन, ड्राइडन के काव्य सिद्धान्त और शोधदत्त विवेचन आदि सभी पर अन्य आलोचको का प्रभाव दिखाई देता है।[2] अतएव हिन्दी काव्य शास्त्र का भारतीय पृष्ठभूमि पर अग्रेजी आलोचना सिद्धान्तो के परिपार्श्व मे आगे बढना किसी प्रकार की हीनता का द्योतक नही है। फिर भी अन्धानुसरण अवाचनीय है। यदि हमारे काव्य शास्त्रकार और आलोचक—सैद्धान्तिक आलोचना के प्रतिपादक और प्रयोगात्मक आलोचना के समर्थक, यदि आधुनिकता के दुराग्रह को स्वीकार न करे, नवीनता के आकर्षण को औचित्य की दृष्टि से देखे और साथ ही पुरातन पथी भी न बने, हृदय और मस्तिष्क का समन्वय कर देश कालानुसार हर विधा को उचित स्थान दे तो वे अवश्य ही आलोचना को समृद्ध कर सकते है—ऐसा किया भी गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्याम सुन्दर दास, डा० गुलाब राय, डा० रामशकरजी शुक्ल 'रसाल', डा० नगेन्द्र, डा० नन्द दुलारे वाजपेयी, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० सरनाम सिंह जी शर्मा, डा० सत्येन्द्र, और डा० रामविलास शर्मा प्रभृति विद्वानो की शास्त्रीय और आलोचनात्मक कृतियाँ हमारे कथन की पुष्टि करती है। हमे आशा है कि भविष्य का हमारा काव्य शास्त्र न तो विशुद्ध रूप से संस्कृत काव्य शास्त्र का प्रतिरूप होगा और न पूर्णरूपेण अग्रेजी सिद्धान्तो के अनुरूप ही। वह सस्कृत, अग्रेजी और अन्य काव्य शास्त्रीय पद्धतियो के समन्वय से उत्पन्न और विकसित एक भारतीय काव्य शास्त्र होगा।

—ooo—
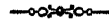
१—डा० सैन्टसवरी के अग्रेजी आलोचना के इतिहास के प्रारम्भिक अध्याय में, स्कोट जेम्स के मेकिंग ओफ लिटरेचर के प्रथम सात अध्यायो में लिग्वी और कजामिया के इतिहास ग्रथ में और डा० ब्रोम्पटन रिकेट के इतिहास के अन्त में ऐसे प्रभाव को सहज ही पाया जा सकता है।

२—डी० पी० स्पैन्सर और एच० डी० बेल—दि सिनेमा टु डे पृष्ठ १७२।

परिशिष्ट 'अ'

संस्कृत—ग्रंथ—सूची

१. अमर— अमरुशतकम्— मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद।

२. —— (दो खण्ड) अथर्ववेद—संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली।

३. अप्पय दीक्षित— कुबलयानन्द— चौखम्बा विद्या भवन, काशी।

४ आनन्द वर्द्धन— ध्वन्यालोक— गौतम बुक डिपो, दिल्ली।

५ उद्भट — काव्यालंकार सार संग्रह— निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

६ — — ऋग्वेद— संस्कृत एण्ड प्राकृत सिरीज, भंडारकर — — इन्स्टीट्यूट पूना।

७. कालिदास — रघुवंशम्— राजपाल एण्ड संस दिल्ली।

८. कुन्तक — वक्रोक्ति जीवितम्— आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।

९. केशव मिश्र — अलंकार शेखर— निर्णय सागर, बम्बई।

१०. जगन्नाथ — रस गंगाधर— — " " "

११. जयदेव — चन्द्रालोक— चौखम्बा संस्कृत सिरीज, बम्बई।

१२. दण्डी — काव्यादर्श— ओरिएण्टल बुक डिपो, दिल्ली।

१३. धनंजय — दशरूपक— चौखम्बा विद्या भवन, बनारस।

१४ भट्टि — भट्टि महाकाव्य— भट्टि रा० बेनीप्रसाद।

१५ भरत — नाट्यशास्त्रम्— —निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

१६. भामह —काव्यालंकार— चौखम्बा संस्कृत सिरीज बनारस।

१७. भोज —सरस्वती कण्ठाभरणम्— जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता।

१८. मम्मट —काव्य प्रकाश—संस्कृत प्राकृत सिरीज, भंडारकर इन्स्टीट्यूट पूना।

१९. यास्क —निरुक्तम् — श्री हरियाणा शेखावाटी आश्रम, भिवानी, पंजाब।

२०. राजशेखर— काव्य मीमांसा—गायकवाड ऑरिएण्टल सिरीज, बड़ौदा।

२१. रुद्रट— काव्यालंकार— निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

२२. रुय्यक —अलंकार सर्वस्व— निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

२३. वामन १—काव्यालकार सूत्रानि— निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
२—हिन्दी काव्यालंकार सूत्र— आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली।
२४. विद्याधर—रस तरगिणी— देहाती पुस्तक भडार, चावडी बाजार दिल्ली।
२५. विद्यानाथ—प्रताप रुद्रीय यशोभूषणम्— बाल मनोरमा प्रेस, मद्रास।
२६. विश्वनाथ—साहित्य दर्पण— मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
२७. व्यास —अग्नि पुराणम्— गुरु मडल कलकत्ता।
—श्रीमद्भागवत्— निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
२८. हेमचन्द्र १. काव्यानुशासनम्— श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई।
२. देशी नाम माला—बम्बई सस्कृत एन्ड प्राकृत सिरीज, भडारकर इन्स्टीट्यूट पूना।
२९. क्षेमेन्द्र १. औचित्य विचार चर्चा— निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
२. कविकन्ठाभरणम्— निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

परिशिष्ट—'ब'

हिन्दी—ग्रन्थ—सूची

१. अर्जुनदास केडिया —भारती भूषण— भारती भूषण कार्यालय, काशी ।

२. अमर — काव्य कल्पलता वृति – विद्या विलास प्रेस, बनारस ।

३. अम्बिका दत्त व्यास—गद्य काव्य मीमासा—ना० प्र० सभा काशी ।

४. अयोध्या सिंह उपाध्याय १ रस कलश—हि० सा० कुटीर वाराणसी ।
 २. रस साहित्य तथा मीमासा–हि० प्र० पुस्तक माला ।
 ३. कबीर वचनावली—ना० प्र० सभा, काशी ।

५. अज्ञेय— १. आधुनिक हि० सा०–अभिनव ग्रन्थमाला, कलकत्ता ।
 २. त्रिशकु—सरस्वती प्रेस बनारस ।
 ३. आत्मेन पद—भारतीय ज्ञानपीठ ।

६. डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित–रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण–राजकमल, दिल्ली ।

७. डा० आशा गुप्ता—खड़ी बोली मे अभिव्यजना—नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली ।

८. इलाचन्द्र जोशी—१. देखा परखा—राजकमल, दिल्ली ।
 २. विवेचना—हि० सा० सम्मेलन प्रयाग ।
 ३. साहित्य संतरण—सा० भवन इलाहाबाद ।
 ४. साहित्य सर्जना – छात्र हितकारी पुस्तकालय, प्रयाग ।

९. डा० उदयभानु सिंह—१. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग–वि० वि० लखनऊ ।

१०. डा० उमेश मिश्र—विद्यापति ठाकुर—हिन्दु० एकेडेमी इलाहाबाद ।

११. डा० एस० पी० खत्री–आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त–राजकमल दिल्ली ।

१२. डा० एस० एन० गणेशन–हिन्दी उपन्यास सा० का अध्ययन–राजपाल दिल्ली ।

१३. डा० ओमप्रकाश–हिन्दी अलकार साहित्य–भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली ।

१४. डा० ओमप्रकाश—रीतिकालीन अलकार सा० का शास्त्रीय विवेचन—हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली ।

१५. ऋग्वेद--त्रिवेदी रामगोविन्द, इण्डिया प्रेस, इलाहाबाद।
१६. कन्हैयालाल पोद्दार १. अलकार मजरी—जगन्नाथ शर्मा, मथुरा।
२ काव्यकल्पद्रुम भाग १, २--गंगा पुस्तकालय लखनऊ।
१७. कृष्ण बिहारी मिश्र—देव और बिहारी--गंगा पुस्तकालय, लखनऊ।
१८. कुमारमणि—रसिकलाल—श्री विद्या विभाग, काकरोली।
१९. किशोरीलाल गोस्वामी—सरोज सर्वेक्षण—हिन्दु० ऐकेडेमी—इलाहाबाद।
२०. कुलपति मिश्र—रस रहस्य—इण्डियन प्रेम लि० प्रयाग।
२१. डा० केसरी नारायण शुक्ल–आधुनिक काव्य धारण–नन्द किशोर ब्रादर्स, काशी।
२२. गंगा प्रसाद अग्निहोत्री—समालोचना—ना० प्र०स० काशी।
२३. ग्वाल अलकार भ्रम भंजन--व्रज भारती मथुरा।
२४. डा० गणेशदत्त गौड़–आधुनिक हिन्दी शास्त्रो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–जगत प्रकाश यन्त्रालय, फतेहगढ।
२५. गिरधरदास—भारती भूषण—चौखम्भा पुस्तकालय, बनारस।
२६. डा० ग्रियर्सन—हि० सा० का प्रथम इतिहास—प्र० या० पुस्तकालय।
२७. डा० गुलाब राय—१. अध्ययन और आस्वाद–आत्माराम एण्ड सस दिल्ली।
२. काव्य के रूप—आत्माराम दिल्ली।
३. भाषा भूषण (स) सा० र० भडार आगरा।
४. सिद्धान्त और अध्ययन—आत्माराम दिल्ली।
५. प्रसादजी की कला—सा० र० भ० (स० ४) आगरा।
२८. गुलाब सिंह—वनिता भूषण—जगत प्रकाश यन्त्रालय, फतेहगढ।
२९. गोकुल—चेत चन्द्रिका—भारत जीवन प्रेस, बनारस।
३०. गोविन्द कवि—कर्णाभरण—भारत जीवन प्रेस बनारस।
३१. डा० गोविन्द राम शर्मा–हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य–हि० सा० स०दिल्ली।
३२. डा० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त भाग १, २. भारती सा० मन्दिर दिल्ली।
३३. डा० (कु) चन्द्रप्रकाश सिंह १. हिन्दी नाटक साहित्य और रगमच की मीमासा—भा० ग्र० क० दिल्ली।
२. गोपकृत काव्य प्रभाकर—बड़ौदा विश्व विद्यालय।
३४. चिन्तामणि त्रिपाठी—१. काव्य विवेक।
२. कविकुल कल्पतरु।

३. काव्य प्रकाश।

३५. डा० जगदीश नारायण त्रिपाठी—आधुनिक हिन्दी कविता मे अलंकार विधान—अनुसधान प्रकाशन—कानपुर।

३६. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा—प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन—नन्दकिशोर ब्रादर्स काशी।

३७. जगन्नाथ प्रसाद भानु—काव्य प्रभाकर—लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना कल्याण पजाब।

३८. जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर—बिहारी रत्नाकर—ग्रन्थाकार, शिवाला बनारस।

३९. जयशंकर प्रसाद शर्मा—काव्यकला तथा अन्य निबन्ध—भारती भण्डार प्रयाग।

४० जसवन्तसिंह—भाषा भूषण—हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी।

४१. डा० दशरथ ओझा—१. समीक्षा शास्त्र—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
२. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—राजपाल, दिल्ली।

४२. डा० दीनदयाल गुप्त—अष्ट छाप और वल्लभ संप्रदाय, हि० सा० सम्मेलन प्रयाग।

४३. दूलह—कविकुल कण्ठा भरण—देवकविसुधा, लखनऊ।

४४. देव—१. भाव विलास, तरुण भारत ग्रन्थावली कार्यालय, प्रयाग।
२. शब्द रसायन—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
३. रसविलास—बनारस मर्कण्टाइल,
४. देव काव्य रत्नावली, दुग्गड रामप्रसाद।

४५ डा० देवराज—१. आधुनिक समीक्षा—राजकमल एण्ड संस, दिल्ली।
२ छायावाद का पतन—वाणी मन्दिर छपरा।

४६. डा० देवराज उपाध्याय—आ० कथा सा० मे मनोविज्ञान—सा० भवन प्रयाग।

४७. देवीशकर अवस्थी—अठारहवी शती के ब्रजभाषा काव्य मे प्रेमाभक्ति हि०-ग्र० र० दिल्ली।

४८. धनञ्जय (कवि) नाम माला—सभाष्य सम्पादक शभुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञान पीठ काशी।

४९. डा० धीरेन्द्र वर्मा—१. हिन्दी साहित्य कोश—ज्ञान मडल बनारस।
२. हिन्दी भाषा और लिपि सं १२, हिन्दु० एकेडेमी, इलाहाबाद।
३. हिन्दी भाषा का इतिहास, स० रा० ३. हि० एके० इलाहाबाद।

५०. डा० नगेन्द्र —१ हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास—ना० प्र० स० काशी ।
२. देव और उनकी कविता—गौतम बुक डिपो, दिल्ली ।
३ (संपादित) वक्रोक्ति काव्य जीवित—आत्माराम दिल्ली ।
४ रीति काव्य की भूमिका—नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
५. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका—ओरिएण्टल बुक डिपो, दिल्ली ।
६ अनुसधान और आलोचना—नेशनल प० हा० दिल्ली ।
७. आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—गौतम बुक डिपो, दिल्ली ।
८. आधुनिक हिन्दी नाटक—सा० रत्न भण्डार, आगरा ।
९. विचार और अनुभूति—प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद
१०. विचार और विश्लेषण—नेशनल प० हा० दिल्ली ।
११. सुमित्रा नन्दन पन्त— साहित्य रत्न भडार, आगरा ।
१२. अरस्तु का काव्य शास्त्र (स०), भा० भ० ।
१३ काव्य मे उद्दात तत्व—राजपाल एण्ड सस दिल्ली ।

५१. डा० नगेन्द्र एव डा० सावित्री सिन्हा—पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा—दिल्ली विश्व विद्यालय ।

५२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी:—
१. आधुनिक साहित्य—भारती भंडार, प्रयाग ।
२. नया साहित्य नये प्रश्न — विद्या मन्दिर, काशी ।
३. हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी—लोक भारती, इलाहाबाद ।
४ महाकवि सूरदास—आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली ।

५३. नरोत्तम स्वामी—अलकार पारिजात, लक्ष्मी नारायण लाल आगरा ।

५४. डा० नामवर सिंह—हिन्दी के विकास मे अपभ्र श का योग—सा० भवन लि० प्रयाग ।

५५. डा० नारायण दास खत्री—आचार्य भिखारीदास, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर।

५६. नित्यानन्दजी शर्मा—१. हिन्दी सा० का इतिहास—साहित्य सदन, देहरादून।
२. आधुनिक हिन्दी काव्य मे प्रतीक विधान—सा० स० देहरादून ।

५७. डा० निर्मला जैन—आधुनिक हिन्दी काव्य मे रूप विधाये, नेशनल प० हा० दिल्ली।

५८. पद्माकर-पद्माभरण-(स) वि० ना० प्र० मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी।

५९. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—१ साहित्य शिक्षा—हि० ग्र० र० बम्बई।
२. हि० सा० विमर्श० द्वि० पुस्त० बाकी पुरगगा।
३. विश्व साहित्य—गगा लखनऊ।

६० परशुराम चतुर्वेदी—१ उत्तर भारत की सत परम्परा—भारती भडार, प्रयाग।
२. मीराबाई की पदावली।

६१. डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल.-हिन्दी काव्य मे निर्गुण सप्रदाय-ना० प्र० स० काशी।

६२. डा० प्रभुदयाल मित्तल—सूर निर्णय—अजन्ता प्रेस, बम्बई।

६३ डा० प्रताप नारायण टडन—१. शिवराज भूषण—हि० सा० स० दिल्ली।
२. हिन्दी समीक्षा के मान और विशिष्टि प्रवृत्तियां—भाग १, २।

६४. प्रतापसिंह—व्यग्यार्थ कौमुदी—भारत जीवन प्रेस, काशी।

६५. डा० फतेहसिंह— मायनी सौन्दर्य—मोहन न्यूज एजेन्सी कोटा।

६६ डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी—हिन्दी साहित्य मे हास्य रस—हि० सा० स० दिल्ली।

६७. डा० बल्देव उपाध्याय-भा० सा० शास्त्र भाग १, २, प्रसाद परिषद् काशी।

६८. बलवान सिंह—चित्र चन्द्रिका—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

६९. डा० ब्रजेश्वर वर्मा—सूर मीमासा—ओरिएण्टल…दिल्ली।

७०. डा० ब्रह्मानन्द शर्मा—बगला पर हिन्दी का प्रभाव-अशोक प्रकाशन दिल्ली।

७१. बालकृष्ण भट्ट—भट्ट निबन्धावली—भाग १, २, का० ना० प्र० सभा०।

७२. बालमुकन्द गुप्त—गुप्त निबन्धावली—भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता।

७३. बालेन्दु—हिन्दी काव्य शास्त्र, साहित्य भवन लि० इलाहाबाद।

७४ बिहारीलाल भट्ट—साहित्य सागर—गगा ग्रन्थागार लखनऊ।

७५. डा० बेचन—आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास—सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।

७६. ब्रजवासीलाल—करुण रस—हि० सा० स० दिल्ली।

७७ ब्रह्मदत्त—दीपप्रकाश—भारती प्रेस, बनारस ।

७८. डा० भगवत स्वरूप मिश्र–हि० आलोचना . उद्भव और विकास—सा० स० देहरादून ।

७९. भगवानदीन—१. प्रियाप्रकाश—कल्याणदास एण्ड सस वाराणसी ।
२. अलकार चन्द्रिका—लाला० रा० बेनीप्रसाद, इलाहाबाद ।
३ अलकार मजूषा–रामनारायण लाल एण्ड सस, इलाहाबाद ।
४. बिहारी और देव—सा० भू० प्र० काशी ।

८० डा० भागीरथ मिश्र—१. हिन्दी साहित्य और समीक्षा—एस० चाद एण्ड क० दिल्ली ।
२. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास–लखनऊ विश्वविद्यालय ।
३. काव्य शास्त्र—विश्व विद्यालय प्र० गोरखपुर ।
४. हिन्दी रीति साहित्य—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

८१. भानुदत्त—रसमजरी—भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ ।

८२. भिखारीदास—१. काव्य निर्णय—कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स—वाराणसी ।
२. भिखारीदास ग्रन्थावली भाग १, २, का० ना० प्र० सभा, काशी ।

८३. भूषण—भूषण-ग्रन्थावली—रा० वेनीमाधव, इलाहाबाद ।

८४. डा० भोलाशकर व्यास—हिन्दी कुवलयानन्द—चौखम्भा, बनारस ।

८५. मतिराम—१. रस राज—चौखम्भा ।
२. मतिराम ग्रन्थावली (स० वि० प्र० मिश्र)—का० ना० प्र० स०, काशी ।

८६. महावीर प्रसाद द्विवेदी १. साहित्य सीकर—तरुण भारत ग्रथावली, प्रयाग ।
२. साहित्य सदर्भ—गंगा पुस्तक०, लखनऊ ।
३. समालोचना समुच्चय–रामनारायण लाल, प्रयाग ।
४. रसज्ञ रजन—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा ।
५. कालिदास और उनकी कविता—हिन्दी मन्दिर, जबलपुर ।
६. कालिदास की निरकुशता–इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।
७. सचय (संकलनकर्त्ता प्रभात शास्त्री)—कौशम्बी, इलाहाबाद ।
८. आलोचनाञ्जली—इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

८७. महादेवी वर्मा—१ आधुनिक कवि भाग १, हि० सा० सम्मेलन प्रयाग।
२. दीप शिखा—भा० भ० काशी।
३. यामा—भा० भं० काशी।
४ साहित्य रस की आस्था तथा अन्य निबन्ध-लोक भारती।

८८ डा० मनोहर काले—आधु० हि० मराठी मे काव्य शास्त्रीय अध्ययन—हि० ग्र० र० दिल्ली।

८९ डा० मनोहर गौड-घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा-ना० प्र० स० काशी।

९० महेश्वर—महेश्वर भूषण—भारत जीवन प्रेस, बनारस।

९१. महेन्द्र चतुर्वेदी—हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—हि० प्र० पु०।

९२. डा० माताप्रसाद गुप्त—१ हिन्दी पुस्तक साहित्य।
२ तुलसीदास।

९३ मिश्र बन्धु—१. हिन्दी नव रत्न—गगा पुस्तकालय, लखनऊ।
२ मिश्र बन्धु विनोद—४ भाग, गगा।
३ साहित्य पारिजात—गगा।
४ कविकुल कठा भरण (दूल्ह)—गंगा।
५. काव्य कल्प तरु—सत्याचरण—स।

९४. मुरारीदास (कविराज)—जसवन्त जसो भूषण—मारवाड प्रेस, जोधपुर।

९५ मोहनलाल गुप्त एवं सुरेशचन्द्र—प्रतिनिधि आलोचना—एस० चन्द, दिल्ली।

९६ रत्नेश—फतेह प्रकाश—भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ।

९७. डा० रविन्द्र सहाय वर्मा—हि० काव्य पर आंग्ल प्रभाव—पद्मजा प्रकाशन कानपुर।

९८. रमाशकर तिवारी—प्रयोगवादी काव्य धारा—चौखम्भा।

९९. राजेन्द्र द्विवेदी—साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश—आत्माराम एण्ड संस।

१००. रामचन्द्र शुक्ल १ चिन्तामणि—भाग १, इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद।
२. चिन्तामणि भाग २, सरस्वती मन्दिर काशी।
३. रस मीमासा—ना० प्र० सभा काशी (सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)
४. त्रिवेणी—१, २, ना० प्र० सभा काशी।
५ भ्रमर गीतसार—कृष्णदास, साहित्य सेवा सदन, बनारस।
६. गोस्वामी तुलसीदास—ना० प्र० सभा काशी।

१०१. डा० रामकुमार वर्मा—१. साहित्य शास्त्र–राजकिशोर प्रकाशन इलाहाबाद।
२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, राम नारायण लाल इलाहाबाद।

१०२ डा० रामकुमार वर्मा एव डा० दीक्षित—एकाकी कला—रा० बेनी माधव
डा० रामकुमार वर्मा–साहित्य समालोचना–साहित्य मन्दिर प्रयाग।

१०३. रामदहिन मिश्र—१. काव्य दर्पण—ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना।
२. काव्य मे अप्रस्तुत योजना—ग्रन्थमाला, पटना।
३. काव्यालोक–हि० उद्योत० कार्यालय प्रकाशन, बाकीपुर।
४. काव्य विमर्श—ग्रन्थमाला,-पटना।

१०४. रामनरेश त्रिपाठी—तुलसी और उनका काव्य—राजपाल दिल्ली।

१०५. डा० रामचरण महेन्द्र- १. हि० एकाकी : उद्भव और विकास–सा० प्रकाशन दिल्ली।
२. हिन्दी एकाकी एव एकाकी कार–सरस्वती प्रकाशन, आगरा।

१०६. डा० रामविलास शर्मा—प्रेमचन्द और उनका युग—मेहरचन्द्र, मुन्शीराम, दिल्ली।
(डा० रामविलास शर्मा)—आलोचक रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना
प्रगतिशील साहित्यकी समस्याएँ—विनोद, पुस्तक म० आगरा।

१०७. श्रद्धेय काव्याचार्य डा० राम शकरजी शुक्ल 'रसाल'
१. अलकार पीयूष—पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध–राम नारायण लाल, इलाहाबाद।
२. आलोचनादर्श—इन्डियन प्रेस, प्रयाग।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग।
४ छन्द शास्त्र—बेनीमाधव, इलाहाबाद।

१०८. रामधारी सिंह दिनकर—१. सस्कृति के चार अध्याय—उदयाचल, पटना।
२. काव्य की भूमिका—उदयाचल प्रकाशन, पटना।

१०९. डा० रामबहोरी मिश्र—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास–हिन्दी भवन जालन्धर।

११०. राहुल साकृत्यायन—१. हिन्दी काव्य धारा—किताब महल, प्रयाग।
२. हि० सा० का वृहत्० इति० भा० १६, ना० प्र० स० काशी।

१११. डा० रामधन शर्मा—कूट काव्य एक अध्ययन—नेशनल प० हा० दिल्ली।
११२. डा० रामाधार—हिन्दी की सैद्धान्तिक समीक्षा—अनुसधान, कानपुर।
११३. डा० राम यतनसिंह–आ० हि० कविता मे चित्र विधान–नेशनल प० हा० दि०
११४. लछीराम—१. रावणेश्वर कल्प तरु—भारत जीवन प्रेस।
२. रामचन्द्र भूषण खेमराज—श्रीकृष्णदास बम्बई।
११५ लक्ष्मीनारायण लाल सुधाँशु—काव्य मे अभिव्यजनावाद–ज्ञान पीठ, पटना।
११६. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय—१. आ० हि० सा० की भूमिका—हि० परिषद् प्रयाग, वि० वि०।
२. हिन्दुई सा० का इतिहास (अनूदित)
११७. लेखराज—गगाभरण—नन्दकिशोर मिश्र, गाधौली, सीतापुर।
११८. लीलाधर गुप्त—पा० साहित्यालोचन के सिद्धान्त—हि० एके० प्रयाग।
११९. डा० विजयेन्द्र स्नातक—हि० सा० का सक्षिप्त इति०—रणजीत दिल्ली।
१२०. डा० वि० स्नातक एव डा० सावित्री सिन्हा—अनुसधान की प्रक्रिया—ने० प० हा० दिल्ली।
१२१. डा० विश्वनाथ मिश्र—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव—सा० सदन, देहरादून।
१२२. डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—१. केशव ग्रन्थावली भाग १, २, ३, ना० प्र० स०, काशी।
२. बिहारी की वाग्विभूति—हि० सा० कुटीर बनारस।
३. हिन्दी साहित्य का अतीत—वाणी विहान।
१२३. विनोद शकर व्यास—प्रसाद और उनका साहित्य—हि० सा० कु०।
१२४. डा० वैक्ट शर्मा—आ० हि० समालोचना का विकास—आत्माराम, दिल्ली।
१२५. बिपिन बिहारी त्रिवेदी व डा० उषा गुप्ता—छन्द अलकार ,, ,,
१२६. विश्म्वरनाथ उपाध्याय—आधुनिक कविता—प्रभात प्रकाशन।
१२७. शचीरानी गुर्टू—हिन्दी के आलोचक—आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली।
१२८. डा० शम्भुनाथ—रस अलकार पिंगल—विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
१२९ डा० श्याम नन्दकिशोर—आधुनिकमहाकाव्यो का शिल्प विधान—स० पु० स० आगरा।
१३०. डा० श्याम सुन्दरदास—१. कबीर ग्रन्थावली—का० ना० प्र० सभा, काशी।
२. मेरी आत्म कहानी—इ० प्रेस लि० प्रयाग।

३. रूपक रहस्य—इ० प्रे० लि० प्रयाग ।
४. हिन्दी भाषा और साहित्य ,,
५. साहित्यालोचन ।................

१३१. शान्ति प्रिय द्विवेदी—१ कवि और काव्य—इण्डिया प्रेस प्रयाग ।
२. साहित्यिकी—ग्रन्थमाला, बाकीपुर।
३. संचारिणी—इण्डिया प्रेस, प्रयाग ।
४. सामयिकी—ज्ञान मडल—बनारस ।

१३२. शिवसिह—शिवसिह सरोज—अमर भारती जय, गङ्गा लखनऊ ।

१३३. शिवदान सिह चौहान—१. आलोचना के मान—रणजीत प्रिटर्स, दिल्ली ।
२. प्रगतिवाद—प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद ।
३. साहित्य की परख—इन्डियन पब्लि० प्रयाग ।
४. साहित्य की समस्याये—आत्माराम ······दिल्ली ।
५. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष—राजकमल प्रकाशन दिल्ली ।

१३४. डा० श्री कृष्णलाल—आ० हिन्दी सा० का विकास—हि० वि० वि० प्रयाग ।

१३५. श्रीराम शर्मा—आदिलशाह का काव्य सग्रह—क० मु० हि० आगरा ।

१३६. डा० श्रीनिवास शर्मा—१. आधुनिक हिन्दी काव्य मे वात्सल्य रस—शर्मा श्री निवास, अशोक प्रकाशन, दिल्ली ।
२. भारतीय काव्य समीक्षा—अशोक प्र० दिल्ली ।

१३७. श्री मुनिजिन विजय तथा हरिवल्लभ भियाणी—सदेश रासक (स), बम्बई ।

१३८. डा० सत्येन्द्र—१. गुप्तजी की काव्य कला—सा० रत्न भडार, आगरा ।
२. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, सा० रत्न भ० आगरा ।

१३९. डा० सरनाम सिंहजी—कबीर एक विवेचन—हि० सा० स० दिल्ली ।

१४०. ड० सुधीन्द्र—हिन्दी कविता मे युगान्तर—आत्माराम, दिल्ली ।

१४१. सुमित्रा नन्दन पन्त—१. गद्य पद्य—साहित्य भवन लि०, प्रयाग ।
२. साठ वर्ष एक मूल्याकन ।

१४२. सुरति मिश्र—बिहारी सतसई की टीका ।
कवि प्रिया की टीका ।
नखशिख ।

१४३. डा० सुरेशचन्द्र—१. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त—हिन्दी सा० ससार, दिल्ली ।

१४४. सूरदास—१. सूर सागर—खण्ड १, २, का० ना० प्र० सभा, काशी।
२. साहित्य लहरी,—साहित्य सस्थान मथुरा।

१४५ श्रीं सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—१. चयन—कला मन्दिर प्रयाग।
२. चाबुक—कला।
३. पन्तजी और पल्लव—गगा-ग्रन्थागार, लखनऊ।
४. प्रबन्ध पद्म, गग्म—लखनऊ।
५. प्रबन्ध प्रतिभा—भारती भं०, प्रयाग।

१४६. सेठ गविन्द दास—अग्रेजी का आगमन तथा उसके बाद-एस० चाद० दिल्ली।

१४७. डा० सोमनाथजी गुप्त—१ आलोचना : उसके सिद्धान्त—भा० भारती।
२. पूर्व भारतेन्दु नाटकावली—हिन्दी भवन।
३. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास-सस्ता सा० स०

१४८. सोमनाथ—रस पीयूष निधि—

१४९. ड० हजारीप्रसाद द्विवेदी-१. अशोक के फूल-सस्ता सा० मंडल, नई दिल्ली।
२. साहित्य का मर्म—लखनऊ वि० वि०
३. हमारी साहित्यिक समस्याये-हरेन्द्र प्र०, भागलपुर।
४. हिन्दी साहित्य—अत्तरचन्द कपूर······· दिल्ली।
५. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पटना।
६. हिन्दी साहित्य की भूमिका—हि० ग्रथ रत्नाकर, बम्बई।
७. कबीर-हि० ग्र० र० दिल्ली।

१५०. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी व शर्मा—१. गाद्य शास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक—राजकमल।

१५१. डा० हरबंस लाल शर्मा—१ सूर और उनका साहित्य भारत प्रकाशन म०, अलीगढ।
२. भागवत दर्शन—भा० प्र० मन्दिर, अलीगढ़।
३. सूर काव्य की आलोचना—भा० प्र० मन्दिर,
४. सूर सरोवर—बसल·······दिल्ली।

१५२. डा० हरबन्सलाल शर्मा एवं परमानन्द शास्त्री—बिहारी और उनका साहित्य—भा० म० प्र० अलीगढ।

१५३ डा० हरि कृष्णजी पुरोहित—आधुनिक हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव—प्रकाशनाधीन।

१५४. डा० हीरालाल—(सं) करकंड चरित्र—भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली।

१५५. डा० हीरालाल दीक्षित—आचार्य केशवदास—लखनऊ वि० वि०।

१५६. हेमचन्द्र सूरी—१. अपभ्रंश व्याकरण—राजकमल दिल्ली।
२. प्राकृत व्याकरण—सं० डा० परशुराम वैद्य······पूना।

परिशिष्ट 'स'

Reference Books in English

Apoligie for poetrie	(1580) Idney
Biographia Liferaria	(1817) Coleridge
Black Wood's magazine	(1817)
The Dunciad	(1728) Allexander Pope
Moral Essays	(1733-9)
Imitations of Horace	(1733-9)
The Edinburgh Review	(1802)
Lyrical Ballads —The preface, Words worth	(1798)
The prefeces of shairran plays	
The Prelude—	(1805) Intro Sellincoust
Luarterly Review	(1809)
History of English Criticizm	by Dr. Saintsbury
Use of poetry and use of criticizm	by T. S. Eliot.
Principles of criticizm	by I. A. Richards
Practical Criticizm	by I. A. Richards
History of Sanskrit Poetics	by S. K. Di
Natya Shastra Bharat muni-Translated	by Dr. M.M. Ghosh
School of Abuses Gosson	
Obiter Dicta	
Quientessences of Ibsenizm	
Quientessences of Shayizm	
Hindi Lift	F. E. Keay
Classical sansk. Litt.	by Dr. A. B. Keith
Cambridge History of English Litt.	
Max muller's versiong Rigveda	
Methods & materials of Literary criticizm.	by Gale & Scott.

The new criticizm — by I. F. Snmagarn

Psychological Approach to literary criticizm — F. L. Lucas

Oxford Lectures on poetry — A. C. Bradley

Studies of European Realizm Introduction to — by F. L. Lucas

Illusion & Reality — C. Codwell

A History of criticizm & Literary Taste in Europe in three vols. — by Dr. Saintsbury

History of Literary criticizm in the Ranaassance — by Spingram

History of Sanskrit Poetics — P. V. Kane

History of English Litt — by Dr Compton Ricket

History of English Litt — by Legouis & Cazamian

History of English Litt — by Dr. Ifor Evans

English critrical Essays IXX & XX Cent — selected by E. D. Yong

Oxford companion to English Litt

Survey of English — Litt. Elton

History of English Proody three vols. — Dr. Sainstsbury

Match of Litt., prod. mod. ox

James Joycee & the plain Reader — Duff. C.

The Twentieth Cent Litt. — A.C Ward

The Victorian Era — C Maria

Main currents in mod. Litt. — A. R. Reade

English Litt. — C. H. Mani

The Outline of Litt. — Johon Drink Wate

Selected essays — T. S. Eliot

To criticize the critic — T. S. Eliot

Eliot than Dramatists — T. S. Eliot

=00=